

# राजा भोज और परमारकालीन नगर स्थापत्य

लेखिका  
निर्मला राजपुरोहित

राजा भोज और परमारकालीन नगर स्थापत्य

निर्मला राजपुरोहित  
स्वराज संस्थान संचालनालय  
प्रथम संस्करण - 2011

मूल्य : 60.00

मुद्रण  
पंचायतीराज मुद्रणालय, उज्जैन  
दूरभाष : 2511227, 2511207

## अनुक्रम

पूर्वरंग

राजा भोज

प्रास्ताविक

प्रमुख नगर (पुरातन)

प्रमुख नगर (साहित्य)

भोजपाल भोपाल

भोज का नगर-स्थापत्य- वैशिष्ट्य

राजा भोज की शृङ्गारमञ्जरी कथा में धारा नगरी वर्णन

दुर्ग एवं नगर स्थापत्य

जल प्रबन्धन

परिशिष्ट (क) नगर - लक्षणं नगर निवेशश्च

(ख) धारानगर्या वर्णनम्

(ग) यु

(घ)

(ङ)

(च)

(छ)

## पूर्वरंग

मालवा भारत की हृदयस्थली है और परमार युग मालवा की सर्वांगीण उन्नति का अपरिहार्य-स्तम्भ है। प्रायः चार शताब्दियों तक मालवा पर परमार राजवंश का एकछत्र शासन रहा। इस युग में इस क्षेत्र में वास्तुकला, मूर्तिकला तथा ज्ञान की विविध धाराओं की समृद्धि में प्रचुर प्रवृत्ति हुई। एक से बढ़कर एक रचना प्रकट होती है और उस सर्वांगीण उन्नति की मूल परियोजना राजा भोज भी रही।

परमार शासक स्वयं कलाविद्, विद्वान् और विद्वत्ता का आदर करने वालों में अग्रणी थे। राजा मुंज और भोज उनमें सर्वप्रसिद्ध हैं। परन्तु उदयादित्य, नरवर्मा, अर्जुनवर्मा आदि का भी इस दिशा में योगदान न्यून नहीं है। इन्होंने मालवा को भवनों और मन्दिरों से समृद्ध कर दिया। राजा भोज ने वास्तु सम्बन्धी समरांगणसूत्रधार, युक्तिकल्पतरु आदि आकर ग्रन्थ भी रचे। उनमें नगर निर्माण आदि से सम्बन्धी प्रचुर सामग्री सन्निहित है। आज परमारयुगीन बस्तियों के अवशेष मालवा में युगीन परिवर्तन के साथ सुलभ हैं। इन बस्तियों और ग्रन्थगत विशेषताओं में कितना तालमेल है- यह देखना-परखना भी तुलनात्मक दृष्टि से आवश्यक है। इसी में यह 'राजा भोज और परमारकालीन नगर स्थापत्य' प्रयास है। ऐसे प्रयास अन्य युग के अध्ययन के लिए भी सार्थक होंगे।

मेरे गुरुवर सुप्रसिद्ध पुराविद् एवं चित्रकार स्व. डॉ. वि.श्री. वाकणकर का न केवल मार्गदर्शन प्राप्त हुआ अपितु उन्होंने स्वयं इस पुस्तक के लिए आवश्यक मानचित्र भी बनाए। यह पुस्तक उनके ही पुण्य स्मरण में समर्पित है।

आशा है विद्वज्जनों और जिज्ञासुओं को यह लघु प्रयास परितोष दे सकेगा।

निर्मला राजपुरोहित  
बिलोटीपुरा, उज्जैन

## पूर्वरंग - राजा भोज

महाराजा भोज भारतीय परम्परा के संक्रान्ति काल के ऐसे आलोक पुञ्ज हैं जिनके प्रभामण्डल से पूरी सहस्राब्दी भीतर बाहर आलोकित होती रही। उनकी राजधानी धारानगरी थी जो आजकल मध्यप्रदेश का धार नामक जिला स्थान है। प्राचीन काल में मालवा राज्य वर्तमान पश्चिम मध्यप्रदेश में था। उसकी पारम्परिक राजधानी उज्जयिनी (उज्जैन) थी। राजा भोज ने सुरक्षा कारण से अपनी राजधानी उज्जैन से हटाकर धार कर दी थी। इससे पूर्व उन्होंने धारा नगरी को राजधानी के अनुरूप विधिवत् बसाकर प्राकार (परकोटा), परिखा (बाहरी खाई), तत्कालानुसार अधुनातन उद्यानों, तड़ागों आदि से आकर्षक बना दिया था। फिर तो उसी योजनानुसार उज्जैन, विदिशा आदि को भी नये सिरे से बसाया। भोपाल के पास तथा पटना के पास अपने नाम पर भोजपुर नामक नये नगर बसाये। राजा भोज का विरुद नाम भूपाल था। इस नाम पर भूपाल (भोपाल) और भूपालपुर (भोपावर) बसाये। राजा भोज ने नगर स्थापत्य सम्बन्धी विशाल 'समरांगणसूत्रधार' सिद्धान्त ग्रन्थ लिखा और व्यवहार में पूर्वोक्त नगर बसाये। धार तथा उज्जैन को राजा ने 84 चौराहों से मण्डित कर दिया जिसके प्रत्येक चौराहें पर एक मन्दिर था। धार तथा उज्जैन की प्राचीन बस्तियों में समानान्तर विभाजित करती सड़कों-गलियों को देखा जा सकता है

जो अब विभिन्न कारणों से थोड़ी बहुत इधर-उधर हो गयी हैं। उज्जैन में उन 84 महादेव के मन्दिरों की यात्रा यात्रीगण बड़ी श्रद्धा से आज भी करते हैं।

राजा भोज परमार नामक राजवंश के सर्वोत्तम नरेश थे। परमारों के समकालीन साहित्यिक तथा अभिलेखीय आधारों से ज्ञात होता है कि इस वंश का आदिपुरुष वसिष्ठ ऋषि के अग्निकुण्ड से उत्पन्न हुआ था। उसने उत्पन्न होते ही पर (शत्रुओं) को मार भगाया। अतः उस वीर का यथार्थ नाम परमार हुआ। चारणों तथा भाटों की विभिन्न पोथियों से ज्ञात होता है कि यह वंश अत्यन्त प्राचीन है। इसी वंश में धार गिर नामक राजा हुआ था जिसके नाम पर धारागिरि बस्ती बसाई गयी। इस बस्ती के नाम पर धार में तेरहवीं शती में धारागिरि लीलोद्यान था तथा दूसरी शती में विदेशी यात्री टॉल्मी ने इसे ही झेरोगिर कहा था। धार परमारों की कुल राजधानी थी। चारण परम्परा यह भी कहती है कि इसी परमार वंश में उज्जैन के विख्यात राजा विक्रमादित्य तथा भर्तृहरि भी हुए थे। परन्तु परमारकालीन अभिलेखों या तत्कालीन साहित्य से ऐसा कोई उल्लेख अभी तक ज्ञात नहीं हुआ है हालाँकि भविष्य पुराण चारण परम्परा की पुष्टि करता है। परमार राजवंश के उपेन्द्र आदि विभिन्न राजाओं के नाम प्राप्त होते हैं। उनमें से सीयक या श्रीहर्ष पहला परमार राजा है जिसके दसवीं सदी के ताम्रपत्र प्राप्त होते हैं। इसके दो पुत्र थे। वाक्पति राज मुंज और सिन्धुराज अथवा सिन्धुल। मुंज स्वयं राजा तथा कवि था और कवियों का आश्रयदाता था। इसके आश्रित पद्मगुप्त परिमल, धनंजय, धनपाल, अमितगति, हलायुध आदि कई विद्वान थे। इसमें पद्मगुप्त ने मुंज के अनुज सिंधुराज सम्बन्धी एक महाकाव्य 'नवसाहस्रं चरित' की रचना की थी। अन्तिम तीनों धनपाल, अमितगति, हलायुध आदि राजा भोज के समय भी रचना में निरत थे। सिन्धुराज राजस्थान में मुंज का अधीनस्थ राजा था। सिन्धुराज का बड़ा पुत्र दूषल उसके पास रहता था। छोटा पुत्र भोजदेव राजा मुंज के पास उज्जयनी नगरी में रहता था। यह विशेष प्रतिभाशाली और योग्य था। अतः मुंज ने भोज को ही अपना उत्तराधिकारी राजा बनाया। यद्यपि स्वयं मुंज के भी दो पुत्र थे जो राजस्थान में ही मुंज के सामन्त थे। मुंज की मृत्यु के अनन्तर प्रभारी राजा सिन्धुराज रहे। क्योंकि राजा भोज सारस्वत साधना में लीन थे। सिन्धुराज की मृत्यु के अनन्तर राजा भोज ने शासन सूत्र सम्हाला।

राजा भोज के अनेक ताम्रपत्र तथा शिलालेख प्राप्त होते हैं। समकालीन अन्य राजाओं के अभिलेखों में भी राजा भोज के उल्लेख प्राप्त होते हैं। भोजकालीन काव्यों, शास्त्रों आदि में भी भोज के प्रचुर उल्लेख प्राप्त होते हैं। भोज के बाद के अभिलेखों, ग्रन्थों, अनुश्रुतियों, लोककथाओं, कहावतों, काव्यों में राजा भोज के अगणित उल्लेख, विवरण आदि प्राप्त होते हैं। राजा भोज का ज्ञान आज हमें इतिहास से तो सीमित प्राप्त होता है परन्तु परम्परागत साहित्य, अनुश्रुतियों आदि से अधिक प्राप्त होता है। अतः राजा भोज के व्यक्तित्व तथा कृतित्व के ज्ञान में इतिहास और अनुश्रुतियाँ दोनों परस्पर पूरक हो जाते हैं। दोनों मिलकर हमें राजा भोज के विषय में अधिक जानकारी दे सकते हैं। इतिहास की रिक्तियों की कुछ पूर्तियाँ अनुश्रुतियों तथा परम्परागत साहित्य और लोक साहित्य से हो सकती हैं।

जून 1056 ई० का एक ताम्रपत्र राजा भोज के उत्तराधिकारी जयसिंह का प्राप्त होता है। 1055 ई. का एक ग्रन्थ राजा भोज के राज्यकाल में लिखा गया। इससे स्पष्ट है 1055 तक राजा भोज विद्यमान थे। आइने-अकबरी के अनुसार राजा भोज की आयु 90 वर्ष थी। विभिन्न ग्रन्थों से ज्ञात होता है कि राजा भोज ने गौड़/बंगाल से दक्षिणापथ तक व्याप्त भारत पर 55 वर्ष 7 मास 3 दिन तक राज्य किया था। 1055 में से 90 कम करने पर 965 के लगभग राजा भोज का जन्म समय प्रतीत होता है। यदि 1055 तक राजा भोज ने राज्य किया तो उसमें से 55 वर्ष 7 मास 3 दिन कम करने 999 ई. के लगभग भोज की राज्य प्राप्ति सम्भव है। इस समय तक राजा भोज की आयु 34 वर्ष 4 मास 27 दिन हो गयी थी। स्पष्ट ही राजा भोज इस समय तक पूर्ण युवा हो गये थे। यही नहीं इनके पुत्र भी इस समय तक विभिन्न क्षेत्रों के सामन्त हो गये थे। भोज के एक पुत्र देवराज का 1002 का अभिलेख प्राप्त होता है। दूसरे पुत्र वत्सराज का संवत् 1067 (1010 ई.) का ताम्रपत्र प्राप्त होता है। श्यामला दण्डक की एक हस्तलिखित पुस्तक के अनुसार इस स्त्रोत का रचनाकार पुरंजय उज्जैन के महाकाल के पुजारी महादेव विप्र का पुत्र था। इस पुरंजय के श्यामलादण्डक स्त्रोत पर प्रसन्न होकर राजा भोज ने कवि को एक सौ ग्राम प्रदान किये थे। इस समय तक राजा भोज का सरस्वती कण्ठाभरण ग्रन्थ लोकप्रिय हो चुका था। यह बात शक संवत् 923 (1001 ई.) की है। इससे

भी स्पष्ट है कि 1001 ई. से पूर्व ही भोज राजा हो गये थे।

राजा भोज के वंशज के बारहवीं सदी के शिलालेख से ज्ञात होता है कि राजा भोज का राज्य कैलास पर्वत से मलय पर्वत तक और उदयगिरि से अस्ताचल तक व्याप्त था। साहित्य के अनुसार गौड़ (बंगाल) से दक्षिणापथ तक राजा भोज का राज्य था। उदयपुर प्रशास्ति के अनुसार राजा भोज ने चेदिराज, इन्द्ररथ, तोग्ग, भीम, कर्णाद लाट और गुर्जर के राजा के साथ ही तुरुष्कों को पराजित किया था। राजा भोज के ताम्रपत्रों से ज्ञात होता है कि उन्होंने कोंकण पर विजय प्राप्त की थी तथा मराठावाड़ा के भिल्लम तृतीय को भी अपने अधीन कर लिया था। गुर्जर प्रतिहार राजा को पराजित करके कन्नौज राज्य पर अधिकार कर लिया था। तेरहवीं सदी की नाटिका पारिजातमञ्जरी के अनुसार भोज ने परमवीर गांगेय राजा को पराजित कर 'गांगेय भंगोत्सव' मनाया था। इस गौरवशाली विजय के कारण समाज में 'कहाँ राजा भोज और कहाँ गंगू तेली' कहावत प्रचलित हो गयी जो पूरे भारत की विभिन्न भाषाओं में आज भी प्रचलित है। एक प्राचीन श्लोक के अनुसार चोल, आन्ध्र, कर्णाट, गुर्जर, चेदि, कान्यकुब्ज आदि क्षेत्रों के राजा भोज के अधीन थे। इस प्रकार चेदि के कलचुरी राजा गांगेयदेव, कर्णाटक के चालुक्य राजा तैलप द्वितीय, आदिनगर के राजा इन्द्ररथ, लाट के भीमदेव, कान्यकुब्ज के गुर्जर प्रतिहार राजा राज्यपाल, तुरुष्क (तुर्क) राजा, शाकम्भरी के चौहान राजा वीर्यराम, दूबकुण्ड के राजा अभिमन्यु, विदर्भ तथा मराठावाड़ा के राजा भिल्लम (तृतीय) आदि विभिन्न ज्ञात-अज्ञात राजाओं को पराजित करके अपनी शक्ति और राज्य सीमा को भारतव्यापी बना दिया था। सैकड़ों राजा महाराज भोज को अपने 'महाराजाधिराज परमेश्वर' के रूप में सम्मान देते थे और कन्योपायन आदि द्वारा राजा भोज को सदा प्रसन्न रखने की चेष्टा करते रहते थे। राजा भोज की सभा में सैकड़ों राजाओं की उपस्थिति रहती थी और ये सब मिलकर राजा भोज की शक्ति, समृद्धि और प्रभामण्डल में निरन्तर वृद्धि करते रहते थे।

राजा भोज की शताधिक रानियाँ थीं। उनमें से लीलावती या लीलादेवी पटरानी थी। अन्य रानियों के ये नाम ज्ञात होते हैं - सत्यवती, सौभाग्य सुन्दरी, मदनमञ्जरी, भानुमती, पिंगला, सुभद्रा आदि। सत्यवती के पुत्र का नाम देवराज तथा मदनमञ्जरी के पुत्र का नाम वत्सराज या बच्छराज था। देवराज का 1002 ई.

का किराड़ लेख प्राप्त है और वत्सराज का 1010 का मोडासा ताम्रपत्र प्राप्त हुआ है। भाट की पोथी से ज्ञात होता है कि भोज के एक पुत्र का नाम फूलकुँवार था। इसका पुत्र जयसिंह राजा भोज का उत्तराधिकारी बना था। उसका 1056 का ताम्रपत्र प्राप्त हुआ है। फूलकुँवार नाम कच्छ भुज के एक राजा का भी नाम था जो राजा भोज का समकालीन था। इससे स्पष्ट है कि उस समय ऐसे नाम रखे जाते थे। एक भीली लोककथा के अनुसार राजा भोज के एक पुत्र का नाम वीरसिंह था। एक जैन ग्रन्थ के अनुसार 1020 ई. में राजा भोज के पुत्र वीरनारायण ने सेवाणा बसाया। राजा भोज का एक विरुद त्रिभुवन नारायण था। अतः उनके एक पुत्र का नाम वीरनारायण होना असंभव नहीं है। भीली कथा का पूर्वोक्त वीरसिंह और वीरनारायण एक ही रहे या भिन्न यह नहीं कहा जा सकता। राजा भोज की एक पुत्री का नाम राजमती था। इसका साँभर के राजा बीसलदेव से विवाह हुआ था। नरपति नाल्ह के बारहवीं सदी में विरचित अपने काव्य 'बीसलदेवरासो' में इनकी ही कथा है।

राजा मुञ्ज के चन्दन और अरण्यराज पुत्र थे। ये राजस्थान के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों के स्वामी थे। भोज का अग्रज दूषल या उत्पल था जो अपने पिता सिन्धुराज के पास भीनमालव क्षेत्र में ही रहता था। इन सबमें मुञ्ज ने सर्वाधिक योग्य होने से भोजदेव को ही राजा बनाया। इससे परिवार के अन्य भाई बन्धु असंतुष्ट हो गये थे। परन्तु अन्ततः राजा भोज के हाथ में ही राज्य रहा। और उन्होंने निश्चिन्तता से आजीवन राज्यसुख भोगा। मुञ्ज की अचानक मृत्यु होने पर सिन्धुराज ने भोज की ओर से राज्य किया। यह संकेत मुञ्ज और भोज के सभाकवि धनपाल ने अपनी तिलकमञ्जरी कथा में किया है। उसने उसे मुञ्ज का केवल भाई बताया, परन्तु राजा नहीं। मुञ्ज के बाद राजा भोज का ही उल्लेख किया है। उसमें कहा गया है कि मुञ्ज ने सिन्धुराज के पुत्र भोज का स्वयं राज्याभिषेक किया।

आकीर्णाङ्घ्रितलः सरोजकलशच्छत्रादिभिलच्छिनै-

स्तस्याजायत मांसलायुतभुजः श्रीभोज इत्यात्मजः।

प्रीत्या योग्य इति प्रतापवसतिः ख्यातेन मुञ्जाख्यया

यः स्वे वाक्पतिराजभूमिपतिना राज्येभिषिक्तः स्वयम्। 83

परन्तु नवसाहसांकचरित तथा भोज के ताम्रपत्रों में सिन्धुल को भी राजा

सम्भवतः इसलिए कहा गया होगा कि मुञ्ज के आकस्मिक मृत्यु के बाद सिन्धुराज ने ही कुछ वर्षों तक भोज की ओर से प्रभारी राजा के समान राज्य संचालन किया। क्योंकि भोज अपनी सारस्वत साधना में लीन रहे होंगे। यही कारण है कि सिन्धुराज का न तो कोई ताम्रपत्र प्राप्त होता है और न अभिलेख। परन्तु राजत्व का तब भी उन्होंने उपभोग किया। इसीलिए भोज सहित परवर्ती राजाओं ने सिन्धुराज को भी राजा ही कहा। परन्तु जब एक युद्ध में सिन्धुराज की मृत्यु हो गयी तब राज्य संचालन सूत्र स्वयं भोज को सम्हालना पड़ा। यह 999 ई. के लगभग की बात है। इस समय तक राजा भोज की आयु प्रायः 34 वर्ष 5 मास हो चुकी थी। सरस्वतीकण्डाभरण नामक उनका ग्रन्थ प्रसिद्ध हो चुका था। उनके पुत्र राज्य के सामन्त बन चुके थे। पिता सिन्धुराज की और ताऊ मुञ्ज की युद्ध के कारण मृत्यु से राजा भोज ने निर्णय किया कि राजा को केवल नीतिनिर्धारण करना चाहिए। उसे स्वयं रणक्षेत्र में जाकर प्रत्यक्ष युद्ध नहीं करना चाहिए। क्योंकि कमजोर भी बलवान को मार सकते हैं।

स्वयं राजा न योद्धव्यं यऽपि शस्त्रास्त्रकोविदैः।

मृता युद्धेषु दृश्यन्ते शक्तेभ्यः शक्तिमन्तराः।।

और राजाभोज की विजयें बहुधा मौल अधिकारियों ने सम्पन्न की। तभी तो वे सारस्वत साधना निश्चितता से कर सके। तब भी राजा भोज अपने शत्रुओं को पराजित करते रहे। शत्रु राजा भोज से बहुधा आतंकित रहते थे। प्रबन्धचिन्तामणि (श्लोक 72-73) में देश के विभिन्न राजाओं की दशा इस प्रकार बताई गयी है - भोज के भय से चौल सागर की गोद में समा जाता, आन्ध्र नरेश गुफाओं में जा छिपता, कर्णाटक का राजा सिर पर पट्टा (फेंटा) नहीं बाँधता, गुर्जर झरनों की ओर चला जाता, चेदिराज को अस्त्र चाट जाते, कान्यकुब्ज राजा झुककर कुबड़ा हो जाता, कोंकण का राजा कोने में, द्वार कपाट के पास लाट, कलिंग आँगन में, कोशल का नया राजा ढेलों में रहता है। इस प्रकार भोज के कारागार में भारत के विभिन्न प्रदेशों के राजा स्थान पाने के लिए लड़ते रहते हैं। इसीलिए कहा गया कि राजा भोज के राज्य में लोहे और ताँबे का अभाव हो गया था। क्योंकि शत्रुओं को बाँधने की साँकलें बनाने में लोहा और दानपत्र देने के कारण ताँबा समाप्त हो गया था।

अस्य श्रीभोजराजस्य द्वयमेव सुदुर्लभम्।

शत्रूणां शृंखलै लौहं ताम्रं शासन पत्रकैः॥

राजा भोज के अनेक दान पत्र प्राप्त हो गये हैं और प्राप्त होते जा रहे हैं। राजा भोज के समकालीन काव्य प्रकाश में भी भोज की दानशीलता का एक श्लोक उद्धृत है। यही नहीं राजतरंगिणी में भी राजा भोज के दानोत्कर्ष की ख्याति का उल्लेख प्राप्त होता है। परवर्ती अनेक ग्रन्थ राजा भोज की उदारता तथा उनकी दानवीरता की बारबार प्रशंसा से भरे पड़े हैं। काव्यकला पर तो राजा भोज इतने अभिभूत थे कि कवियों को दोनों हाथ से धन लुटाते थे। इसीलिए उनके विषय में प्रसिद्धि हो गयी थी कि वे अक्षर अक्षर पर एक एक लाख देते थे -

प्रत्यक्षरं लक्षं ददौ।

कहा जाता है कि राजा भोज की सभा में पाँच सौ कवि और विद्वान थे। उनमें उव्वट, धनपाल, हलायुध, अमितगति, चित्तप आदि सुप्रसिद्ध रहे। इन सबकी पुस्तकें प्रकाशित हैं। इन विद्वानों की सभा के सभापति महाराजा भोज देव थे। उस सभा में काव्यपाठ, काव्य की समस्यापूर्ति, शास्त्रार्थ, कलाप्रदर्शन आदि होते रहते थे। अकबरकालीन फरिश्ता की पुस्तक (तारीख फरिस्ता) के अनुसार राजा भोज हर छठे मास चालीस दिन का उत्सव आयोजित करते थे, जिसमें देशभर के कवि, विद्वान और कलाकार सम्मिलित होते थे। राजा सबको पुरस्कार देकर विदा करते थे। ऐसे सारस्वत कार्यक्रम के लिए राजा भोज ने धारा तथा उज्जयिनी में शारदासदम, भारतीभवन या सरस्वतीकण्डाभरण नामक प्रशस्त भवन बनाये थे जिनमें विभिन्न शिलाओं तथा स्तम्भों पर काव्य, शास्त्र या व्याकरण उत्कीर्ण किये गये थे। इससे उप भवन का वातावरण ही सारस्वत हो गया था। उस भवन में नाट्यादि के प्रदर्शन भी होते रहते थे। यह कामसूत्र में व्यक्त भावना के अनुरूप था जिसके अनुसार प्रत्येक नगर में एक सरस्वती भवन होना चाहिए जिसमें कलाकारों के प्रदर्शन प्रत्येक पखवाड़े करने का आग्रह प्रकट किया गया है।

राजा भोज अपने विद्वानों को योग्यतानुसार विभिन्न विषयों के ग्रन्थ लिखने के लिए प्रेरित करते रहते थे। ऐसे कई विद्वानों तथा कवियों की आत्म स्वीकृतियाँ उनकी पुस्तकों से ज्ञात होती हैं। उव्वट, धनपाल, छिन्नप, अमितगति, केशव, निचुल आदि उनमें से उल्लेखनीय हैं। सभासदों, मित्रों और विद्वानों के आग्रह पर राजा

भोज ने भी शृङ्गारमञ्जरीकथादि ग्रन्थों की रचनाएँ कीं। राजा भोज ने अपने समय के ज्ञात प्रायः सभी विषयों पर ग्रन्थों की रचनाएँ की हैं। उनकी प्रामाणिकता इससे प्रकट होती है कि उनमें से कई की टीकाएँ होती रहीं और परवर्ती अनेक ग्रन्थकार उन्हें प्रमाण रूप में उद्धृत करते रहे। दशबल, शूलपाणि, अल्लादनाथ, रघुनन्दन आदि ने अपने धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों में, भावप्रकाश, माधव के रूग्नि निश्चयादि आयुर्वेदिक ग्रन्थों में, केशवार्क ने ज्योतिर्विद के रूप में, क्षीरस्वामी, सायण, महीप आदि ने वैयाकरण के रूप में, चित्रप, देवेश्वर, विनायक, शंकर, सरस्वतीकुटुम्बदुहितृ आदि ने कवि के रूप में तथा रामचन्द्र सूरि, मल्लिनाथ, भानुजि दीक्षित आदि ने विभिन्न विषयों के प्रमाण में राजा भोज का स्मरण किया है।

प्रबन्ध चिन्तामणि के अनुसार राजा भोज के 104 गीत-प्रबन्ध, इतने ही भवन और इतने ही विरुद थे। सरस्वतीकण्ठाभरण की एक टीका के अनुसार राजा भोज के 84 ग्रन्थ और इतने ही विरुद थे। पारिजातमञ्जरी के अनुसार धारा नगरी में 84 चौराहे और इतने ही देवालय थे। उदाहरणार्थ सरस्वती कण्ठाभरण राजा भोज के दो ग्रन्थों के नाम हैं, उनके धार तथा उज्जैन के भारती भवनों के नाम भी थे और उनक विरुद भी था। भोज के एक वंशज के शिलालेख के अनुसार राजा भोज के 104 भवन और विरुद थे। इससे प्रबन्ध चिन्तामणि की पूर्वोक्त बात की पुष्टि होती है। राजा भोज के ताम्रपत्रों तथा कतिपय ग्रन्थों की पुष्पिकाओं में उन्हें 'महाराजाधिराज परमेश्वर' राजकीय उपाधि से सम्पन्न बताया गया है। उन्हें त्रिभुवननारायण, मालवमण्डन, मालवचक्रवर्ती, अवन्तिनायक, निर्वाण नारायण, लोकनारायण, विदर्भराज, अहिराज या अहीन्द्र, अभिनवार्जुन, रणरंगमल्ल आदि विरुदों से विभिन्न सन्दर्भों में पुकारा गया है। उनके अनेक ग्रन्थों के नाम भी विरुद हो सकते हैं। सरस्वतीकण्ठाभरण, राजमृगांक, राजमार्तण्ड, विद्वज्जनवल्भ, भुजबलभीम, भीमपराक्रम, भीमप्रकाश, तत्त्वप्रकाश, शृङ्गार प्रकाश, संगीत प्रकाश, युक्तिकल्पतरु, आयुर्वेदसर्वस्व, ज्योतिःसागर, चाणक्यमाणिक्य, आदित्य प्रताप, शालिहोत्र, चारुचर्य, विद्याविनोद, व्यवहार समुच्चय, समरांगणसूत्रधार, अवन्तिकूर्म, कोदण्डमण्डन सहित कितने ही ग्रन्थनाम राजा भोज की विभिन्न विशेषताएँ प्रकट करते विरुद हो सकते हैं। राजा भोज में विभिन्न गुणों का समाहार था। पूर्वोक्त विरुदों

से उनके गुण प्रकट होते हैं। शृङ्गारमञ्जरी कथा में भास, गुणाढ्य, भवभूति आदि भी उनके विशेषण बताये गये हैं।

राजा भोज गुणाग्राहक थे। विभिन्न कवियों, शास्त्रज्ञों, कलाकारों, वैज्ञानिकों को उनका आश्रय प्राप्त था। राजा भोज स्वयं भी न केवल कवि और काव्यास्त्रज्ञ थे अपितु अपने समय तक ज्ञात प्रायः सभी विषयों के ज्ञाता और उन उन विषयों के विभिन्न ग्रन्थों के समर्थ और विद्वत्प्रिय रचयिता भी थे। प्राचीन ग्रन्थों से ज्ञात होता है कि उनके 104 गीत प्रबन्ध और 84 ग्रन्थ थे। एक राजा राजकीय प्रबन्ध करते हुए तथा विभिन्न युद्ध करते हुए इतने ग्रन्थ कैसे लिख सकता है। आधुनिक विद्वानों द्वारा ऐसी जिज्ञासा की जाती है। राजा भोज एक योग्य शासक थे। राजकाज उनके विश्वसनीय मौल अधिकारी और सेनापति सम्हालते थे। राजा को स्वयं युद्ध नहीं करना चाहिए। क्योंकि अशक्त भी शक्त को मार सकता है। यह बात राजा भोज ने अपने युक्तिकल्पतरु में कही है। इससे पूर्वोक्त बात पुष्ट हो जाती है। परन्तु समय समय पर भोज की राजवीरता भी प्रकट होती रहती है। राजा भोज एकश्रुत और प्रतिभाशाली थे। उन्हें सब शास्त्र उपस्थित थे। अतः किसी भी विषय का ग्रन्थ लिखने में उन्हें देर नहीं लगती थी। इसीलिए उनके विषय में प्रबन्धचिन्तामणि में कहा गया है कि वे सहसा नाना प्रकार के प्रबन्ध लिख लेते थे - सहसा दृब्धनानाप्रबन्ध। इसके प्रमाण में राजा भोज के भोजचम्पू के युद्धकाण्ड के रचनाकार राजचूडामणि दीक्षित का दावा है कि भोज ने जिस रामचरित की रचना (सुन्दरकाण्ड तक) एक रात में कर ली थी उसे एक दिन में युद्धकाण्ड लिखकर वह पूरा कर रहा है।

भोजेन रामचरितं रचितं निशयैकया।

तं पूरयत्येकेनाहना श्रीचूडामणिदीक्षितः॥

यह उल्लेखनीय है कि उन दिनों तीव्रता से रचना करने वाले ऐसे समर्थ विद्वान होते थे। बारहवीं शती के पूर्वार्द्ध में विरचित बिलपांक प्रशस्ति का रचयिता दावा करता है कि उसने एक दिन में एक महाकाव्य लिख लिया था - एकाहनिष्पन्न-महाप्रबन्धः। अतः भोज जैसे प्रतिभाशाली भी सहसा अनेक ग्रन्थों की रचना कर सकते हैं।

प्रभावकचरित से ज्ञात होता है कि उज्जैन के सरस्वती-कण्ठाभरण प्रासाद में

विद्वच्चक्रशिरोमणि मालवाधीश राजा भोज के अनेक विषयों के ग्रन्थ पढ़े पढ़ाये जाते थे। शब्द, अलंकार, दैवज्ञ, तर्कशास्त्र, चिकित्सा, राजसिद्धान्त, तरु, वास्तु, उदय, अंक, शकुन, अध्यात्म, स्वप्न, सामुद्रिक, निमित्त, व्याख्यान, प्रश्नचूडामणि, निवृत्ति, अर्थशास्त्र, मेघमाला, आयमसद्भाव इत्यादि उनमें प्रमुख हैं। तिब्बत, नेपाल, भारत तथा ब्रिटेनादि सहित विभिन्न देशों के हस्तलिखित ग्रन्थ संग्रहों में राजा भोज की रची तथा राजा भोज पर रची गयी विभिन्न पुस्तकों की पाण्डुलिपियाँ प्राप्त होती हैं। उनमें से कुछ प्रकाशित हैं तथा बहुधा अप्रकाशित हैं। उनके कई ग्रन्थों की टीकाएँ भी प्राप्त होती हैं। अपूर्ण चम्पूरामायण के पूरक युद्ध और उत्तरकाण्ड सदियों तक कई लेखक रचते रहे। राजा भोज ने स्वयं भी पातंजल योगसूत्रादि शास्त्रों की टीकाएँ की हैं। उनकी काव्य और काव्यशास्त्र, व्याकरण और कोष, दर्शन और अध्यात्म, ज्योतिष और धर्मशास्त्र, राजनीति और स्थापत्य, आयुर्वेद और वृक्षायुर्वेद, मौसम विज्ञान और जीवनचर्या, इतिहास और संगीत आदि विभिन्न विषयों सम्बन्धी अनेक पुस्तकें या उनके नाम प्राप्त होते हैं। ये ग्रन्थ आकार में लघु भी हैं और विशालकाय भी। सुभाषित संग्रहों में भी भोज के नाम से विभिन्न विषयक अनेक श्लोक प्राप्त होते हैं। परवर्ती ग्रन्थकारों ने भी राजा भोज के विभिन्न ग्रन्थों के नाम या उद्धरण दिये हैं। राजाभोज के ग्रन्थों या विषयों के उल्लेखों में से कुछ प्राप्त होते हैं और कुछ प्राप्त नहीं होते। जो प्राप्त हैं उनमें से भी कुछ पूर्ण हैं और कुछ अपूर्ण हैं। राजा भोज की उपलब्ध पुस्तकों में से कुछ पूरी प्रकाशित हैं और कुछ अपूर्ण प्रकाशित हैं। जो प्रकाशित हैं उनमें से भी अब बहुधा दुर्लभ हो गयी हैं। सुलभ तो बहुत कम हैं। जो सुलभ हैं उनमें से भी ठीक ठाक अनुवाद सहित पुस्तकें नहीं के बराबर हैं।

राजा भोज वाग्देवी के परम आराधक थे। उन्होंने वाग्देवी की सुन्दर प्रतिमा संवत् 1091 (1034 ई.) में बनवायी थी जो अब ब्रिटिश म्यूजियम, लन्दन में है। राजा भोज ने वाग्देवी की स्तुति की रचना की जो अब प्राप्त हो गयी है। कच्छप अवतार की स्तुति 'अवनिकूर्मशतम्' में ललित और सरल प्राकृत भाषा में प्राप्त होती है। चम्पूरामायण ललित और प्रौढ़ गद्य-पद्य में रचा गया अपूर्ण काव्य है। इसकी शैली इतनी आकर्षक है कि परवर्ती सैकड़ों वर्षों तक कई रचनाकार उसके

युद्ध और उत्तरकाण्डों की रचना करते रहे। इसकी अनेक टीकाएँ होती रहीं। इसके दो से पाँच काण्डों का आरम्भ उन्हीं शब्दों से हुआ है जिनसे वाल्मीकि रामायण के काण्डों से हुआ। इससे रामायण की मन्त्रात्मकता की रक्षा हो सकती है। एक टीकाकार के अनुसार चम्पूरामायण भोज के व्याकरण सरस्वतीकण्ठाभरण के सिद्धान्तों के उदाहरण रूप में रचा गया है। इस रामायण का आरम्भ गणपति की स्तुति से किया गया है।

लक्ष्मीं तनोतु नितरामितरानपेक्ष-  
मङ्घ्रीद्वयं निगमशाखिशिखाप्रवालम्।  
हेरम्बमम्बुरुहण्डम्बरचौर्यनिघ्नं-  
विघनाद्रिभेदशतधारधुरंधरं नः ॥

'शृङ्गारमञ्जरीकथा' ललित और प्रौढ़ गद्य में तेरह कहानियों की दशकुमारचरित जैसी शृंखलित कथा है। यह कहीं-कहीं खण्डित है। इसमें शृङ्गारप्रकाश में वर्णित प्रेम के द्वादश पूर्वरागों के कथात्मक उदाहरण प्राप्त होते हैं। इस कथा में स्वयं राजा भोज का तथा धारा नगरी का पारम्परिक वर्णन भी प्राप्त होता है। धारानगरी के वर्णन में वहाँ के वीर विलासोद्यान का ऐसा अनोखा वर्णन है जिसमें यन्त्रमानव (रोबोट) सहित विभिन्न यंत्रों की सक्रियता बताई गयी है। इसमें कला सम्बन्धी पारिभाषिक शब्दों का ऐसा भण्डार है कि वह किसी भी कलाकोष को समृद्ध कर सकता है। इसमें राजा भोज का वर्णन यन्त्रपुत्रक (रोबोट) करता है। छापा लेने के 'पत्रनिका' नामक साधन का भी उसमें उपयोग बताया गया है। राजा भोज का 'सुभाषित प्रबन्ध' संस्कृत सुभाषितों का सर्वप्राचीन लघु संकलन है। इसमें विभिन्न कवियों के 255 श्लोक हैं। कुछ श्लोक पहली जैसे हैं। वे सरस्वतीकण्ठाभरण में भी हैं। और उनकी वही वृत्ति यहाँ भी दी गयी है जो सरस्वती कण्ठाभरण में है। 'विद्याविनोद' भुज के राजप्रसाद के पुस्तकालय में है। शालिकथा और महाकाली विजय उपलब्ध नहीं है।

काव्यशास्त्र का सरस्वतीकण्ठाभरण विद्वानों में विख्यात है। इसके पाँच अध्यायों में अलंकार, रस, गुण, दोष आदि का पारम्परिक विवरण होने पर भी नवीनता है। उसमें शब्द, अर्थ तथा उभय अलंकारों के 24-24 भेद किये गये हैं।



गुण, दोष के भी इतने ही भेद हैं। कई नये अलंकारों के सोदाहरण विवेचन पाये जाते हैं। सरस्वतीकण्ठाभरण का विस्तार 'शृङ्गार प्रकाश' है। यह साहित्यशास्त्र का सबसे विशाल ग्रन्थ है। इसमें नाट्यशास्त्र के बराबर 36 प्रकाश हैं। इसमें शृङ्गार को ही रस माना गया है। इसमें समस्त शास्त्रों का समन्वय पाया जाता है तथा प्रायः साढ़े सात हजार संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश के श्लोक उद्धृत हैं। भोज के ग्रन्थों में यही सबसे विशालकाय है। इसके आरम्भ में आठ प्रकाशों में व्याकरण शास्त्र है। व्याकरण का एक स्वतंत्र ग्रन्थ 'सरस्वतीकण्ठाभरण' है। यह पाणिनि की अष्टाध्यायी के समान आठ अध्यायों की पुस्तक है जिसमें छह हजार सूत्र हैं। जबकि पाणिनि के चार हजार सूत्र हैं। राजा भोज ने पाणिनि के बाद के वार्तिक, महाभाष्य, कैयट आदि के सुधारों का उपयोग करते हुए अपने भी स्वतंत्र कई तथ्य जोड़े हैं। कई वैयाकरणों ने भोज के मन उद्धृत किये हैं। इस पुस्तक की भी कई टीकाएँ होती रहीं। भोज का एक नाममालिका कोश भी है जिसमें विभिन्न शब्दों के कई नये अर्थ भी प्राप्त होते हैं।

राजा भोज का समरांगणसूत्रधार सात हजार श्लोकों का अपूर्ण ग्रन्थ होने पर भी वास्तु सम्बन्धी विशिष्ट विवरणों से पूर्ण है। राजा भोज ने इसमें सिद्धान्त प्रतिपादित किये और व्यवहार में धारा, उज्जैन, भोजपुर आदि कई नगर बसाये उद्यान लगवाये, मन्दिर बनवाये, तालाब और बाँध बनवाये। इस पुस्तक में विभिन्न यंत्रों के साथ विमानों की भी संक्षिप्त चर्चा है। भोज विरचित युक्तिल्पतरु प्रायः दो हजार श्लोकों का ऐसा ग्रन्थ है जिसमें वास्तु, राजनीति, जहाज निर्माण, रत्न, पशु विज्ञान, आयुध विज्ञान आदि वर्णित हैं। यह तत्कालीन राजवर्ग के लिए आधार पुस्तक है। राजकुमारों के ज्ञान के लिए आवश्यक ऐसी ही एक और पुस्तक 'चारुचर्या' है। इसमें वर्ष भर की दैनिक जीवनचर्या वर्णित है। धर्म, नीति तथा वैद्यक के समन्वय के कारण यह आदर्श पुस्तक है। विभिन्न ऋतुओं के योग्य वस्त्रों, लेपों, पुष्पों, अलंकारों, खाद्य, पेय आदि की उपयोगी और शोभन चर्चा इसमें की गयी है। इसमें विभिन्न स्रोतों के जलों की विशेषताएँ भी विस्तार से वर्णित है। राजकुमारों के ही ज्ञान के लिए चाणक्य-माणिक्य नामक आठ अध्यायों की पुस्तक में राजनीति तथा लोकनीति सम्बन्धी श्लोकों का संग्रह किया गया है। इसी प्रकार नीति निबाधन में राजा, मंत्री, पुरोहित, सेनापति सहित विभिन्न शासकीय अधिकारियों तथा कर्मचारियों की

योग्यताएँ बतायी गयी हैं।

राजा भोज के आयुर्वेद सम्बन्धी भी अनेक ग्रन्थ ज्ञात हैं। राजमृगांक, आयुर्वेद सर्वस्व, राजमार्तण्डयोग सार संग्रह आदि उनमें प्रमुख हैं। इन ग्रन्थों में लोकोपयोगी स्वास्थ्य सम्बन्धी विभिन्न सरल व सर्वसुलभ नुस्खे बताये गये हैं। यही नहीं उनका रचा शालिहोत्र नामक ग्रन्थ भी है। इसमें अश्व सम्बन्धी विवरण प्राप्त होता है। विश्रान्त विद्याविनोद भी ऐसा ही ग्रन्थ बताया गया जाता है। माघ के शिशुपालवध महाकाव्यकी टीका (सर्ग 5) में भी भोज के अश्व सम्बन्धी कुछ श्लोक उद्धृत हैं। युक्तिकल्पतरु में भी अश्व की विशेषताएँ वर्णित हैं।

यों तो राजा भोज के दर्शन विषयक अनेक ग्रन्थ बताये जाते हैं परन्तु उनमें तत्त्वप्रकाश सबसे प्रसिद्ध है। इसकी बारहवीं शती से ही टीकाएँ होने लगी थीं। शैव दर्शन सम्बन्धी यह ग्रन्थ उस परम्परा में विशेष माना जाता रहा है। राजा भोज ने ज्योतिष् सम्बन्धी अनेक ग्रन्थ रचे हैं। गणित और फलित दोनों से सम्बन्धित हैं उनके ग्रन्थ। राजमार्तण्ड, राजमृगांक, विद्वज्जनवल्लभप्रश्नज्ञान, प्रश्नचिन्तामणि, प्रश्न केरली, आदित्यप्रतापसिद्धान्त, ज्योतिःसागर सार, ग्रहभाष्यम्, भुजबल निबन्ध या भुजबलभीम, भोजदेव संग्रह, अब्द प्रबोधादि के साथ ही रमलामृत या भोजसामुद्रिक आदि की चर्चा भी पायी जाती है। इनमें से कुछ प्राप्त हैं। इन ग्रन्थों में दाम्पत्ययोग सम्बन्धी भोज का फलित विशेष उल्लेखनीय बताया जाता है। अन्य विषयों पर भी भोज ने दक्षतापूर्वक अपने विचार प्रकट किये हैं। राजा भोज के अन्य विषयक ग्रन्थों में भी ज्योतिष् को बार बार महत्त्व दिया गया है। एक ऐसे यन्त्र का उल्लेख भी किया गया जो ग्रहों-नक्षत्रों की दैनिक स्थिति स्पष्ट करता है। राजा की मेघमाला में वर्षा योग का विवरण रहा होगा।

राजा भोज ने साहित्य, कला और विज्ञान में समान दक्षता से नये नये विचार ऐसे प्रस्तुत किये जो भविष्य के आदर्श बन गये। दर्शन आदि शास्त्रों में व्यक्त मौलिक विचारों का अनुसरण उन विषयों के विद्वान भी करते रहे। समरांगण सूत्रधार में उज्ज्व (सायफन) अथवा लिफ्ट की भी चर्चा की गयी है। राजा भोज ने यन्त्र (मशीन) की जो परिभाषा दी है वह आज भी सार्थक प्रतीत होती है। विभिन्न पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि आदि भूतों को नियंत्रित कर अपनी इच्छानुसार चलवाना यंत्र

कहलाता है।

यदृच्छया च वृत्रानि भूतानि स्वेन प्रवर्त्मना।  
नियम्यास्मिन्नमति यत् तद्यन्त्रमिति कीर्तितम्॥

ये यन्त्र कई प्रकार के होते हैं। यथा स्वयं चलने वाला, एक बार चला देने पर चलता रहने वाला, दूर से गुप्त शक्ति द्वारा चलाया जाने वाला तथा निकट रहकर चलाया जाने वाला।

स्वयं वाहमेकं स्यात्सकृत् प्रेर्य तथा परम्।  
अन्यदन्तरितं वाह्यं वाह्यमन्यत्वदूरतः॥

यन्त्र की गति दो प्रकार की होती है - यन्त्र की अपनी गति तथा यन्त्र द्वारा उसकी गति जिसमें यन्त्र लगा रहता है। चलते रहट पर रेंगते हुए कीड़ों में दोनों गतियाँ पायी जाती हैं। इन दोनों गतियों से यन्त्र में अनेक विचित्रताएँ उत्पन्न की जा सकती हैं। वे यन्त्र प्रशंसनीय माने जाते हैं जिनमें अलक्षता और विचित्रता हो। यन्त्रहस्ती चिंघाड़ता तथा चलता प्रतीत होता है। तोते आदि पक्षी ताल के अनुसार नृत्य करते और पाठ करते हैं। पुतली, हाथी, घोड़ा, बन्दर आदि भी इसी प्रकार अंग संचालन करते हुए आकर्षित करते हैं। शृङ्गारमञ्जरी कथा में ऐसे विभिन्न यंत्रों की गतिविधियाँ वर्णित हैं।

दीर्घायु राजा भोज का जीवन काल हर प्रकार से सार्थक था। वे नियमित, अनुशासनप्रिय, महान् विजेता, सफल तथा लोकप्रिय शासक, अत्यन्त उदार, कलाप्रेमी, वैज्ञानिक, दार्शनिक, ज्योतिर्विद्, धर्मशास्त्री, शिल्पशास्त्र के मर्मज्ञ, महान् निर्माता, लोकहित निरत कवि, विद्वानों तथा कलाकारों के आश्रयदाता, महादानी, वीरागुणी तथा गुणों के पुजारी थे। वे अपने जीवनकाल में ही कथा-कहानियों के नायक बन गये थे। फिर तो निरन्तर राजा भोज से सम्बन्धित रोचक कहानियों का संसार बुनाता चला गया। देश-विदेश की विभिन्न भाषाओं में विचित्र कथाओं, काव्य कथाओं तथा उदारता सम्बन्धी कथाएँ विशेष हैं। यहाँ तक कि सिंहासनद्वान्त्रिशिका में बत्तीस पुतलियों की कथाओं में भी वे विद्यमान हैं। मंगोली भाषा की प्राचीन 'अराजिबुजि' पुस्तक में भी भोज कथाएँ हैं। प्राचीन और वर्तमान विभिन्न भाषाओं में भोज सम्बन्धी जो पुस्तकें लिखी गयी हैं उनमें से कुछ प्रकाशित

हैं और बहुधा अप्रकाशित हैं। विभिन्न लोकभाषाओं में भोज सम्बन्धी लिखित-अलिखित वाचिक परम्पराओं का संचय भी अभी अपेक्षित है। लिखित और अलिखित रूप से लोकव्यापी जो साहित्य और सूचनाएँ फैली हुई हैं उनसे ही सिद्ध होता है राजा भोज पिछली एक सहस्राब्दी से निरन्तर कितने अधिक लोकप्रिय रहे।

कथा-कहानियाँ बताती हैं कि वे अपने समकालीन मित्र शत्रु राजाओं में अपने गुणों के कारण समान रूप से आदर्श बन गये थे और वे भोज के गुणों के अनुसरण में गौरव का अनुभव करते थे। परवर्तीकाल में तो यह प्रवृत्ति बढ़ती गयी। यही कारण है कि भिन्न-भिन्न समय के विभिन्न नृप लघु भोजराज, सरस्वतीकण्ठाभरण, नवभोजराज, अभिनव भोजराज आदि उपाधियाँ धारण करते रहे। परवर्ती टीकाकारों तथा विद्वानों ने भोज को 'सर्वज्ञ' माना है।

राजा भोज ने रणक्षेत्र में तो समझौता नहीं किया परन्तु ज्ञान के क्षेत्र में सदा समझौता किया। उनकी पुस्तकें इसका प्रमाण है। नीति, वैद्य और धर्मशास्त्र का समन्वय चारुचर्या में है। तात्पर्य और ध्वनि का समन्वय काव्यशास्त्र में है। व्याकरण और काव्य शास्त्र का समन्वय शृङ्गार प्रकाश है। चतुर्वर्ण का साहित्य शास्त्र से समन्वय भी उसमें ही है। ज्योतिष् और धर्मशास्त्र का समन्वय, वास्तु और यन्त्रों का समन्वय, जीवन और जल का समन्वय, सिद्धान्त और व्यवहार का समन्वय और अन्ततः समकालीन विभिन्न धर्मों का समन्वय। उनका कहना है कि बौद्धों की बातें सुननी चाहिए, जैनों की करनी चाहिए, वेदिकों के अनुसार व्यवहार करना चाहिए और ध्यान शिवजी का करना चाहिए।

श्रोतव्यः सौगतो धर्मः कर्तव्यः पुनरार्हतः।

वैदिको व्यवहर्तव्यो ध्यातव्यः परमः शिवः॥

इसी राजधर्म का अनुसरण करते हुए उनका कहना है कि अन्यो के किसी भी धर्म की न तो निन्दा करनी चाहिए और न उससे द्वेष करना चाहिए।

अन्येषामपि देवानां निन्दां द्वेषं च वर्जयेत्।

राजा भोज सम्बन्धी भोजप्रबन्ध अनेक हैं जिनमें से बल्लाल का सर्वाधिक लोकप्रिय है। भोजचरित, भोजरासो, भोजराजांकरूपक आदि सहित भोज सम्बन्धी ग्रन्थों की लम्बी परम्परा है। स्वयं राजा भोज विरचित ग्रन्थों में वाग्देवीस्तोत्र,

अवनिकूर्मशतम्, चम्पूरामायण, सुभाषित-प्रबन्ध, शृङ्गारमञ्जरी कथा, सरस्वती-कण्ठाभरण, शृङ्गारप्रकाश, नाममालिका, सरस्वतीकण्ठाभरण (व्याकरण), तत्त्वप्रकाश, शालिहोत्र, प्रश्न चूड़ामणि, राजमृगांक, राजमार्तण्ड योगसूत्रवृत्ति, राजामर्तण्ड (ज्योतिष्), समरांगणसूत्रधार, युक्ति कल्पतरु आदि प्रकाशित हैं। इनके अतिरिक्त कितने ही ग्रन्थ अप्रकाशित हैं। कितने ही ग्रन्थ प्राप्त नहीं होते।

राजा भोज की एक महादानी के रूप में प्रसिद्धि रही। अक्षर अक्षर पर लाखों (प्रत्यक्षरं लक्षं ददौ) जैसी प्रशस्तियाँ उनके विषय में सुप्रसिद्ध हैं। राजतरंगिणी से भी इसकी पुष्टि होती है। राजा भोज ने समरांगणसूत्रधार जैसे विशालकाय शिल्प सम्बन्धी विशालकाय शास्त्र की न केवल रचना की अपितु उन्होंने धारानगरी, उज्जयिनी, विदिशा (भाइल्लस्वामीपुर), भोजपुर (रायसेन) तथा पटना के पास के भोजपुर के नगर बसाये। अपनी राजधानी उज्जयिनी से हटाकर धारानगरी कर दी जो उनकी कुल राजधानी थी। क्योंकि वह सुरक्षित स्थान था। गढ़कालिका क्षेत्र से हटाकर उज्जैन को महाकाल की ओर बसाया। विदिशा को भाइल्लस्वामीपुर नाम से फिर बसाया जो बाद में भेलसा कहलाया। राजा भोज का एक नाम भूपाल था। इसी नाम पर इनका बसाया नगर बाद में भोपाल कहलाया। इसे भोजपाल भी कहा जाता है।

राजा भोज ने अपने राज्य में कई सरस्वतीकण्ठाभरण शालाएँ बनवायीं जिनमें से धार की शाला अब भोजशाला नाम से प्रसिद्ध है जिसमें प्रचुर शिलांकित साहित्य आज भी देखा जा सकता है। वह तो वास्तव में शिलांकित पुस्तकालय ही है। ऐसा ही एक सरस्वतीकण्ठाभरण उज्जैन में भी था। राजा भोज ने राज्य में भूमिज शैली के मन्दिर बनवाये। ऐसे ही केदार, रामेश्वर, सोमनाथ, मुण्डीर, महाकाल आदि के मन्दिर पंचायतन बनवाये। साथ ही भोजपुर का सुप्रसिद्ध मन्दिर तथा चित्तौड़ में त्रिभुवननारायण का मन्दिर भी बनवाया। आसाम में तेजपुर के पास पूर्वोक्त भूमिज शैली के राजा भोजकालीन अनेक मन्दिर विद्यमान हैं। काश्मीर में कपटेश्वर (कोटेर) में भोज ने एक शिव मन्दिर तथा एक कुण्ड बनवाया था जो अब भी विद्यमान है। इसका उल्लेख राजतरंगिणी में हुआ है। इसके जल से ही भोज रोज अपना मुँह धोते

थे। काच के घड़े में वहाँ का जल प्रतिदिन धार तक पहुँचने की व्यवस्था थी। भोपाल के पास भोजपुर में बेतवा पर उनके बनवाये बाँध से 250 वर्गमील की झील बन गयी थी जिसे माण्डू के सुलतान हुशंगाशाह ने तुड़वा दिया था। कहा जाता है कि उसका ही एक अवशेष भोपाल का वर्तमान तालाब है। इस प्रकार राजा भोज एक महान् निर्माता भी रहे।

वास्तव में राजा भोज ने जो साधा, जो किया, जो दिया और जो ज्ञात किया वह किसी ने नहीं। भोज के समान भोज ही थे।

साधितं विहितं दत्तं ज्ञातं तद्यन्न केनचित्।

किमन्यत् कविराजस्य श्रीभोजस्य प्रशस्यते ॥

इस प्रकार शास्त्र एवं शास्त्र के अप्रतिम समन्वयक, शास्त्र के अनवरत प्रयोक्ता, स्थापत्य की चतुर्दिक् क्रियान्वयन में निरत राजा भोज अपने अन्य वंशज तथा अन्य परवर्ती राजाओं के आदर्श बन गये थे। उस परम्परा का यह संक्षिप्त लेखा जोखा सुप्रसिद्ध पुराविद् हमारे गुरुवर के मार्गदर्शन में तैयार हुआ था जो अब आपके हाथों में देते हुए प्रसन्नता हो रही है। आशा है सुधीजनों को लिए यह उपयोगी होगी।

— डॉ. भगवतीलाल राजपुरोहित

## प्रथम पर्व प्रास्ताविक

वास्तुकला में प्रथम और महत्वपूर्ण कार्य है सुरक्षित और सुव्यवस्थित नगर की स्थापना। प्राचीन युग में नगर प्रायः राजधानी होते थे अथवा व्यापारिक मंडी अथवा धार्मिक स्थली। शत्रुओं के आक्रमण की सदा आशंका बनी रहती थी। इसलिए उसकी सुरक्षा की व्यवस्था आवश्यक होती थी। उस युग का जन धार्मिक और आस्थावान् होता था, अतः नगरी का शास्त्रानुमोदित होना भी आवश्यक था। भूमि की पवित्रता, देवताओं की प्रसन्नता, नागरिकों की आवश्यकता और राजकीय सुव्यवस्था के साथ ही निसर्ग और मनुजकल्पित सुन्दरता को भी आवश्यक माना गया था।

नगर-नियोजन वस्तुतः मानव की विकसित होती सभ्यता का परिणाम है। जैसे-जैसे उसकी आवश्यकताएँ बढ़ती गयीं, बस्तियों में वैसे- वैसे सुधार होते चले गये। सिन्धु-सभ्यता से पूर्ववर्ती नगरीय अवशेष भारत में प्राप्त नहीं होते, साहित्य में भी नहीं मिलते। परन्तु वहाँ उस युग की आवश्यकताओं की पूंजीभूत समाहार था। उस युग की मानवीय स्थिति का ज्ञान उन अवशेषों से हो जाता है। पहले ये नगर बसे, तब शास्त्र बने। शास्त्रों ने उन नगरों को शब्दों में उतारा। जैसे जैसे युग बीतता गया नगरों में सुधार होता गया। नगर की कल्पना निश्चित हो गयी,

उसकी रूपरेखा निर्धारित हो गयी। तब ग्रन्थों में कल्पना के नगर भी उतरने लगे। कवि अथवा शास्त्रकार की दृष्टि में आदर्श नगर कैसे होने चाहिये- वे अपनी कृतियों में उन्हें प्रस्तुत कर देते थे। स्थपति अपने व्यावहारिक ज्ञान के साथ ही उन विद्वानों की कल्पनाओं को भी साकार करने का प्रयास करते, शासन उसमें सहयोग देता और इस प्रकार नगर अधिक पूर्णता प्राप्त करते गये।

शिल्पशास्त्र अथवा वास्तुशास्त्र पर प्राचीनकाल में संस्कृत के अनेक ग्रन्थ सम्पूर्ण अथवा आंशिक रूप में रचे गये। मयमत, मानसार, अपराजितपृच्छा इत्यादि ऐसे ही ग्रन्थ हैं जो सम्पूर्ण रूप से शिल्प को ही समर्पित हैं। कुछ ग्रन्थों के कुछ अंश इस विषय से सम्बद्ध हैं। यथा मत्स्यपुराण, अग्निपुराण, गरुडपुराण, विष्णुधर्मोत्तरपुराण, कौटिल्य का अर्थशास्त्र, शुक्रनीतिसार इत्यादि। सुप्रभेद, कामिक इत्यादि आगामों में भी इस सम्बन्ध में चर्चा हुई है। शिल्पशास्त्रीय ग्रन्थों के अनुरूप भोज का प्रयास भी सुविस्तृत रहा। भोज का युक्तिकल्पतरु तद्युगीन ज्ञान का विश्वकोष है। इसमें राजा और राजधानी के लिए आवश्यक सभी उपकरणों का विवेचन किया गया है। स्वभावतः राजा की राजधानी, नगर-स्थापना इत्यादि के विषय में भी चर्चा हुई है। और भोजकृत समरांगण-सूत्रधार तो मयमत और मानसार की परम्परा में पूर्णतया शिल्पशास्त्र अथवा वास्तुशास्त्र के लिये ही समर्पित है। इसमें नगर, छोटी बस्तियाँ, प्रासाद, भवन, देवालय इत्यादि के साथ ही मूर्ति, चित्र, यन्त्र, विज्ञान इत्यादि पर भी सुविस्तृत प्रकाश डाला गया है। वस्तुतः समरांगणसूत्रधार शिल्प सम्बन्धी महत्वपूर्ण बृहत्काय शास्त्रीय ग्रन्थ है।

समरांगणसूत्रधार का निर्वचन

समरांगणसूत्रधार में शिल्प सम्बन्धी समग्र सामग्री का समन्वय है। समरांगणसूत्रधार नाम का निर्वचन इस प्रकार किया जा सकता है।<sup>1</sup> 'समरांगण-निर्माणनिरतो यस्मिन् सूत्रधारः' अथवा 'समरांगणनिर्माणे दक्षः सूत्रधारः' अथवा 'समरांगणनिर्माणपर्यन्तं सूत्रधारः निरतो यस्मिन् शिल्पे' अर्थात् जिसमें सूत्रधार समरांगण के निर्माण में निरत है अथवा समरांगणनिर्माण में दक्ष सूत्रधार अथवा

1. द्रष्टव्य - डॉ. भगवतीलाल राजपुरोहित का लेख- शृङ्गारमञ्जरीकथा में भोज की कलादृष्टि। आर्ट ऑफ द परमार्स ऑफ मालवा, पृ. 99

‘समरांगणनिर्माण पर्यन्त सूत्रधार जिसमें निरत हो’। सूत्रधार का तात्पर्य है गृहनिर्माण कुशल कारीगर। परन्तु प्रश्न उपस्थित होता है कि ‘समरांगण’ का क्या अर्थ है? सामान्य अर्थ होता है - युद्धक्षेत्र। परन्तु वास्तुकला का युद्ध से क्या सम्बन्ध हो सकता है। युद्धक्षेत्र में चाहे सम्बन्ध न हो परन्तु वास्तु का रणथल (रणस्थल) से निकट का सम्बन्ध है। किसी भी भवन की छत का भराव कर उसे पूर्णता प्रदान करने को मालवा और विशेषतः उज्जैन के कारीगर ‘रणथल करना’ कहते हैं। यह ‘रणथल’ रणस्थल का अपभ्रंश है। रणस्थल का ही पर्याय है ‘समरांगण’। जब तक छत बनती है, वास्तुकार्य पूर्ण हो जाता है। भूमिचयन, भवननिर्माण-द्वार, खिड़कियाँ, झरोखे, भित्तियों को अलंकृत करना इत्यादि समस्त कार्य तब तक पूर्ण हो जाते हैं। छत के बाद और कुछ बनाना नहीं बचता है। ये छतें किसी भी प्रकार के स्थापत्य की हो सकती हैं। अतः समस्त प्रकार के वास्तु की समस्त छतों तक का विवरण वास्तुनिर्माण के अधीन आ जाता है। पुनः जिस भवन की छत सुदृढ़ और जलरोध में सक्षम बनी वह भवन ही पूर्ण और दीर्घजीवी हो सकेगा। अन्यथा वह कष्टदायी सिद्ध होगा। अतः रणथल अर्थात् समरांगण के निर्माण में और तब तक के स्थापत्य सम्बन्धी सभी निर्मितियों में सक्षम सूत्रधार के लिए जिस ग्रन्थ में दिग्दर्शक विस्तृत विवरण हों वह हुआ समरांगणसूत्रधार।

समरांगणसूत्रधार पारम्परिक शिल्पग्रन्थ होने पर भी समकालीन सन्दर्भों की उपेक्षा नहीं करता है। अपने युग का वह शिल्प सम्बन्धी व्यापक दर्पण है। समरांगण-सूत्रधार में शिल्प और कला सम्बन्धी जिन विशेषताओं का भोज ने विधान किया है, शृङ्गारमञ्जरीकथा में उन्हें उसने व्यावहारिक रूप में भी प्रस्तुत किया है।<sup>1</sup> यह आकस्मिक संयोग नहीं कहा जा सकता बल्कि एक ही कृतिकार की दो कृतियों की परस्पर पुष्टि भी हो रही है।

भोज और परमार नृपों ने स्थापत्य-कला को अन्य कलाओं के समान ही पर्याप्त प्रश्रय दिया। वैरिसिंह, मुञ्ज, भोज, उदयादित्य, देवपालदेव इत्यादि की निर्मितियों अथवा उन निर्मितियों के अवशेष अथवा उल्लेख अब भी यत्र तत्र प्राप्त होते हैं। इन निर्माताओं में भोज शिरोमणि है जिसने अपनी राजधानी धारा का ही

पुनर्निर्माण ही नहीं किया बल्कि भोपाल के निकट स्वनिर्मित विशाल झील के तट पर भोजपुर नामक बस्ती भी बसाई थी।

स्रोत

परमारयुगीन मालवा के नगर-स्थापत्य सम्बन्धी ज्ञान पुरातात्विक और साहित्यिक स्रोतों से होता है। विविध पुरातात्विक उत्खनन रिपोर्ट और पुरातात्विक सर्वेक्षण रिपोर्टों से तो उसका ज्ञान होता ही है परन्तु तद्युगीन कई साहित्यिक ग्रन्थों से भी इसकी पुष्टि होती है। पर यह पुष्टि सदा नहीं होती। कभी-कभी साहित्य में जिन नगरों या बस्तियों का वर्णन मिलता है उनके अवशेष अब उपलब्ध नहीं होते अथवा उन्हें अब हम पहचान नहीं पा रहे हैं, सम्भवतः भविष्य में यह सम्भव हो सके। जैसे पतंजलि का निवास गोन्द अब भोपाल के निकट के गोंदरमऊ के रूप में पहचान लिया गया है। बौद्ध-साहित्य से स्पष्ट है कि यह स्थल विदिशा एवं उज्जयिनी के मध्य स्थित एक व्यापारिक केन्द्र था। इसी प्रकार कालिदास ने उज्जयिनी में सिप्रा के अतिरिक्त गन्धवती नदी का भी उल्लेख किया जो महाकाल मन्दिर से अनधिक दूर से बहती थी परन्तु आज वह भी दिखाई नहीं दे रही है। यद्यपि उसके बहाव-मार्ग को पहचान लिया गया है।

साहित्य में सभी बस्तियों का वर्णन न मिलना स्वाभाविक है। ऐसी कई बस्तियों के पुरातात्विक अवशेष आज उपलब्ध होते हैं। परन्तु साहित्य में उनका कोई उल्लेख उपलब्ध नहीं होता। मोड़ी, हिंगलाजगढ़, देपालपुर इत्यादि ऐसी ही बस्तियाँ हैं। ऐसी स्थिति में किसी एक माध्यम से ही उन नगरों का ज्ञान होता है।

परमारयुगीन मालवा के ऐसे कई प्रथित नगर हैं जो अत्यन्त प्राचीन हैं एवं प्राचीन साहित्य में भी उनके उल्लेख उपलब्ध होते हैं। ऐसे नगरों में उज्जयिनी, विदिशा, धारा, ओंकारेश्वर इत्यादि गिने जा सकते हैं। कुछ दशपुर इत्यादि ऐसे भी नगर हैं जो आज विद्यमान हैं और परमार युग से भी पूर्व विद्यमान थे परन्तु जिनके परमारयुगीन कोई उल्लेख प्राप्त नहीं होते। इससे स्पष्ट है कि दशपुर जैसे नगरों का परमार युग में महत्त्व क्षीण हो गया था।

उज्जयिनी और विदिशा के तो प्राचीन साहित्य में अगणित उल्लेख उपलब्ध होते हैं। विविध पुराण, महाभारत, बौद्धसाहित्य, विपुल जैन साहित्य, विविध

1. द्रष्टव्य-कथा का धारावर्णन और स.सू. का सम्बद्ध विवरण

महाकाव्य, अनेक गद्यग्रन्थ, चम्पू कृतियाँ, प्राचीन अभिलेख और मुक्तक काव्यों में इन नगरियों का अमित वर्णन उपलब्ध होता है। परन्तु व्यवस्थित वर्णन प्रथम बार बाणभट्ट की कादम्बरी में ही प्राप्त होता है। इससे पूर्व भासकृत चारुदत्त, प्रतिज्ञायौगन्धरायण और स्वप्नवासवदत्तम् में, शूद्रकृत मृच्छकटिक और पद्मप्राभृतक एवं श्यामिलकृत पादताडितक भाण में भी उज्जयिनी का कुछ विशेष विवरण प्राप्त होता है। कालिदास के मेघदूत, रघुवंश, मालविकाग्निमित्र इत्यादि में इन नगरों का सांकेतिक विवरण प्राप्त होता है। दण्डी के दशकुमारचरित और गुणादय की बृहत्कथा के उपलब्ध संस्कृत रूपान्तरों में इनका कुछ विशेष विवरण प्राप्त होता है।

धारा के गणपतिनागकृत भावशतक और उससे पूर्व केवल संकेत ही प्राप्त होता है। वस्तुतः परमार युग से पूर्व उसका प्रकटावय वर्णन नहीं होता। ओंकारेश्वर के संकेत केवल पुराणों में प्राप्त होते हैं। परन्तु नाम से ही स्पष्ट है कि आरम्भ में ही यह बस्ती ओम् (ॐ) के आकार में बसी। इसका प्रथम ज्ञात प्रसिद्ध नृप मान्धाता है। माण्डव (मण्डपदुर्ग), वर्धनापुर (बदनावर) इत्यादि सम्बन्धी परमारकाल या कुछ पूर्व से प्राप्त होती है। इनका जैन-साहित्य में ही विशेष उल्लेख हुआ है।

परमारयुगीन कई कृतियों और शिलालेखों से इस युग का नगर-संबन्धी ज्ञान प्राप्त होता है। धनपालकृत तिलकमञ्जरी, पाइअलच्छी, हेमचन्द्रकृत दूयाश्रय काव्य, भोजकृत समरांगण-सूत्रधार, युक्तिकल्पतरु, शृङ्गारमञ्जरीकथा, मेरुतुंगकृत प्रबन्धचिन्तामणि, बल्लाकृत भोजप्रबन्ध, पद्मगुप्तकृत नवसाहसांकचरित, बिहूणकृत विक्रमांकदेवचरित, मदनकृत पारिजातमञ्जरी, प्रभावकचरित चतुर्विंशतिप्रबन्ध इत्यादि विभिन्न कृतियों से परमारयुग और प्रसंगतः तद्युगीन नगरों का वैशिष्ट्य ज्ञात होता है।

वर्तमान अध्ययनों से इस युग पर विशेष प्रकाश पड़ा है और कई तथ्य प्रकाशित हुए हैं। विविध पुरातात्विक सर्वेक्षण रिपोर्टों एवं पुरातात्विक उत्खनन रिपोर्टों के अतिरिक्त धार स्टेट गजेटियर और ग्वालियर स्टेट गजेटियर में भी सम्बद्ध सामग्री का संकलन किया गया है। हिस्ट्री ऑफ धार स्टेट के अनन्तर श्रीनिवास अय्यंगरकृत भोज राजा, विश्वेश्वरनाथरेड कृत राजा भोज, परमार इंस्क्रिप्शन्स, डी.सी.

गांगुलीकृत हिस्ट्री ऑफ परमार डायनेस्टी, बी.सी. ला कृत उज्जयिनी, डोंगरेकृत उज्जयिनी, विक्रम-स्मृति-ग्रन्थ, डॉ. डी.एन. शुक्ल के समरांगण-सूत्रधार तथा स्थापत्य सम्बन्धी विविध ग्रन्थ, उज्जयिनी दर्शन, मालविका, प्रतिपाल भाटिया कृत परमारस, डॉ. के.सी. जैन कृत मालवा थ्रू द एजेस इत्यादि प्रकाशित एवं भोज सेमिनार तथा परमार सेमिनार के प्रकाशित-अप्रकाशित लेखों के साथ ही डॉ. भगवतीलाल राजपुरोहितकृत प्रतिभा भोजराजस्य, राजा भोज का रचनाविश्व, भोजराज, राजा भोज, भोजदेव तथा स्वयं राजा भोज की कृतियाँ और विविध विकीर्ण लेख इस क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण हैं जिनसे इस युग के स्थापत्य पर प्रकाश पड़ता है।

वास्तु का आधार

वास्तु-विद्या के परमार भोज के आकर ग्रन्थ समरांगण सूत्रधार में तत्सम्बन्धी सर्वशास्त्रसम्मत तथ्य प्रस्तुत किये गये हैं। तदनुसार देव, नर, गज, गौ, अश्व इत्यादि की निवासभूमि जब ईंट, पत्थर, काष्ठ, लोहा, कील इत्यादि से निर्मित की जाए तो शिल्पज्ञ उसे वास्तु कहते हैं। इस शिल्प के अधीन ही ग्राम, पुरी, खेट, कर्वटक, दुर्ग इत्यादि का निर्माण होता है।<sup>1</sup> इसमें काल, दिशा, स्थान का औचित्य देखा जाता है। मान (नाप) का विशेष महत्त्व है। समस्त वस्तुओं का निश्चय मान मान से होता है। परमाणु योगियों को ही दिखाई देता है। आठ परमाणुओं का एक त्र्यस्रेणु होता है। इसका आठ गुना बाल के अग्रभाग के बराबर होता है। आठ बालाग्र के बराबर एक लिखा (लींख), आठ लींख के बराबर एक यूका (जूं), आठ यूका के बराबर एक यव (जौ), आठ जौ के बराबर एक अंगुल, बारह अंगुल का एक वितस्ति (बालिशत), दो बालिशत का एक हाथ, दो हाथ का एक किष्कु, पच्चीस हाथ का एक प्राजापत्य, छब्बीस मुष्टि का एक धनु, सत्ताईस धनु का एक ग्रह, चार हाथ का एक धनु, दण्ड अथवा यष्टि कहलाती है। आठ दण्ड की एक रज्जु कहलाती है। दो सहस्र हाथ का एक कोस, चार कोस का एक योजन होता होता है। दस हाथ का एक बाँस, दो कोस का एक निवर्तन बताया गया है।<sup>2</sup>

वास्तु के लिये चौकोर, वर्तुल, त्रिकोण अथवा मर्दल (ढोल) आकार की

1. वास्तुलक्षणम्, वास्तुशास्त्रम्, पृ. 17 (समरांगणसूत्रधार)
2. वही, पृ. 82

भूमि प्रशस्त मानी गयी है तथा ऊँची-नीची और टेढ़ी मेढ़ी भूमि सब कर्मों में वर्ज्य मानी गयी है।

चतुरश्रायता भूमिर्वर्तुला च त्रिकोणगा।  
मर्दलाकारवत्येषा प्रशस्ता वास्तुकर्मणि ॥  
निम्नोन्नता च या भूमिशिशरोहीना च भूरपि।  
वक्राकृतिश्च भूरन्या वर्ज्या सर्वेषु कर्मसु ॥

देश जाङ्गल, अनूप और साधारण होते हैं। इनकी भी सोलह विशेषताएँ बतायी गयी हैं। पुर-निवेश में सुरम्य देश का चयन करना चाहिये। पूर्णा, सुपद्मा, भद्रा और धूमा में से अन्तिम अनिष्टदा मानी गयी है। मिट्टी की परीक्षा करनी चाहिए। उसमें आकार, वर्ण, शब्द, स्वाद इत्यादि की परीक्षा की जाती है। इसके अनन्तर ही ग्राम, खेट, खर्वट, पुरी, नगर, पत्तन इत्यादि का निवेश किया जाता है।

नगर-लक्षण

नगर के सात भेद होते हैं। निगम, स्कन्धावार, द्राणक, कुब्जक, पट्टण, शिविर एवं वाहिनीमुख। ये नृपभोग्य माने गये हैं। सामान्य नगरों के बीस भेद माने गये हैं। पद्मक, सर्वतोभद्र, भद्र, विश्वेश, कार्मुक, प्रस्तर, स्वस्तिक, चतुर्मुख, श्री प्रतिष्ठा, नगरी बलिदेवपुर आदि। देव और मनुष्य के भेद से नगर दो प्रकार से होते हैं। मुखाष्टक, नन्द्यावर्त और राजधानी नगरोत्तमा होती है। जिस नगर में राजा रहे उसे राजधानी कहते हैं। इसके अतिरिक्त शाखानगर कहलाते हैं। नगर के तुल्य शाखानगर को कर्वट कहते हैं। कर्वट से कुछ न्यूनगुणी निगम कहलाता है। निगम से छोटा ग्राम और उससे छोटा ग्रामकल्प कहलाता है। गोकुलावास गोष्ठ तथा उससे छोटा गोष्ठक कहलाता है। राजा का उपस्थान (अथवा उपराजधानी) पत्तन कहलाता है। उपराजधानी होने के अनन्तर ही पाटलिपुत्र का नाम पत्तन (पटना) हो गया प्रतीत होता है। जहाँ अनेक वणिक्-व्यापारी रहते हैं उसे पुटभेदन कहते हैं। जहाँ पत्र, शाखा, तृण एवं ढेलों-पत्थरों से कुटिका (कुटिया) बनाकर पुलिन्द निवास करते हैं उसे पल्ली कहते हैं और छोटी बस्ती को पल्लिका कहते हैं। नगर के अतिरिक्त सभी जनपद कहलाते हैं। नगर-सहित सभी को मिलाकर राष्ट्र, देश अथवा मण्डल कहते हैं।

खेट से आधा विष्कम्भ, विष्कम्भ से आधा ग्राम कहलाता है। पुर से एक योजन दूर खेट, खेट से एक योजन दूर ग्राम, एक ग्राम से दूसरा ग्राम एक गव्यूति दूर होता है। खेटक में बीस और ग्राम में दस मार्ग होते हैं। ग्रामों की संख्या के आधार पर ज्याय, माध्यम और कनिष्ठ राष्ट्र होते हैं। प्रत्येक राष्ट्र में सुविभाजन कर सात-सात पुर बसाने चाहिए। पुर के नाम और विशेषताएँ निम्नानुसार होती हैं। चतुरस्र माहेन्द्र, स्वस्तिक, नन्द्यावर्त, अष्टदल, पुष्पक, अष्टाश्रक, स्वस्तिक, यवाकृति जयन्त, अतिदीर्घ, दण्ड, एक प्राकार में श्रीपुर, दो प्राकार में रिपुमर्दन, पर्वत की कोंख में स्नाह, शैलमस्तक पर दिव्यक, नदी के पास सौम्य, सरिता से याम्य धर्मक, दो नदियों के मध्य महाजय एवं पुरुषाकार पौरुष पुर कहलाता है।

राष्ट्र के मध्य नदी के तीर, पुण्यजनों से युत, मध्य में राजभवन से युक्त नगर कहलाता है। नगरी के मध्य विष्णु मन्दिर हो तो राजधानी होती है। रक्षागृह, सेनालय, वणिक्, आपण, विविध देवालय इत्यादि से युक्त हो। तन्त्रपारगा (तान्त्रिक) लोगों से युक्त एवं कानन, उद्यान तथा विभिन्न जनों की बस्तियों से युक्त नगर कहलाता है। क्रय-विक्रय करने वाले वैश्यों एवं देवसप्त से युक्त पुर कहलाता है। इसके पास राजवभवन हो तो उसे नगरी कहेंगे। नदी, पर्वत के निकट शूद्रों की बस्ति से युक्त चारों ओर से ढका हुआ खेट कहलाता है। पर्वतों से घिरा विभिन्न जाति के घरों से युक्त खर्वट होता है। इसमें वप्र न हो तो कुब्जक कहलाता है। समुद्रतट की बड़ी मण्डी प्राकार से घिरी पत्तन कहलाती है जहाँ नित्य भिन्न द्वीपों से रत्नों तथा अन्य वस्तु का आयात-निर्यात होता हो। इन बस्तियों की लम्बाई-चौड़ाई भी निश्चित है।

वप्र अथवा प्राकार चतुरस्र, वृत्त, आयताभ, वृत्तायत एवं गोलवृत्त पाँच प्रकार के बताये हैं।

चतुरश्रमायताभं वृत्तं वृत्तायतं च पुनः।

स्याद् गोलवृत्तमेषां वप्राकारास्तु पंचैव ॥ स.सू.

प्राकार की मोटाई दो, तीन या चार हाथ की एवं ऊँचाई सत्रह, ग्यारह अथवा दस हाथ बतायी गयी है। बाहर आसपास परिखा और देवालय होने चाहिए। उसमें विधिवत् मार्ग होने चाहिए। ये अधिक से अधिक सात दण्ड चौड़े होने चाहिए।

राष्ट्रके मध्य, नदी के तीर सज्जनबहुल नगर हो अथवा राजगृहयुक्त राजधानी हो। विभिन्न दिशाओं में चार द्वार हों, गोपुर और प्राकार हों। लेन-देन के बाजार, हर प्रकार के लोगों की बस्ती, सब प्रकार के देवालय होने चाहिए। बाहर धूलकोट (सुपांसुचया साल) होनी चाहिए जिसके चारों ओर परिखा हो जिसकी शिविर अनेक ओर से रक्षा कर रहे हों। पूर्व और दक्षिण में सामने राजबल, ऊँचे गोपुर, गृहमाला, सभी प्रकार के देवालय, विविध गणिकाएँ, अनेक उद्यान, गज-अश्व-रथ-पदातियुत, सब प्रकार के लोगों से सम्पन्न द्वार एवं उपद्वार से युक्त, भीतर अनेक लोगों के वास से युक्त और राजसदन से शोभित राजधानी होती है। वन एवं जल के निकट सब लोगों के आवास से युक्त और क्रय-विक्रय करने वालों से युक्त पुर कहलाता है और वही नगर भी। नदी और पर्वत से घिरी शूद्रों की बस्ती खेट और चारों ओर पर्वतों से घिरा सबजनों की बसति खर्वटक कहलाती है। खर्वट और खेट के बीच की बसति जनस्थान कुब्ज कहलाता है। सब प्रकार के लोगों से युक्त विदेशों से, द्वीपों से आगत वस्तुओं के क्रय-विक्रय से युक्त सागरतटवर्ती पत्तन कहलाता है। अन्य नृप के देश का सीमावर्ती जहाँ से युद्ध आरम्भ किया जा सके, सेना और सेनापति युक्त शिविर कहलाता है। इसी प्रकार की बस्ती जब सब प्रकार के लोगों से युक्त हो और राजभवन एवं विविध रक्षा-उपायों से युक्त हो तो सेनामुख कहलाता है। नदी-पर्वत के पास, राजभवन एवं बहुरक्षकों से युक्त राजवसति को स्थानीय कहते हैं। नदी-सागर जिसके दक्षिण में हैं और वणिक् आदि से युक्त सर्वजनावास द्रोणमुख कहलाता है। ग्राम के समीप जनालय विडम्ब कहलाता है। वन के मध्य जनवास कोत्मकोलक कहलाता है। चारों वर्ण, सर्वजनावास, अनेक कारीगरों से युक्त निगम होता है। नदी, पर्वत, वन सहित अनेक जनों की बस्ती राजभवन सहित स्कन्धावार कहलाती है। एवं उसके निकट की बस्ती चेरिका कहलाती है।<sup>1</sup>

नगर-निवेश में मार्ग विन्यास

मुखद्वार से निकलने वाली राजवीथी कहलाती है। यहाँ दो सौ प्रतोलियाँ (पोलें) बतायी गयी हैं। वीथी और क्षुद्रवीथी की कोई संख्या नहीं। राजधानी और नगर में शिल्पज्ञ उपवीथी और क्षुद्रवीथी न बनाए। राजवीथी की सब दूर समान

चौड़ाई रहे (समसूत्र)। चतुरश्रीक्षेत्र में पूर्व एवं उत्तर से चार भाग किये जाएँ। छः बाँस और 16 कदम पर मध्य में राजमार्ग बनाना चाहिए। यह 24 हाथ चौड़ा हो। 20 हजार का मध्यम, 16 का अधम कहलाता है। चतुरंगिणी सेना, पुरजन और नृप के आवागमन में इससे कठिनाई नहीं होनी चाहिए। समान्तर दो महारथ्या बनानी चाहिए। यह 12, 10 अथवा 8 चौड़ी हो। इनके बीच चार यानमार्ग चार हाथ चौड़े हों। उपरथ्या महामार्ग की आधी होनी चाहिए। शेष रथ्या उसकी भी आधी हों। चार यान मार्ग के साथ दो दो आठ कदम चौड़े जंघापथ भी हों। तीन हाथ, ढाई हाथ अथवा दो हाथ चौड़े हों। पुर में दो घंटामार्ग भी बनाएँ जो प्रमाण में राजमार्ग के तुल्य हों। एक दूसरे को काटते हुए ये 17 मार्ग हो गये। मय के अनुसार इन मार्ग को कुट्टिम अथवा पक्का कर देना चाहिए। मार्ग के वहाँ 16 भेद बताये हैं। मार्ग बीच में से छिन्न नहीं होना चाहिए और न बीच में चौतरा होना चाहिए। चौराहों पर फव्वारे लगाने चाहिए।

सर्वतोभद्र नगर में पूर्व और जल भाग में ब्राह्मणों और क्षत्रियों को बसाना चाहिए। आग्नेय दिशा में सोनार इत्यादि अग्नि का उपयोग करने वाले अन्य कारीगरों को बसाना चाहिए। वैश्य, जुआड़ी, धूर्त और कुम्हार दक्षिण में बसाये जाएँ। उधर ही नट-नर्तक भी बसाये जाएँ। सूअर पालने वाले, गडरिये, मृगया करने वाले (शिकारी), केवट, दमनाधिकारी (पुलिस) इत्यादि नैऋत दिशा में बसाये जाएँ। रथ अथवा आयुध में कुशल लोगों को पुर के पश्चिम में बसाना चाहिए। यतिसदन, बटुकों की सभा, प्रपा, पुण्यशाला इत्यादि उत्तर में होनी चाहिए। घी और फल के विक्रेता ईशान दिशा में हों। पूर्व में सेनापति तथा प्रमुख सेनाधिकारी एवं आग्नेय में विभिन्न सेना स्थापित की जाए। दक्षिण में श्रेष्ठी और देश के महन् लोगों को बसाएँ। मृत्यु सम्बन्धी (चर्मकार, शूलिक, चाण्डाल) लोगों को नैऋत में बसाएँ। कोशपाल, महापात्र, आदेशिक (सेनापति आदि), कारुक, नियामक इत्यादि को पश्चिम दिशा में बसाएँ। वायव्य में नायकों सहित दण्डनाथ को बसाएँ। पुरोहित, ज्योतिषी आदि को उत्तर में बसाएँ। विप्र सौम्य दिशा में और क्षत्रिय शक्र दिशा में तथा वैश्य-शुद्र उत्तर-दक्षिण दिशा में बसें। वणिक्, वैद्य इत्यादि मुख्य लोग चारों दिशाओं में बसे। और चारों दिशाओं में सेना भी स्थापित करें। नगर के बाहर पूर्व में शिवमंदिर और

1. समरांगणसूत्रधार (डी.एन. शुक्ल), पृ. 105-110



दक्षिण में श्मशान स्थापित करें।

अपराजितपृच्छा के अनुसार पूर्व में ब्राह्मण, दक्षिण में क्षत्रिय, उत्तर में शूद्र और मध्य में वैश्य बसें।

ब्राह्मणाः पूर्ववास्तव्याः क्षात्रियाश्चैव दक्षिणे।

प्रशस्ताश्चोत्तरे शूद्रा वैश्या मध्ये च संकुलाः ॥ स.सू., पृ. 114

पश्चिम में जलाशय हों। पूर्व, दक्षिण और उत्तर में हट्टमार्ग (हाट बाजार) बनाये जाएँ। ईशान में शिल्पी, धोबी, छिंपक (छीपा) बसें। चर्मकार और वरुट आग्नेय दिशा में, नैऋत्य में कलाल, वायव्य में तन्तुवाय (जुलाहे) बसाएँ। इसके आगे क्रेय-विक्रेय वस्तुओं के बाजार बनाये जाएँ। जहाँ सरलता से सभी लोगों की भीड़ आ-जा सके। स्वर्णकार, सुगन्ध, गन्धिक, दन्तकर्म और धान्यगृह पूर्व में हों। ताम्बूल, फल, पुष्पमाला इत्यादि राजद्वार के सामने हों जहाँ जनता की भीड़ रहती है। रंगरेज, नारियल, धर्म-अर्थ-काम सम्बन्धी सामग्री राजघर के उत्तर में हों। लोहसामग्री, विविध शस्त्र, पंखे, छत्र, मयूरपंख की सामग्री इत्यादि दक्षिण में हों। ईशान में वस्त्रस्य, पट्टि, नेत्रपट्ट इत्यादि तथा आग्नेय दिशा में स्वल्पवस्त्र और उससे आगे वस्त्रबन्ध। उत्तर में लाल, दक्षिण में काले, पूर्व में श्वेत वस्त्र हों, राजप्रासाद के सामने। अठारह प्रकार के धान्य का विक्रय सर्वत्र हो, पर ताम्बूल और पूग (सुपारी) का विक्रय देवता के निकट हो। इसके साथ ही अन्तरापणिक की भी चर्चा की गयी है। भीतरी दुकानों की भी चर्चा की गयी है। आसपास रथपथ और मध्य में वणिजों की गृहश्रेणी हो उसके निकट दक्षिण में जुलाहों के घर हों। उत्तर में तेली एवं एवं कुम्हार के घर हों। कर्मोपजीवी के घर रथ-पथ पर ही हों। ब्रह्मावृतपथ के अन्तरापण पर ताम्बूल, फल और सारवान् द्रव्य हों। ईशान दिशा में इन्द्रद्वार तक अन्तरायण में मत्स्यमांस, शुष्क मांस, शाक और भोजन की व्यवस्था हो। वायव्य में वस्त्र, लवण, तेल और वहाँ से मन्दिर तक गन्ध-पुष्पादि की दुकानें हों। भीतरी मार्गों में ही रत्न, स्वर्ण, वस्त्र, रंगरेज, मिर्ची, पिपली, हल्दी, शहद, घी, तेल, दवाइयाँ इत्यादि की दुकानें हों। आसपास देवालय हों, और सबकी बस्ती हो। नगर से पूर्व अथवा आग्नेय दिशा में दो सौ दण्ड दूर चण्डाल और कौलिकों की झोपड़ियाँ हों। इन अन्तरायणों में ऋजु अथवा सीधा पथ नहीं होना चाहिए।

मन्दिर

नगर के मध्य लक्ष्मी इत्यादि देवियों के मन्दिर बनावें। तालाब, मण्डप, उद्यान, प्राकार, आमूख-गोपुर इत्यादि से उसे अलंकृत किया जाए। शुभ, भव्य और अद्भुत नगर के बाहर और भीतर बनाये जाएँ। समरांगण-सूत्रधार में इस सम्बन्ध में विस्तार से चर्चा हुई है।

नगर के पूर्व में विष्णु, सूर्य और इन्द्र तथा धर्म के मन्दिर हों। सनत्कुमार, सावित्री, मरुत् और मारुत् पूर्व दक्षिण दिग्भाग में हों। गणेश, मातृ, भूत, प्रेतपति, भद्रकाली और पितर के मन्दिर और चैत्य नैऋत दिशा में हो। नदी, सागर, प्रजापति और वरुण का मन्दिर पश्चिम में हों। नाग, शनि, कात्यायनी के मन्दिर वायव्य दिशा में हों। शिव, श्री, अग्नि के पूर्वोत्तर में देवालय हों। नदी और सागर के नगर के चारों ओर बनावें। उमापति को वन, पर्वत सर्वत्र प्रिय हैं। नगर से दूर सब दिशाओं में नगराभिमुख मन्दिर बनावें। पराङ्मुख अनिष्टकारक होता है। उन्हें विविध देवताओं से चित्रांकित कर देना चाहिए। पुर के मध्य ब्रह्मा, इन्द्र और कृष्ण-बलदेव के मन्दिर हों। मातृ, यक्ष, गणेश, शिव सम्बन्धी भूतसंघ की स्थापना चौराहों पर बिन मन्दिर के भी की जा सकती है। देव मन्दिर न उत्तराभिमुख हों न दक्षिणाभिमुख, वे या तो पूर्वाभिमुख हो अथवा पश्चिमाभिमुख।

नगरशोभा के लिए जिस प्रकार मन्दिरों का विधान है उसी प्रकार उद्यानों का भी। नगर के आसपास तीन परिखाएँ बनाई जाएँ जिनका तल पत्थरों अथवा ईंटों से सम्यक् बनाया जाए। नालियों द्वारा आगत जल से उसे पूर्ण किया जाए अथवा स्वाभाविक आगत जल से। इसमें विभिन्न कमल लगाये जाएँ। नगर के बाह्य भाग मनोरम पुष्पों एवं वृक्षों से अलंकृत किये जाएँ। पक्षद्वार वृक्षों, लताओं, कांटेदार झाड़ियों, नदी-पर्वत, जलाशय, फव्वारे, शिला अथवा लकड़ी से छिपा देना चाहिए। पुर-प्राकार

घण्टामार्ग (Ring-Road) के बाहर चारों ओर वप्र (प्राकार अथवा परकोटा) बनाना चाहिए, महारथ्या के प्रमाण से। परिखा तीन हो। परिखा की मिट्टी से वप्र बना दिया जाएँ। आवश्यक हो तो और अधिक मिट्टी लगाई जाएँ। वह छत सी सपाट अथवा गजपृष्ठ सी ढलवाँ बनाई जाए।

कुर्याद् वप्रं स्वभूभागे परिखोद् वातया मृदा।  
सोत्संगं गजपृष्ठं वा गोत्रीयपदताडितम् ॥ पृ. 92

सर्वप्रथम निम्न भूमि को भर कर समतल बनाया जाएँ। वप्र का ऊर्ध्व एवं मध्यभाग बड़ी-बड़ी शिलाओं से अथवा पकी ईंटों से अविच्छिन्न निर्मित हो। इसकी चौड़ाई बारह, दस अथवा आठ हाथ हो तथा ऊँचाई सत्रह, पन्द्रह अथवा तेरह हाथ हो। सत्रह हाथ से ऊँचा न हो और तेरह से नीचा न हो। प्रत्येक हाथ की ऊँचाई दो-दो अंगुल चौड़ाई कम कर देनी चाहिए। इस प्रकार मूल में बारह हाथ चौड़ाई होगी तो सिर दस हाथ चौड़ा रह जाएगा। एक हाथ ऊँचा कपिशोर्ष हो और दो हाथ ऊँची काण्डवारिणी (तीर रोकने वाले) कर्णाश्रित और द्वारकर्णान्तस्थ सहित बनावें। चारों दिशाओं में अटारियाँ (बूर्जे) बनावें। चौकियाँ दुमंजिली बनावें। सौ सौ हाथ की दूरी पर अटारियाँ हो। इस प्रकार पुर हाथी, घोड़े, रथ और पैदल के लिये अगम्य हो जाता है। चरिका (चौकी) द्वार, सुगम सोपान, वेदिका सहित, बर्जु, कंगूरे सहित बनें। चारों दिशाओं में राजमार्ग और महारथ्या से जोड़ने वाले तीन तीन द्वार बनावें। राजामार्ग पर महाद्वार चार अथवा अधिक से अधिक नौ हों। आठ, सात भी हो सकते हैं। महारथ्या संबंधी द्वार छः, पाँच अथवा चार हों। डेढ़-डेढ़ हाथ कम चौड़ाई करते हुए सब महाद्वार पर दृढ़ प्रतोली (पोल) बनावें। इनमें दृढ़, आगल, मोटे (इद्र) कील से युक्त मोटे कपाट व परिघा हों। प्रतोली-द्वार भी राजमार्ग के समान ही शालायुत हो। उसमें चौकोर हो। भीतर से चार द्वार महाद्वार से मिलते हों। इसमें गवाक्ष (गोखड़े) हों। इस महाद्वार के ही तीसरे तल पर परिक्रमा भूमि सी बनावें। उस पर स्तम्भ भी बनावें। वहीं आयुध भी संग्रहित रखें। चारों ओर तिमंजिली प्रतोलियाँ बनावें। प्रधान द्वार सुन्दर बनावें और जहाँ तहाँ पक्षद्वार बनावें।<sup>1</sup>

अप्रशस्त नगरनिवेश<sup>2</sup>

छिन्नकर्ण, विकर्ण, वज्र, सूचीमुख, वर्तुल, व्यजनाकार, चापाकृतिधर, दो छकड़े सा, चौड़ाई से दुगनी लम्बाई, सर्पचक्र इत्यादि पुर निन्दित माने गये हैं।

इस प्रकार पशस्त पुर में ही यथास्थान राजभवन, सभा, न्यायालय, अश्वशाला, गजशाला, चित्रशाला इत्यादि का भी निवेश होता है।

युक्तिकल्पतरु में भी पुरनिवेश सम्बन्धी संक्षिप्त चर्चा की गयी है। जिसका सार यहाँ प्रस्तुत करना अप्रासंगिक नहीं होगा।

जब सूर्य और चन्द्र स्थिर में हो और शुक्र का उदय हुआ हो तब शुद्ध काल, शुद्ध दिन में नगर की रचना करें। भविष्योत्तर के अनुसार दीर्घ, चौकोर, त्र्यस्र, वर्तुल इत्यादि प्रकार के नगर होते हैं। जो मान-नियम युक्तिकल्पतरु में दिये हैं वे अन्यत्र नहीं हैं।

वसति-लक्षण

मध्यभाग अत्यन्त विस्तृत और मध्य में चौराहा हो। प्रपा, मण्डप, सरोवर, उद्यान इत्यादि से शोभित हो। ईशान पूर्व में प्लव (ढलान) और मध्य स्थान ऊँचा हो। दक्षिण प्लव रोगकारी, उत्तरप्लव धनद, पश्चिमप्लव सुख-सम्पत्ति-विनाशक होता है। मध्य में निम्न अच्छा नहीं पर किनारे पर द्वीप कहा गया है। तिराहे से राजदण्डों में, राजछत्र, चतुष्पथ एवं राजकाण्ड में मण्डपिका, राजपुरुष में तड़ाग, राजधानी में हाट, राजक्षेत्र में दूध, मध्य में साधु, वैद्य और ज्योतिषी बसें। नगर के किनारे म्लेच्छ, अन्त्यज, वीर, सैनिक इत्यादि कर्कश लोग बसें। गोपुर के निकट वीर सैनिक और राजमहल के निकट मन्त्री बसें। विभिन्न मन्त्री आपस में पड़ोसी न हो। क्योंकि तब दुर्मन्त्र होने की सम्भावना रहती है। अधीनस्थ राजकर्मचारी नगर में यहाँ-वहाँ बसाएँ। नियोगी और मंत्रियों के मेल से काम बिगड़ता है। मंत्रियों को दूर बसाने से वे काम धीमा करेंगे। नरक (दुर्ग अथवा कारागार) के नौ द्वार हों जो न तो सम हों और न विषम हों। वसति के मध्य गजशाला न हो और अश्व नगर के बाहर न हों। पैदल दूर न हों तथा न साधु और मन्त्री से वे दूर हों। ब्रह्मचारी, अधिकांग, हीनांग, उद्वत, देशान्तर गये हुए को, उच्च (सामन्त से ऊँचा), महाव्याधि से पीड़ित इत्यादि की राजा अपने नगर में रक्षा करे। राजा न तो नगर में (भृत्य) शाला बनावे और न ही नृत्यशाला क्योंकि वहाँ रहकर शत्रुओं के गुप्तचर बलाबल को जान जाते हैं। देशकाल इत्यादि ज्योतिष सम्मत होने चाहिए।

इस प्रकार भोज के समरांगण सूत्रधार और युक्तिकल्पतरु में नगर-योजना पर

1. समरांगणसूत्रधार (डी.एन. शुक्ल), पृ. 113-100-133

2. वही, पृ. 123-124

शास्त्रीय प्रकाश डाला गया है। इसमें वायु, पानी, स्वास्थ्य, व्यापार, सुरक्षा इत्यादि पर प्रधान प्रावधान दिया जाता था और आज भी दिया जाता है। आज और प्राचीन नगर-योजना में कुछ काल एवं आवश्यकतानुरूप ही अन्तर हुआ है, शेष में समानता है।

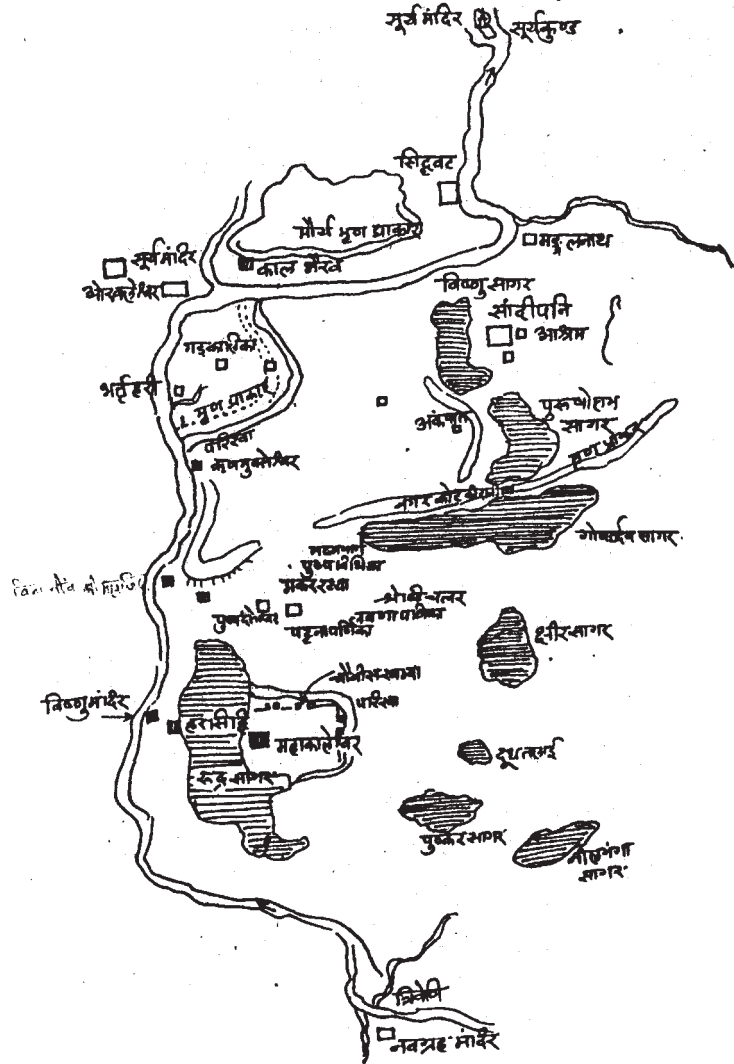
## द्वितीय पर्व प्रमुख नगर (पुरातत्त्व के आधार पर)

मालव-सभ्यता प्रागैतिहासिक काल से विकसित होती रही है। यहाँ वन में और नदियों की कछारों पर, अधित्यका और उपत्यका पर, छोटी, बड़ी और मझली कई बस्तियाँ बसती गयीं-ग्राम, खेट, खर्वट, पुर, नगर, राजधानियाँ। इनके उल्लेख लिखित वाङ्मय में तो प्राप्त होते ही हैं, पुरातात्विक आधारों से भी इनका ज्ञान होता है। इनमें से कई बस्तियाँ पूर्व युग में थीं, पर परवर्तीकाल में पुरावशिष्ट ही रह गयीं। कुछ के चिह्न धरातल पर अब भी देखे जा सकते हैं परन्तु कुछ भू-गर्भ में समा गये, जहाँ की सभ्यता का आंशिक ज्ञान उत्खननों से सम्भव हो पाता है। उत्खनन अभी सभी वांछित स्थलों पर नहीं हो पाये हैं। जहाँ हुए हैं वहाँ और होने चाहिए। तभी पूर्ण स्थिति ज्ञात होना सम्भव है। फलतः उत्खननों से नगर-विन्यास सम्बन्धी जो भी जानकारी हो सकी है वह पूर्ण नहीं कही जा सकती। केवल दिशा-निर्देश मात्र ही हो पाया है।

उज्जयिनी

मालवा की राजनैतिक एवं सांस्कृतिक राजधानी उज्जयिनी में 1936-37 में ग्वालियर राज्य के पुरातत्त्व-संचालक स्व. मो. ब. गर्दे ने उत्खनन करवाया था। वैश्या टेकरी एवं कुम्हार टेकरी की अपेक्षा गढ़कालिका-क्षेत्र का उत्खनन हमारे

## परमारकालीन उज्जयिनी



विषय की पुष्टि में कुछ सहयोगी सिद्ध होता है। यहाँ मौर्य और पूर्व मौर्य काल की पर्याप्त सामग्री प्राप्त हुई है।<sup>1</sup> इस उत्खनन की सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि रही उज्जयिनी के पश्चिम में क्षिप्रातट पर नदीक्षरण से नगर की रक्षा के लिए बनाया गया काष्ठ-प्राकार। यह प्राकार ऋणमुक्तेश्वर से मत्स्येन्द्रनाथ-समाधि तक था।<sup>2</sup> ऐसे ही काष्ठ-प्राकार पटना में भी प्राप्त हुए हैं, मौर्ययुगीन। उज्जैन में द्वितीय उत्खनन डॉ. एन. आर. बनर्जी के मार्गदर्शन में (सन् 1954-56) हुआ। उन्होंने उज्जयिनी के मृत्तिका-प्राकार और उसके परितः परिखा के अवशेषों का ज्ञान करवाया। यह परिखा 250 फिट चौड़ी थी और दोनों ओर पक्के इष्टिका-घाट बने थे। कुछ वर्ष पश्चात् जब नदी के कीचड़ से पूर्वी तट भरने लगा तो घाट को आगे बांधा गया। पूर्व की ओर जाने पर एक पुलिया पार करनी पड़ती थी। यह मार्ग उत्खनन में प्राप्त हो गया है, इसे मिट्टी और ईटों के चूरे से बनाया गया था। सम्भवतः यह विश्व की प्राचीनतम पक्की (मेटल्स रोड) सड़क थी।

इसी उत्खनन में मध्य पीपल खोदरा नाले के पास आद्य मौर्ययुगीन 30-35 फीट लम्बा चौड़ा कुण्ड मिला। मत्स्येन्द्र नाले के पूर्व की ओर एक पक्की ईटों, की आद्य मौर्ययुगीन अथवा पूर्ववर्ती नहर प्राप्त हुई है। इसमें बीच बीच में काचित इष्टिकाएँ (ग्लेज़्ड टाइल्स) लगी थीं। काचित इष्टिकाओं का काल मौर्यपूर्व है। यह कायथा उत्खनन से स्पष्ट हो गया है। यहाँ मणि बनाने का कारखाना भी मिला है जिसमें मणि बनाने के सारे उपकरण, अर्धनिर्मित मणियों का ढेर तथा मणि को ओपदार बनाने के पाषाणोपकरण भी मिले हैं। यहाँ लोहा गलाने की भट्टियाँ और इस्पात-निर्माण के लिए आवश्यक वस्तुएँ भी मिली है। घरों में नलिका संचयों से बने नलिका कूप मिले जो शौचालय के रूप में आज के सेप्टिक टैंक के समान प्रयुक्त होते थे।

डॉ. बनर्जी द्वारा उत्खनन से उज्जयिनी के काष्ठ-प्राकार का सुव्यवस्थित अध्ययन सम्भव हो सका। खड़े काष्ठस्तम्भों के मध्य आड़े स्तम्भ लगाकर उनमें मोरम भरी गयी थी। खड़े स्तम्भ: छः हाथ की दूरी पर गाड़े गये थे।

1. विक्रम स्मृति ग्रन्थ, पृ. 473-76

2. श्री मुरलीधरसिंह अभिनन्दनग्रन्थ, डॉ. वि.श्री. वाकणकर का लेख, पृ. 82

उज्जयिनी में परमारयुगीन स्थापत्य के कई अवशेष प्राप्त होते हैं। बिना नींव की मसजिद वस्तुतः उज्जयिनी में भोजकृत सरस्वतीकण्ठाभरण शाला का परिवर्तित रूप बताया जाता है जिसका उल्लेख राजशेखर सूरिकृत चतुर्विंशतिप्रबन्ध में प्राप्त होता है। भर्तृहरि गुफा भी इसी काल का अवशेष है। इस युग की अनेक मूर्तियाँ प्राप्त होती हैं। यहाँ के पूर्वोक्त उत्खनन में प्राप्त परिखा, प्राकार, परीधि, वीथी, वापी, भव्य भवन, देवायतन इत्यादि की पुष्टि भास, कालिदास, शूद्रक, श्यालिक, बाणभट्ट, दण्डी, धनपाल, पद्मगुप्त परिमल इत्यादि की कृतियों एवं ब्रह्म, स्कन्द इत्यादि पुराणों में उपलब्ध उज्जयिनी-वर्णन से होती है। यह साहित्यिक विवरण आगामी पूर्व में प्रस्तुत किया जाएगा। चतुर्भाणी में इस नगरी की मकरवीथी और पुष्परथ्या तथा लवणापणिका के उल्लेख प्राप्त होते हैं जो आज क्रमशः मगरमुहा, फूलगली और नमकमण्डी कहलाती है। मृच्छकटिक का श्रेष्ठी चत्वर आज का सराफा है। तब की वेश वीथी आज भी अपने स्थान पर है।

गुप्त-काल से ही उज्जयिनी अपने वर्तमान स्थान पर बसने लग गयी थी। राजप्रसाद महाकाल मन्दिर के निकट ही था।

असौ महाकालनिकेतनस्य वसन्नदूरे किल चन्द्रमौलेः। रघुवंश 6

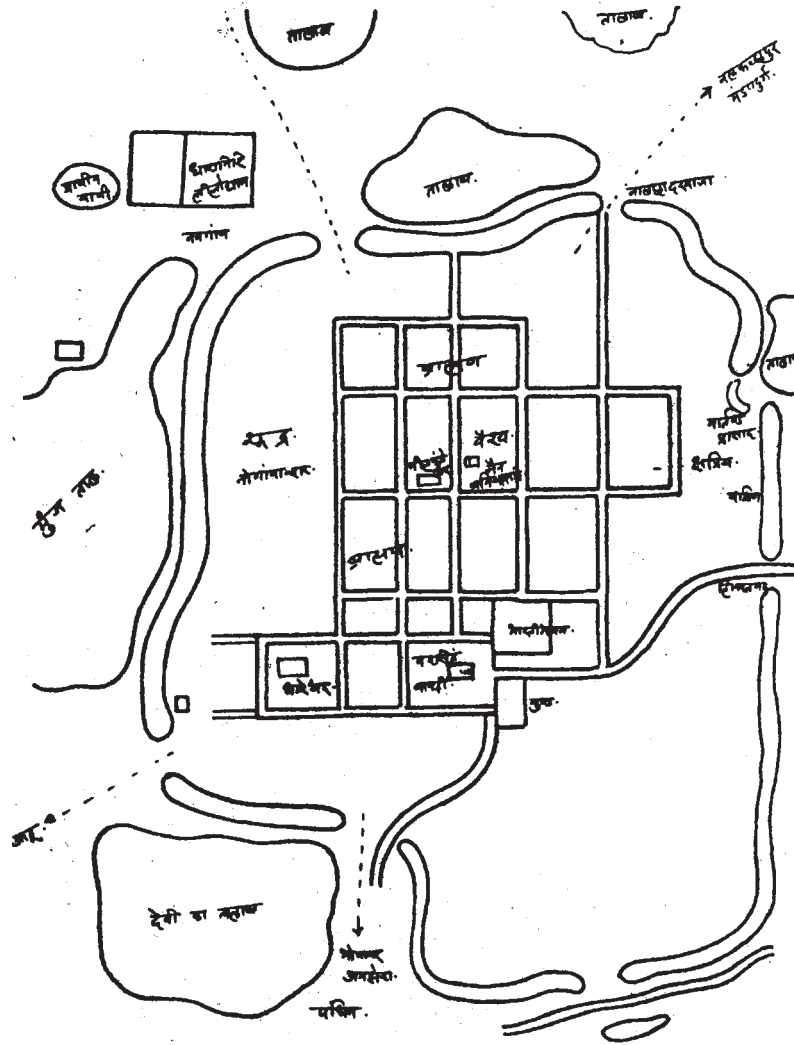
महाकाल का प्राकार और परिखा भी रही। इसी प्राकार का प्रमुख द्वार चौबीस खम्बा आज भी परमार-स्थापत्य का सुदृढ़ एवं सुचारु अवशेष है। इससे ही लगी धूलकोट चली गयी, जहाँ आज कोटमुहल्ला बसा हुआ है। इसी नगरी के उत्तर में नगर-कोट के देवी का स्थान और उससे लगी हुई धूलकोट भी परमारयुगीन है जिसका मुगलकाल में पुनरुद्धार किया गया। विष्णुसागर, पुरुषोत्तम (सोला) सागर, गोवर्धनसागर, क्षीरसागर, डाबरी, दूधतलाई, रंगबावड़ी का पुष्कर तालाब और रुद्रसागर क्रमशः परस्पर साथ लगे हुए वृत्त बनाते हुए सिप्रा के तट तक पहुँच जाते हैं। ये ही तालाब खाई अथवा परिखा का कार्य करते थे। वैसे एक परिखा प्राकार के बाहर तो थी ही, तड़ाग दोहरी परिखा का कार्य करते थे। इस प्रकार आज भी परमारयुगीन प्राकार और परिखा के अवशेष देखे जा सकते हैं। इस प्राकार के द्वार अथवा उनके नामावशेष अब भी इस उस युग की उज्जयिनी का सीमांकन करते हैं। इन द्वारों में ही उज्जयिनी सिमटी हुई थी। भेरुगढ़ के उत्तर में अवस्थित उज्जैन द्वार प्राचीन उज्जैन

का है। परमार युग का द्वार उत्तर से पूर्व, दक्षिण एवं पश्चिम की ओर निम्नानुसार है-

उत्तर में अंकपात द्वार, ताजपुरद्वार, पूर्व में सती द्वार, देवास द्वार, इन्दौर द्वार, दक्षिण में मदार तथा चौबीस खम्बा द्वार, दक्षिण पश्चिम में हरसिद्धि द्वार, पश्चिम में गणगौर एवं दानी द्वार, उत्तर पश्चिम में गोनसा, कालियादेह द्वार तथा फूटा दरवाजा। नगर-द्वारों को मिलाने वाला प्राकार था जिसे सप्तसागर तीन ओर से घेरते थे तथा एक ओर सिप्रा उसे सुरक्षित कर देती थी, पश्चिम से। इस प्रकार से नगर रक्षित था और इसमें ही वह गुप्तकाल से बसता रहा। इस नगर में चतुर्भाणी में उल्लिखित मोहल्लों के नामावशेष अब भी प्राप्त होते हैं। यथा मकररथ्या=मगरमुहा, पुष्पवीथी=फूलगली, वेशवीथी, लावण्यापणिका=नमकमण्डी, क्षाराब्धि=खाराकुआ, पानागार=पानदरीबा, मकरदेवायतन, श्रेष्ठीचत्वर=सराफा, पत्तन=पटनीबाजार, कोटमुहल्ला प्राकार पर अवस्थित होने से सार्थक है। सप्तसागर इस प्रकार हैं, जो प्राकार की घेर कर रक्षा करते थे। विष्णुसागर, पुरुषोत्तम सागर, गोवर्धन सागर, क्षीरसागर, पुष्कर सागर, रुद्रसागर, रत्नाकर सागर (उण्डासा ताल) इत्यादि। ये नगर की द्वितीय परिखा का कार्य करते थे। इसी नगरकोट का एक भाग आज भी कालियादेह द्वार से उत्तर की ओर सूदूर तक चला गया। उज्जैन में परमारयुगीन स्थापत्य का सम्भार लिये हैं। यहाँ उद्यानों की परम्परा थी। यह रघुवंश, मेघदूत, मृच्छकटिक और चतुर्भाणी से ज्ञात होता है जिनके अवशेष आज भी सुलभ होते हैं।

समरांगणसूत्रधार के अनुरूप ही यहाँ अब भी प्राचीन नगर के पूर्व और पश्चिम में ब्राह्मण, दक्षिण में क्षत्रिय, उत्तर में कृषक वर्ग और मध्य में वैश्य-श्रेष्ठी बसते हैं। परमारयुगीन नगर नगरकोट-बुधवारिया से कंठाल के पश्चिम से होकर बहादुरगंज और सखिपुरा के पश्चिम में, महाकाल-सिप्रा की ओर बसा हुआ था। धारा

150 ई0 में टाल्मी ने धारा का 'झरोगिरि' नाम से उल्लेख किया है। 13वीं सदी की विजयश्री नाटिका में भी उसे धारागिरि कहा गया है। गुप्तयुगीन भावशतक में भी इस नगरी का उल्लेख है। शंकराचार्य की सौन्दर्यलहरी में अवन्ती के साथ ही धारा का भी उल्लेख हुआ है। यह पहाड़ियों, सुरम्य तड़ागों एवं रमणीय उद्यानों से घिरा प्राचीन नगर है। इस नगर के चारों ओर लगभग 50 फीट ऊँचा और 40 फीट



चौड़ा नगरकोट अथवा प्राकार था। यह मोटे गोल पत्थर और मिट्टी का बना था। इसे धूलकोट कहा जाता है। राजपूत युग में इसके समीप ही ईंटों और पत्थरों की दूसरी दृढ़ दीवार बनाई गयी थी और मराठा शासनकाल में और भी सुदृढ़ कर दिया गया था। इस कोट के अवशेष धार में आज भी कन्या शाला, हटवाड़ा और उटावद द्वार एवं नालछा द्वार के पास है। नगर के प्रमुख सिंहद्वार इसी कोट में थे। इनमें से तीन द्वारों के अवशेष आज भी विद्यमान हैं। ये प्रवेश द्वार स्थानीय काले पाषाण और विशाल खंबों, दीवारों और कलापूर्ण मेहराबों से बनाये गये थे और उन पर चूने का चिकना प्लास्टर किया गया था। नगर के प्राचीन विशाल धूलकोट के चारों ओर बाहर लगभग 75 फीट चौड़ी और पर्याप्त गहरी खाई थी। इस खाई में तालाबों से पानी भरा जाता था। यहाँ तेरह तालाब अब भी विद्यमान हैं। कुंज, मुंज और देवी सागर के नगर की ओर से उच्च तटबन्ध ही दीवार और धूलकोट के कुछ अंश थे। कुछ तड़ागों की दीवारों और बांध ही नगर की सुरक्षा की कोट थी। इस कोट और खाई के अवशेष आज भी शासकीय महाविद्यालय के प्राचीन भवन और क्रीड़ांगण के निकट, कालिका मन्दिर और नित्यानन्द आश्रम तथा स्मशान क्षेत्र के निकट देखे जा सकते हैं। इस प्रकार परमार युग में इस नगर की सुरक्षा-व्यवस्था अत्यन्त दृढ़ थी-तालाब और उनके जल से पूरित खाई, विशाल समुन्नत धूलकोट और तब काले पाषाणों से बनी मोटी दृढ़ दीवार।' भोजकृत शृङ्गारमञ्जरीकथा में वर्णित धारा से इसकी पुष्टि होती है और पूर्ववर्णित समरांगणसूत्रधार की विवृत्ति से भी ये तथ्य पुष्ट होते हैं।

नगर में नीवों के उत्खनन में पृथ्वी के भीतर से जली हुई मिट्टी और राख प्राप्त हुई है। कहीं कहीं भूमि में और कूपों में खंडित प्रतिमाएँ प्राप्त होती हैं। इससे प्रतीत होता है कि इस नगरी पर मध्ययुग में आक्रमण हुए और नगर में आग लगा दी गयी; भवन, मन्दिर इत्यादि ध्वस्त कर दिये गये। बार बार ध्वस्त होकर यह नगरी पुनः बसी है। ध्वंस में प्राकृतिक कारण भी रहे होंगे।

धारा मन्दिरों की नगरी है। पारिजातमञ्जरी के अनुसार यहाँ 84 चौराहे और इतने ही मन्दिर थे। यहाँ का परमारयुगीन धारेश्वर मन्दिर मुस्लिम युग में ध्वस्त हो गया था जिसका परवर्तीकाल में पुनर्निर्माण किया गया था। इसमें परमार शैली का

विशाल शिखर है। धारेश्वर के निकट ही सुप्रसिद्ध भोजशाला है जिसे प्रबन्धचिन्तामणि में सरस्वतीकण्ठाभरण और पारिजातमञ्जरी में शारदासदम कहा गया है। इसके प्रांगण में सरस्वतीकूप है। यह संस्कृत पाठशाला थी। इसमें कई प्राकृत-संस्कृत के काव्य-नाटक तथा नागबन्ध इत्यादि व्याकरण चित्र उत्कीर्ण हैं। इसमें ही लन्दन के पुरासंग्रहालय में अवस्थित 1934 ई. में भोज के शासनकाल में निर्मित और स्थापित वाग्देवी की प्रतिमा स्थापित थी। यहीं पर काव्यगोष्ठियाँ, विद्वत्सभा और नाट्यप्रदर्शन होते थे। भोजशाला में शिलोत्कीर्ण पारिजातमञ्जरी का मञ्चन 13वीं शती में यहीं हुआ था।

भोजशाला से कुछ दूर लाटमसजिद है। ऐसा माना जाता है कि यह पहले परमारों का विशाल राजप्रसाद था जिसे कुछ लोगों के अनुसार राजमार्तण्ड प्रासाद कहा जाता था। यह एक सुरम्य सरोवर के किनारे अवस्थित है। इसमें गोल, चौकोर, षट्कोण, अष्टकोण, पाषाण, कलांकित द्वार तथा मेहराबें और मनोरम गवाक्ष-जालियाँ अब भी देखी जा सकती हैं। इसके अवशेषों से ज्ञात होता है कि यह प्रासाद कई तल अथवा मंजिलों का था जिसे 1405 ई. में दिलावरखाँ ने गिरा दिया। इसके निकट ही 44 फीट ऊँचे चौकोर व अष्टपहलू लोह जयस्तम्भ के तीन खण्ड पड़े हैं। परमार आयसविज्ञान और कला का यह प्रत्यक्ष उदाहरण है।

देवी का मन्दिर भी प्राचीन है, परमारयुगीन, जिसका परवर्ती युग में जीर्णोद्धार किया गया। आज का धार दुर्ग महमूद तुगलक ने सुधरवाया था, परन्तु वह है परमारयुगीन। धारागिरि-लीलोद्यान वस्तुतः यही था जिसका उल्लेख अर्जुनवर्मा के गुरु मदन ने पारिजातमञ्जरी में किया है और जिसका विस्तृत विवरण भोजकृत शृङ्गारमञ्जरीकथा में प्राप्त होता है।

धारा के साढ़े बारह प्रसिद्ध तालाब निम्नानुसार हैं - (1) कुंज तालाब (2) मुंज तालाब (3) देवी तालाब (4) धूप तालाब (5) चोंसठजोगनी तालाब (6) कन तालाब (7) नटनागर तालाब (8) लेंडचा तालाब (9) पूर्णिया तालाब (सूखने से अब यहाँ खेती होती है) (10) रामा तलाई (छोटा तालाब) (11) गौशाला तालाब (12) जैतपुर तालाब (13) मसूरिया तालाब (इसकी भूमि से ही धार-मांडू सड़क निकली है। आजकल इसमें छः माह ही पानी रहता है।) ये सब तालाब

धारानगरी को चारों ओर सुरक्षित कर परिखा का काम करते थे। उत्तर की ओर से सुरक्षा का पूर्ण प्रबन्ध था, दुर्ग था। इसीलिए यह कहा जाता है कि सिद्धराज जयसिंह ने कई आक्रमण किये पर वह धार को जीत नहीं सका। अन्ततः उसने दक्षिण की ओर से आक्रमण किया, दशहरा मैदान की ओर से जहाँ धूलकोट तो थी और है और लघु परिखा भी थी परन्तु सुरक्षात्मक तड़ाग नहीं था। यहाँ दोहरी परिखा थी, समरांगण सूत्रधार के अनुरूप त्रिपरिखा नहीं थी।

पारिजातमञ्जरी के अनुसार धारा में 84 चौराहे और इतने ही देवालय थे। नीलकण्ठेश्वर मन्दिर तब का ही अवशेष है। यहाँ कई प्राचीन वापियाँ हैं। मतरकुंड जहाँ अब नगर का जलप्रदाय है तथा दुर्ग की वापी परमारयुगीन ही है।

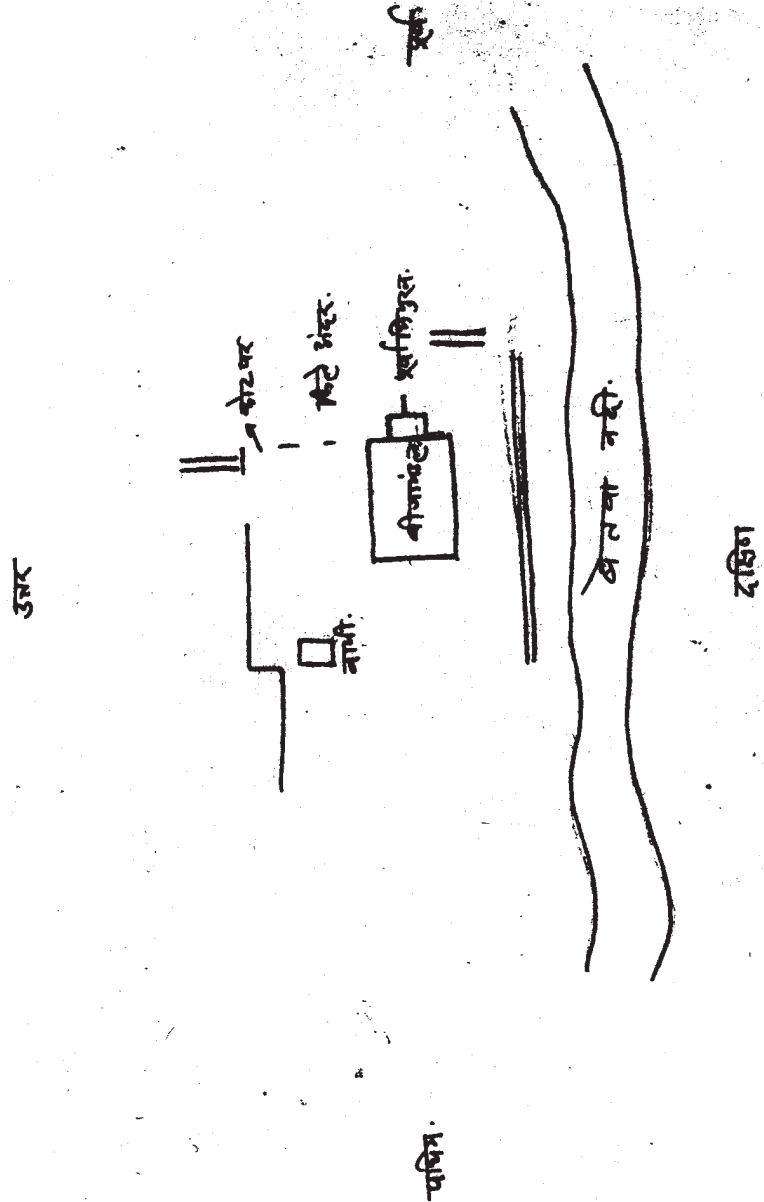
समरांगणसूत्रधार के पूर्वोक्त विवरणानुरूप आज भी बहुधा धारा नगरी बसी हुई है। उत्तर दक्षिण सीधे जाते हुए पथों को पूर्व-पश्चिम जाते पथ काटते हैं, समकोण पर। बस्तियाँ भी तदनु रूप वर्ण-प्रकार से कुछ आज भी हैं। पूर्व और पश्चिम में ब्राह्मण, दक्षिण में क्षत्रिय, उत्तर में अविकसित और मध्य में वैश्य।

इस प्रकार भोज नगर-विन्यास का आदर्श धारा थी, जिसे उसने अपनी कल्पना के अनुरूप बसाया था। प्रभावकचरित के अनुसार भोज ने विभिन्न वस्तुओं के लिए भिन्न-भिन्न 24 हाट या बाजार बनाये, बसाये थे। अपनी इन्हीं विशेषताओं के कारण, सुव्यवस्थित नगर-नियोजन के कारण धारा दर्शकों के आकर्षण का केन्द्र बन गयी थी, वह पर्यटन-स्थल बन गयी थी। आज भी अपनी उन पुरातत्त्वीय विशेषताओं के कारण वह पर्यटन का केन्द्र बनने की क्षमता से युक्त है। वहाँ उत्खनन से परमार युग प्रकट होने की पूर्ण सम्भावना है।

विदिशा (भाइलस्वामिपुर)

विदिशा भारतीय इतिहास और अनुश्रुतियों, काव्य और पुरातत्त्व में अत्यन्त विख्यात और लोकप्रिय है। इसके उल्लेख रामायण और महाभारत, पुराणों तथा ललित साहित्य, बौद्ध एवं जैन साहित्य में विपुल मात्रा में प्राप्त होते हैं। कालिदास ने विदिशा के वर्णन में विशेष रुचि प्रदर्शित की है-अपने मेघदूत तथा मालविकाग्निमित्र में। समूचा मालविकाग्निमित्र नाटक विदिशा के शृंगयुगीन प्रासादों की ही कहानी कहता है। बाणभट्ट की कादम्बरी और दण्डी के दशकुमारचरित के

## भाइलस्वामिपुर



साथ ही बृहत्कथा के उपलब्ध संस्कृत संस्करणों में विदिशा के अमित उल्लेख प्राप्त होते हैं। पालि जातकों और जैन कथाओं में भी इसका बार बार स्मरण किया गया है। सम्राट् अशोक की एक पत्नी विदिशा की ही वैश्या पुत्री थी जिसने उज्जैन में एक स्तूप का निर्माण करवाया था। उस स्थल को अब भी वैश्या टेकरी कहते हैं।

विदिशा वस्तुतः वैश्यों की नगरी थी क्योंकि वह श्रावस्ती से कोसाम्बी होकर अवन्ती तक जाने वाले पथ और उधर मथुरा की ओर जाने वाले तथा विदर्भ की ओर जाने वाले सार्थ पथ पर अवस्थित था। फलतः वह प्राचीन युग में व्यापार का प्रमुख केन्द्र बन गया था। यही कारण है कि वहाँ धनाढ्य वैश्यों की विशाल बस्ती थी जिसे वेशनगर कहते रहे। विदिशा नदी के तट पर होने से यह वैदिश नगर कहलाता था जिसका अपभ्रंश आज बेसनगर कहलाता है।

इन बस्तियों में गुप्तयुग के अवसान तक चहल-पहल रही। अनन्तर बस्ती का केन्द्र बेतवा के उत्तर की ओर हटने लगा जहाँ आज विदिशा की बस्ती है। परमार युग में यही बस्ती पूर्णतया व्यवस्थित हो चुकी थी।

विदिशा के परमारयुगीन एक भाग का नाम भाइलस्वामिदेवपुर है। इसका ही अपभ्रंश होकर यह नाम भेलसा हो गया था। भाइस्वामी राजा का भी नाम था और सूर्य का भी। यहाँ परमारयुगीन भाइलस्वामी का मन्दिर भी है। इसी काल की यहाँ से एक सूर्यस्तुति शिलांकित प्राप्त होती है जिसका रचयिता राजा भोज का आश्रित सुप्रसिद्ध कवि छित्तप था। यह भाइलस्वामिपुर नाम भोजकृत शृङ्गारमञ्जरीकथा (पृ. 57) में भी प्राप्त होता है -

विदिशा नाम नगरी । तत्र च भाइलस्वामिदेवपुरे।

भाइलस्वामिदेवपुर 9वीं से 12 वीं सदी तक प्राचीन विदिशा की सांस्कृतिक परम्परा को अक्षुण्ण बनाए रहा। यह जैन एवं वैदिक धर्मों का समृद्धशाली केन्द्र था तथा वहाँ अनेक सुन्दर एवं विशाल मन्दिर बनवाए गए थे, जो मुसलमान इतिहासकारों के अनुसार बाद में अलतमश एवं अलाउद्दीन खिलजी जैसे आक्रान्ताओं ने धराशायी कर दिये। नगर में स्थित प्रसिद्ध पूर्वाभिमुख बीजामण्डल मसजिद कभी एक विशाल मन्दिर रहा होगा, जो बाद में मसजिद के रूप में परिणत हो गया। 'किले अन्दर' क्षेत्र भी इसी युग में निर्मित हुआ। यहीं प्राचीन कोट अथवा प्राचीर के अवशेष प्राप्त होते



हैं जो परमारयुगीन प्राकार के अवशेष हैं। निकट ही इसी परमार युग की एक वापी है। विदिशा की इस स्थान पर अवस्थित प्राचीन बसाहट में पूर्वोक्त परमारयुगीन स्थापत्य विशेषताएँ प्राप्त होती हैं। परिखा और प्राकार के अवशेष, मन्दिरों तथा प्राचीन विभिन्न स्थापत्यों के अवशेष विदिशा के परमारयुगीन वैभव से आज भी मुखर हो रहे हैं। उस युग का नगर आक्रमकों द्वारा परवर्तीकाल में भूमिसात् कर दिया गया, परन्तु अवशेष अब भी उसके भव्य एवं सुनियोजित विन्यास पर प्रकाश डालते हैं।

### मण्डपदुर्ग (माण्डव)

माण्डव के वर्तमान अवशेष बहुधा सल्तनत और मुगलकालीन हैं। परन्तु इनसे पूर्व के भी, परमारयुगीन अवशेषों का भी वहाँ अभाव नहीं है। वर्तमान माण्डव गढ़ से दक्षिण पश्चिम में अवस्थित बूढ़ी माण्डव का समूचा स्थापत्य परमारयुगीन ही है। वहाँ हिन्दू एवं जैन स्थापत्य तथा मूर्तियों के असंख्य अवशेष बिखरे पड़े हैं। यहाँ के कई परमारकालीन शिलालेख भी प्राप्त हुए हैं। तालनपुर की जैन-प्रतिमा पर 'मण्डपदुर्गावस्थितः' उत्कीर्ण है। इसी प्रकार धरमपुरी में अवस्थित एक प्रति पर भी लेख उत्कीर्ण है। विन्ध्यवर्मा के सांघिविग्रहिक बिल्हण कवि द्वारा रचित विष्णु के दशावतार की स्तुति भी माण्डव से ही प्राप्त हुई है। इसी प्रकार इस युग की सरस्वती प्रशस्ति भी प्राप्त हुई है। हम्मीरविजय महाकाव्य में भी हम्मीर द्वारा माण्डव-विजय का उल्लेख प्राप्त होता है।

ततो मण्डपकृद्दुर्गात्करमादाय सत्वरम्।

ययौ धारां धरासारां वारां राशिर्महौजसा ॥9॥18

माण्डव के उत्तर में रैदास की कुण्डी परमारयुगीन है। परन्तु रैदास परवर्ती हैं। इसी प्रकार सातकोठरी गुफाएँ भी इस युग की निर्मिति हैं। नीलकण्ठेश्वर मन्दिर का स्थापत्य परमारयुगीन है और लोहांगी गुफाविशेष तथा निकटवर्ती भग्न विष्णुमन्दिर भी इसी युग के हैं। इस मन्दिर के अवशेष समीप की बुर्ज में लगे हैं और गरुडस्तम्भ तो विकीर्णशीर्ष अब भी उच्छ्रित हैं। हिण्डोला महल जैन अवशेषों से निर्मित बताया जाता है, उसके गोखडों में अधःशीर्ष मूर्तियाँ अब भी देखी जा सकती हैं। जामा मस्जिद में विष्णु मन्दिर के अवशेष बताये जाते हैं। इसी प्रकार वर्तमान राम मन्दिर के पीछे भी विष्णु मन्दिर के अवशेष प्राप्त होते हैं। दिल्ली दरवाजा और अन्य

### मण्डप दुर्ग



दरवाजे प्राचीन माण्डव के प्राचीर के ही अंग हैं।

माण्डव में परमारयुगीन प्राकार विशेष भी प्राप्त होते हैं जिनका परवर्तीकाल में पुनरुद्धार किया गया, मध्यकाल में।<sup>1</sup> लोहानी गुहा के निकट गुरुड़ासीन विष्णु की प्रतिमा प्राप्त हुई है। एक अलंकृत पत्थर पर 'कोकदेव' लिखा है। इससे प्रतीत होता है यह मन्दिर किसी कोकदेव ने बनवाया था। कोकदेव परमार राजा भोज द्वितीय (1290-1310) का प्रधान था। बाद में यह स्वतंत्र राजा हो गया था कोका राजा के नाम से।<sup>2</sup> लोहानी गुफा के अवशेषों पर 'सलषण' नाम उत्कीर्ण प्राप्त होता है जो अर्जुनवर्मदेव (1210-16 ई.) के दरबार में था। इस गुहा के निकट ही उसने मन्दिर बनवाया था जो 14वीं सदी के अन्त तक विद्यमान था।<sup>3</sup> जहाज महल के पीछे राजा मुंज के नाम वाला मुंज तालाब अब भी विद्यमान है। भोजकुण्ड और सोमवती कुण्ड नाम के दो प्राचीन जलाशय अब भी माण्डव में विद्यमान हैं।

कन्नौज के प्रतिहार राजा महेन्द्रपाल द्वितीय (946 ई.) के माधव नामक प्रान्तीय शासक, जो उज्जैन में रहता था, ने मुख्य सेनापति श्री शर्मा को बलवती सेना के साथ माण्डव में रखा था, दक्षिण के राष्ट्रकूटों से सावधान रहने के लिये। इस समय अवश्य ही इस स्थान को अधिक सुरक्षित करने के लिए दुर्गीकरण किया गया होगा।

बूढ़ी माण्डव में, माण्डव से उत्तर-पश्चिम तीन मील दूर प्राचीन किला है। यहाँ द्वार, तालाब, घाट आदि हिन्दू-निर्मितियाँ हैं। क्षेत्रफल में यह माण्डव किले से छोटा परन्तु बहुत दुर्गम है। प्राचीन मन्दिरों के यहाँ नौ खण्डहर पड़े हैं। उदयेश्वर की प्रस्तर कला से यहाँ की कला मिलती है। यहाँ लोगों की विशाल बस्ती भी थी। जिसके अवशेष प्राप्त होते हैं।<sup>4</sup>

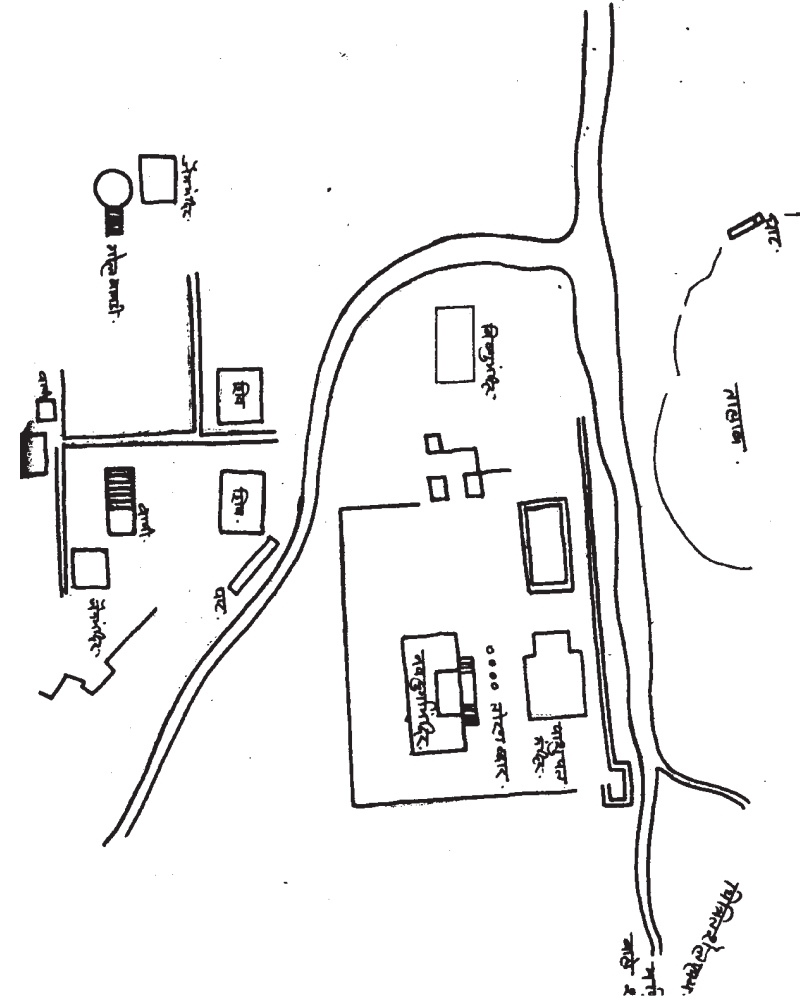
- 
1. परमार इन्सक्रिप्शन्स के कई शिलालेख माण्डव की पुरातनता के प्रमाण हैं।
  2. विक्रम स्मृति ग्रन्थ, पृ. 600
  3. वही, पृ. 601
  4. वही, पृ. 604

इन विभिन्न अवशेषों से ज्ञात होता है कि परमारकाल में यह नगर सुदृढ़ प्राचीरों और प्राकृतिक परिखा से सुरक्षित था। वहाँ अभी पूरा अन्वेषण होना शेष है।  
मोड़ी पत्तन

चम्बल घाटी की यह विशीर्ण प्राचीन बस्ती गांधीसागर बाँध की असीम जलराशि में विलीन हो चुकी है। सुप्रसिद्ध पुरावत्वेत्ता डॉ. वि.श्री. वाकणकर ने 1959 ई. में इस स्थान का सर्वेक्षण किया था। अनन्तर इन्दौर के पुरातत्त्व अधिकारी श्री रामसेवक गर्ग ने भी इसके विषय में जानकारी एकत्र की है। मोड़ी भानपुरा-रामपुरा मार्ग पर छः मील दूर अवस्थित थी। यह परमारों की उत्तरी प्रान्तीय राजधानी थी। वहाँ तब भी गाँव बसा था। गाँव के उत्तर में 3-4 मन्दिरों का समूह था। पश्चिमाभिमुखी मन्दिर के सम्मुख एक बड़ा विशाल कुण्ड था। मन्दिर में मलवा भरा था। द्वारस्थ एक प्रतिमा को देख डॉ. भण्डारकरजी ने उसके जैन मन्दिर होने की बात लिखी है पर वस्तुतः वह मूर्ति उध्वरितस लकुलीश की थी। इसके दक्षिण में नवदुर्गा का मन्दिर था तथा दोनों मन्दिरों के मध्य एक अत्यन्त सुन्दर तोरणद्वार था जो योजना के अभाव में स्थानान्तरित हुआ। कुछ भाग चम्बल बाँध पर, कुछ भानपुरा छत्री पर और कुछ भाग मन्दसौर दुर्ग में पड़ा है।'

1959 ई. में किये गये उत्खनन से परमारयुगीन अवशेष भी प्राप्त हुए। मोड़ी में प्राप्त अवशेषों से ज्ञात होता है कि यह परिखा-प्राकार से वेष्टित सुन्दर नगर था। इसे उद्यानों तथा देवालयों से सज्जित एवं शोभित किया गया था। परिखा से बाहर, उत्तर में यहाँ भी तालाब है। नदी भी यहाँ परिखा का कार्य करती है। नदी के दक्षिण में प्राकार के अवशेष प्राप्त होते हैं। पूर्वोक्त पाशुपत एवं नवदुर्गा मन्दिर के पश्चिम में विष्णु मन्दिर था। अनन्तर परिखा-प्राकार के अवशेषों के दक्षिण में नदी की धारा है जिस पर प्राचीन घाट बने थे। इसके पश्चिम में शिव मन्दिर और इस मन्दिर के पश्चिम में पुनः शिव मन्दिर था। यहाँ से सीधे दक्षिण में एक मार्ग चला जाता था जिसके सिरे पर एक प्राचीन वापी और विष्णु मन्दिर था। इस मन्दिर के पश्चिम में मातृका मन्दिर और पूर्व में मार्गशीर्ष पर जैन मन्दिर था। इस मन्दिर के पश्चिमोत्तर में एक प्राचीन वापी थी। इसी प्रकार घाट के पश्चिम में अवस्थित द्वितीय शिव मन्दिर के दक्षिण से पश्चिम की ओर जाने वाले पथ के सिरे पर जैन

मौड़िपत्तन



मन्दिर था और उससे लगी दक्षिण में गोलबावड़ी थी। मन्दिरों और वापियों के अवशेष नगर की बस्ती से जुड़े थे। इन मन्दिरों के पूर्व में नदी से दक्षिण में इस प्राचीन पत्तन को घेरने वाले प्राकार के अवशेष और चौकोर बुर्जे के अवशेष प्राप्त होते हैं। उस काल, परमार युग में बुर्जे चौकोर ही हुआ करती थीं। अनन्तर तोपों के गोलों से रक्षार्थ, बाबर के आने के बाद बुर्जे गोल बनायी जाने लगीं।

मोड़ी पत्तन के प्राचीन अवशेषों से ज्ञात होता है कि यहाँ की बस्ती धारा के समान ही, समान्तर पथों एवं चौराहों से सम्पन्न थी। ये पथ सीधे उत्तर से दक्षिण एवं पूर्व से पश्चिम जाते थे। यह परमार-युगीन नगर-व्यवस्था का एक वैशिष्ट्य था। मुस्लिम युग में यह नगर नष्ट कर दिया गया और यह उजड़ गया। अब केवल कतिपय अवशेष ही बच गये थे। वह भी अब चम्बल की अनन्त जलराशि में विलीन हो गये।

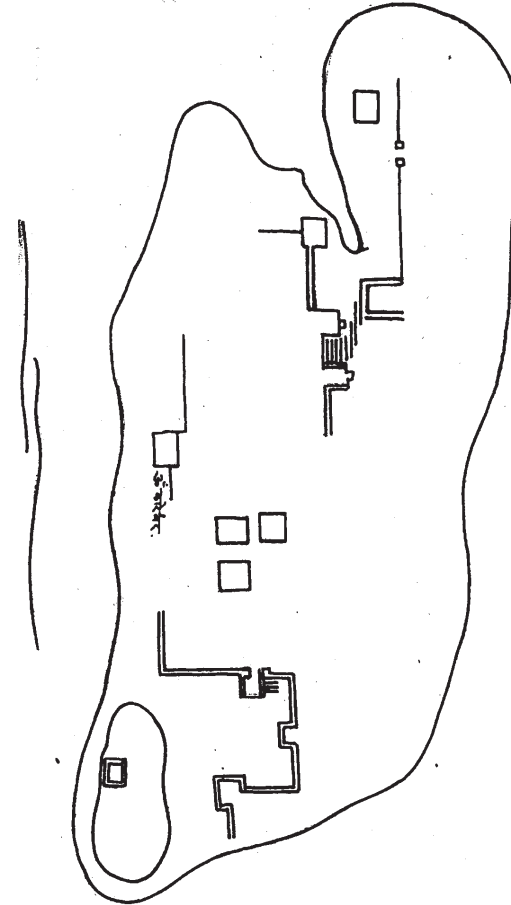
यहाँ से परमार जयवर्मा का संवत् 1314 तदनुसार 1257 ई. का एक शिलालेख प्राप्त हुआ है। शिव मन्दिर के आधारपीठ पर कुछ लेख उत्कीर्ण हैं जो 12वीं सदी की लिपि में हैं।'

#### ओंकारेश्वर

नर्मदातटवर्ती सुप्रसिद्ध तीर्थस्थल के रूप में ओंकारेश्वर को समूचा भारत जानता है। यह नर्मदा और उसकी सहायक नदी कावेरी से घिरे एक द्वीप पर अवस्थित है। मान्धाता की राजधानी के रूप में इसे पुराणों में बार बार स्मरण किया गया है। यह ओंकार की आकृति में बसा है। और इसका दुर्ग भी ओंकाराकृति में निर्मित है। पूर्व में भी यहाँ पर्याप्त निर्मितियाँ हुईं। परन्तु परमारयुग में यह विशेष ऋद्ध हुआ। यहाँ से परमारों के कई शिलालेख भी प्राप्त हुए हैं। घनघोर वन, पर्वत एवं नर्मदा की दुर्धर्ष धार से परिवेष्टित होने से मध्ययुगीन दुर्दान्त मन्दिर विनाशक आक्रमणों से यह क्षेत्र बचा रहा। तथापि कुछ विध्वंस अवश्य हुआ है। यहाँ के दुर्ग के अवशेष, उसके द्वार, वहाँ स्थित मन्दिर इत्यादि अभी कुछ सुरक्षित हैं। दुर्ग (ॐ) ओंकारकृति बना है। वह समुन्नत पर्वत पर है और परिखा के रूप में स्वयं नर्मदा अपनी प्रखर धार बहाती है। इस प्रकार यह पूर्ण सुरक्षित है। ॐ:कार में प्रसिद्ध ज्योतिर्लिंग ममलेश्वर का मन्दिर है।

इस दुर्ग में कई मन्दिर हैं- शिव, विष्णु, राम इत्यादि के। परन्तु इसमें नगर की सुव्यवस्थित बसाहट के चिह्न नहीं दिखाई देते। यह दृढ़ दुर्ग था परन्तु भव्य नगर नहीं। इसकी महत्ता धार्मिक स्थली की दृष्टि से हो सकती है और वहाँ तीर्थ सम्बन्धी जनों की ही बस्ती रही। वह कभी प्रथित राजधानी अथवा तत्युगीन बड़े नगर अथवा व्यापारिक मंडी की महत्ता नहीं पा सका। अतः नगर के रूप में उसकी सुव्यवस्थित बसाहट भी प्राप्त नहीं हुई।

#### ओंकारेश्वर



तृतीय पर्व  
परमारयुगीन प्रमुख नगर  
(साहित्य के आधार पर)

भारतक्षेत्रमध्यस्थो देशो मालवसंज्ञकः ।

अनेकनगरग्रामपत्तनैः प्रविराजितः ॥ – भोजचरित्र, 1 / 3

‘इत चम्बल उत बेतवा’ में परिमित मालवभूमि प्राचीन सांस्कृतिक गरिमा से सम्पन्न है। मालवों के आगमन से पूर्व, मालव अभियान प्राप्त करने से पूर्व भी यह भूमि, यहाँ की नगरियाँ राजधानी का गौरव प्राप्त करती रहीं।<sup>1</sup> विदिशा रामायण के युग में ही राजधानी बन चुकी थी। महिष्मती हैहयों की राजधानी थी। ओंकारेश्वर मान्धाता नृपति की राजधानी थी। अवन्ति भी हैहयों के वंशज विन्दानुविन्दों की राजधानी रही। इनके पिता का नाम अवन्ति था।<sup>2</sup> इन्होंने महाभारत के युद्ध में कौरवों का पक्ष लिया था। श्रीकृष्ण विद्यार्जन के लिए उज्जयिनीस्थ सान्दीपनि के अन्तेवासी बने थे। महासेन प्रद्योत की राजधानी भी उज्जयिनी ही थी।

उज्जयिनी सिप्रा के पूर्वी तट पर बसी हुई थी और है। वहाँ से मौर्य एवं उससे पूर्व के कई अवशेष प्राप्त हुए हैं। यह पौराणिक, ऐतिहासिक वर्तमान नगरी है।

1. डॉ. राजपुरोहित केलेख ‘प्राचीन मालवपरम्परा’, मालविका में तथा ‘महि महति मालव देश’ मुरलीधरसिंह अभिनन्दन ग्रन्थ में
2. बी.सी. ला, प्राचीन भारत में उज्जयिनी

पुराणों में इसकी भूरि भूरि प्रशंसा की गयी है। वहाँ भी प्राकार-परिखा-सम्पन्नता और गोपुर-द्वार तथा हाट बाजार की समृद्धि से इसे युक्त बताया गया है।<sup>1</sup> भास ने अपनी प्रतिज्ञायौगन्धरायण नाटक में उज्जयिनी के बाजार, गलियाँ, प्रासाद, कारावास इत्यादि का विवरण दिया है। इसी प्रकार चारुदत्त नाटक में भी उज्जयिनी का सटीक वर्णन है। ‘वीणावासवदत्ता’ में उज्जयिनी के प्रासादों तथा पथों की चर्चा हुई है। कालिदास के मेघदूत में महाकाल मन्दिर तथा शिप्रा और रघुवंश में महाकाल के निकटवर्ती राजकीय प्रासादों के संकेत प्राप्त होते हैं।<sup>2</sup>

शूद्रक के मृच्छकटिक में उज्जयिनी के श्रेष्ठिचत्वर, द्यूतस्थल, प्रासाद, न्यायशाला, श्मशान, वेशवीथी और वहाँ की प्रधान गणिका वसन्तसेना के भवन और चारुदत्त के भवन का कुछ विस्तार से विवरण प्राप्त होता है। वसन्तसेना का भवन कई प्रकोष्ठों से सम्पन्न था और उसमें रासविलास के विभिन्न उपकरणों के पृथक-पृथक प्रकोष्ठों का विवरण प्राप्त होता है। चारुदत्त के भवन से लगा गृहोद्यान भी था। पुष्पकरण्डक तथा जीर्णोद्यान की भी चर्चा हुई है और यह भी कहा गया है कि उज्जयिनी के परितः उद्यानों की परम्परा थी जिसकी पुष्टि रघुवंश, मेघदूत, बाणभट्ट की कादम्बरी इत्यादि से भी होती है। वहाँ वेशवीथी में कामदेवायतन की भी चर्चा हुई है जिसकी पुष्टि पद्मप्राभृतक भाण से होती है। क्षेमेन्द्र के कलाविलास से ज्ञात होता है कि यहाँ पर कई ढाबे और भोजनालय भी थे जिनमें अपूप या मालपुए बनते थे।

चतुर्भागी में उज्जैन का कुछ अधिक सटीक विवरण प्राप्त होता है।<sup>3</sup> इससे सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक स्थिति का तो ज्ञान होता ही है, यह भी ज्ञात होता है कि यहाँ की गलियों के क्या नाम थे ? उन नामों से मिलते जुलते नाम वाली वीथियाँ आज भी उज्जैन में पाई जा सकती हैं। यथा वेशवीथी अब भी है। उसमें ही कामदेवायतन था। उससे लगी ही फूलगली थी जिसके निकट मकररथ्या थी जिसे आजकल मगरमुहा कहते हैं। श्रेष्ठिचत्वर आज का सराफा है जहाँ श्रेष्ठि-व्यापारीवर्ग रहता है।

1. ब्रह्माण्डपुराण
2. रघुवंश, छठा सर्ग
3. डॉ. राजपुरोहित, चतुर्भागी की उज्जयिनी, विक्रम कीर्ति मन्दिर स्मारिका

पानागार को आज के पानदरीबा से मिलाने का प्रयास भी हुआ है। गुह्यदरी का अपभ्रंश गुदरी में देखा गया है। अन्हिलवाड़े के सोलंकी राजा जयसिंह सिद्धराज ने उज्जैन को जीतकर यहाँ पर एक पट्टन (पत्तन) स्थापित किया था जो आज पटनी बाजार कहलाता है। प्राचीन साहित्य से स्पष्ट है कि यहाँ उद्यानों और जलाशयों की विपुलता थी जिससे यहाँ का पर्यावरण शुद्ध रहता था।

बाणभट्टकृत कादम्बरी में उज्जैन का वर्णन अपनी भव्यता और विवृति में अद्वितीय है। वहाँ उज्जैन की नगरयोजना, रक्षा, भवन, बाजार, जन और उनकी साहित्यिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक अभिरुचि का भी विस्तृत विवरण प्राप्त होता है। इन सभी विशेषताओं के कारण बाणभट्ट ने उसे त्रिलोक में श्रेष्ठ बताया है। यहाँ महाकाल का भव्य देवालय है। यह नगरी पाताल सी गहरी परिखा से घिरी है। और गगनचुम्बी कैलास-पर्वत के शिखर के समान समुन्नत एवं शुभ्र प्राकार से यह सुरक्षित है। यहाँ महाविपणिपथ, बड़े बड़े बाजार हैं जिनमें शंख, शुक्ति, मुक्ता, प्रवाल, मरकत इत्यादि की राशि तथा स्वर्ण-चूर्ण की सिकता फैली है। चित्रशालाएँ और दिव्य विमान-पंक्तियाँ, समुन्नत शिखर सम्पन्न शृंगाटकों से यह नगरी शोभित है। यहाँ के कूपों की समुन्नत शुभ्रवेदिकाएँ हैं। कामदेवायतन में मकरध्वज की पूजा होती है। इसका उल्लेख परवर्ती साहित्य में भी अनेक बार हुआ है। यहाँ धारागृह हैं और विकसित कमलों से सम्पन्न सरोवर भी। आज भी यहाँ कई सरोवरों के अवशेष हैं। यह नगरी शिप्रा से घिरी है। यहाँ सभा, अवसथ (छात्रावास और धर्मशाला) कूप, प्रपा, आराम, शाखानगर के समान सुविस्तृत महाभवन (बाड़े), भित्तियों पर चित्रांकन, सुधालिप्त श्वेत सौध। यहाँ सहस्रों देवकुल हैं (देवकुलसहस्रसेव्या)।<sup>1</sup>

1. भगवता महाकालविधानेन - रसातलगभीरेण परिखावलयेन परिवृता, - कैलास-गिरिणेव सुधा-सितेन प्राकारमण्डलेन परिगता, प्रकट-शंख-शुक्ति-मुक्ता-प्रवाल-मरकतमणि-राशिभिश्चामीकर-चूर्णसिकतानिकरानिचतै-र्महाविपणिपथरूपशोभिता, दिव्यविमानपंक्ति-भिरिवालंकृता, तुषार-गिरिशिखरैरमरमन्दिरविराजितशृंगाटका, सुधावेदिव्योपशोभितोदपानं --उच्छ्रितं: मकरांकितै-र्मदनयष्टिकेतुभिः, धारागृहेषु, सहस्रसंख्यैरुभासिता सरोभिः शिप्रया परिक्षिप्ता, सभावसथकूप-प्रपाराम-सुरसदन-सेतु-यन्त्रप्रवर्तकेन, --सशैलेव प्रासादः, सशाखानगरेव महाभवनैः दर्शित-विश्वरूपेव चित्रभित्तिभिः, - अदितिरिव देवकुल-सहस्रसेव्या, --- विजिततामरलोकद्युतिरवन्तिपूज्ययिनी नाम नगरी।

यों तो उज्जयिनी का वर्णन अनेक ग्रन्थों में प्राप्त होता है परन्तु हमारे विषय से सम्बद्ध विवृति मुंज-सिंधुराज तथा भोज के आश्रित नवसाहस्रांकचरित के रचयिता महाकवि पद्मगुप्तपरिमल ने कुछ विशेष ही प्रस्तुत की है। इस विवृति से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि पूर्ववर्ती उज्जयिनी और परमारयुगीन उज्जयिनी की बसाहट, प्राकार, परिखा, देवालय, भव्यभवन, महाविपणि इत्यादि में विशेष अन्तन रहीं पड़ी थी। तदनुसार नगर के परितः परिखा करधनी के समान शोभित हो रही थी जिसमें कमल खिलते थे और कलहंसों की गुंजार सुनाई देती थी। प्राकारवप्र से यह नगर स्वयं को सुरक्षित महसूस करता था। देवसदन के समान पद पद पर सुधाधवल भव्य भवन थे जिनमें सिताश्रम (संगमरमर) के वातायन लगे थे। यहाँ का शिवतड़ाग बड़ा ही सुन्दर था। आज भी उसे रुद्रसरोवर कहते हैं। यहाँ अनेक देवालय विद्यमान थे। कवि इस नगरी की भव्यता को देख कल्पना करता है कि मानो विधाता ने बड़े ध्यान से इस मध्यमलोकरत्न का निर्माण किया, अपने शिल्पविज्ञान का प्रकर्ष दिखाने के लिये ही इसकी रचना की।<sup>1</sup> परमारयुगीन उज्जयिनी की यह मोटी रूपरेखा है जो तद्युगीन साहित्य में उपलब्ध है।

भोज की साकार कल्पना-धारा

सिन्धुराज के समय धारा परमारों की कुलराजधानी तथा उज्जयिनी प्रधान राजधानी थी। स्वभावतः भोज की भी राज्यप्राप्ति के समय उज्जैन ही राजधानी थी। परन्तु शत्रुओं से एवं स्वजनों से स्वयं के शासन की सुरक्षा के लिए उसने अपनी कुलराजधानी को ही प्रधान राजधानी का गौरव प्रदान कर दिया। भोज ने उज्जैन का

1. आभाति यस्याः परिखा नितम्बे सशब्दजाम्बूनदमेखलेव । 1 / 18  
प्राकारवप्रच्छलतः शरीरं आवर्त्यलीलाशयनं मुरारेः । 1 / 19  
पदे पदे सान्द्रसुधोज्ज्वलानि गृहाणि या नाक्सदां विभर्ति । 1 / 20  
सिताश्रमवातायनपीक्त्रेति । 1 / 23  
पुरा किल ब्रह्मकमण्डलोर्यत् आपूरितं पुण्यतमाभिरद्भिः ।  
धत्तं तथा तत् त्रिपुरान्तकस्य तडागमादर्शतिमवाङ्कदेशे ॥ 1 / 38  
यस्यामनेकामखेशमराजिभिः । 1 / 49  
कृतावधानातिशयेन मन्ये या वेधसा मध्यमलोकरत्नम् ।  
स्वशिल्पविज्ञानपरप्रकर्षप्रकाशनायात्र विनिमित्तिव ॥ 1 / 57

गौरव धारा को प्रदान किया।

गुप्तयुगीन नागराजा गणपतिकृत भावशतक में धारा का उल्लेख प्राप्त होता है। मेरुतुंग के अनुसार धारा नाम की वेश्या के अनुरोध पर उसी के नाम पर नगरी का नाम धारा रखा गया है। उदयपुर प्रशस्ति के अनुसार वैरिसिंह उर्फ वज्रटस्वामी ने शत्रुवर्ग को असिधारा से मारकर, अपने शौर्य की स्मृति में नगरी का नाम धारा रख दिया। टालेमी (150 ई.) ने उज्जैन से से एक अंश दक्षिण-पश्चिम में झेरोगिरि बताया है। मदन कवि की पारिजातमञ्जरी उर्फ विजयश्री नाटिका में धारागिरि-लीलोद्यान का उल्लेख है। यह धारागिरि झेरोगिरि से अभिन्न प्रतीत होता है। पंवार-वंश-दर्पण के अनुसार परमार वंश में विक्रमादित्य से भी पहिले धारागिरि राजा हुआ था। यदि इसमें सत्यांश मान लिया जाय तो असम्भव नहीं कि धारा अथवा धारागिरि को धारागिरि नृप ने ही बसाया हो। प्राचीनकाल में प्रायः नृप अपने नाम से नगर बसाते थे। परन्तु अन्य पुष्ट प्रमाण की उपलब्धि तक अभी अन्तिम रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता। हाँ, इतना अवश्य कहा जा सकता है कि धारा की स्थिति ई. की दूसरी सदी से भी पूर्व से है, चाहे राजधानी एवं महत्त्वपूर्ण नगर के रूप में उसकी प्रसिद्धि न रही हो। महाभारत तथा सातवीं सदी के एक अभिलेख में भी धारा का उल्लेख उपलब्ध होता है। शंकराचार्य की सौन्दर्यलहरी में धारा का उल्लेख है। परवर्ती काल में यह परमारों की कुलराजधानी बनी। परन्तु यह प्राचीन नगरी इस काल भी प्राचीनता को ढो रही थी। इस तथ्य की ओर सम्भवतः प्रथम बार मुंज की दृष्टि गयी और उसने अपनी कुलराजधानी को नव-निर्माणों से अलंकृत करने का बीड़ा उठाया। इस तथ्य का एकमात्र प्रमाण है-धारा का मुंज तड़ाग, जो अपनी विशालता में अब भी वहाँ के अन्य तड़ागों से बढ़कर है। सिन्धुराज अपने शासन की अल्पाविधि में ऐसा कोई निर्माण नहीं कर सका होगा जो चिरस्थायी हो सके तथा नगर एवं राजा की कीर्ति का प्रमाण बन सके।

राजधानी-परिवर्तन के पूर्व अथवा तत्काल बाद भोज ने धारा को राजधानी के गौरवनुरूप निर्माणों से भर दिया। नगर-योजना तथा भवन-निर्माण विज्ञान से सम्बद्ध अद्वितीय ग्रन्थ समरांगण सूत्रधार के प्रणेता भोज ने अपनी प्रिय नगरी धारा को अपनी कल्पना की आदर्श नगरी के रूप में प्रस्तुत किया। वह पथिकों के आकर्षण

का केन्द्र बन गयी। इस अभिराम पत्तन को देखने के लिए दूर-दूर से दर्शक आने लगे। विदेशी यात्री अल्बरूनी भी 1030 ई. के लगभग धारा पहुँचा था।

धारा नगरी में भोज ने चौबीस हाट या बाजार बनवाये।<sup>1</sup> अलग अलग वस्तुओं के लिए भिन्न भिन्न बाजार थे। गुजरात से आगत जैन साधु सूराचार्य को भोज ने अपनी नवनिर्मित नगरी के दर्शन करवाये। साधु चल चल कर थक गये। उन्होंने पूछा- 'इतने सारे बाजार बनवाने से क्या लाभ ? एक ही से काम चल सकता था। लोगों को अधिक भटकना नहीं पड़ता तथा सारी वस्तुएँ एक ही स्थान पर प्राप्त हो जाती।' तब राजा भोज ने उत्तर दिया था - 'विभिन्न वस्तुओं के ग्राहकों का एक स्थान पर मिलना ठीक नहीं। इसलिए अलग अलग बाजार बनवाये।' इस नगरी में चौरासी चौराहे तथा उन पर उतने ही देवालय थे।<sup>2</sup> साथ ही यह नगरी चौरासी प्रासादों से अलंकृत थी। नगर से बाहर परमारों की कुलदेवी का स्थान था।<sup>3</sup> अब भी नगर के पश्चिम में गुजरात की ओर जाने वाली सड़क पर ऊँची टेकरी पर देवी का मन्दिर है। राजा भोज इस देवी के नित्य दर्शन करता था। नगर में एक शारदासदम अथवा भारती भवन अथवा सरस्वतीकण्ठाभरण था जहाँ विद्यार्थी संस्कृत का उच्च अध्ययन करते थे। यहीं विद्वानों की गोष्ठी होती थी।<sup>4</sup> इसमें वाद एवं विद्याविनोद होते थे। इस विद्वत्सभा की अध्यक्षता स्वयं राजा भोज करता था। इस सभा में देश-विदेश के विभिन्न विद्वानों को राज्य की ओर से पर्याप्त आर्थिक लाभ एवं सम्मान प्राप्त होता था। इसी भवन में अर्जुनवर्मदेव के समय तक रंगमंच पर रूपक प्रस्तुत किये जाते थे जिसे विद्वत्समाज देखकर अपना निर्णय देता था। इस भवन में सरस्वती की एक दिव्य प्रतिमा प्रतिष्ठित थी। विभिन्न वर्णों से इसका स्वरूप आकर्षक बन गया था। स्फटिक की यह मूर्ति अब ब्रिटिश म्यूजियम में है। यह सन् 1034 ई. में निर्मित हुई थी।<sup>5</sup> इस भवन में संस्कृत एवं प्राकृत के अनेक काव्य तथा रूपक एवं शास्त्र

1. प्रभावकचरित
2. चतुरशीतिचतुषपथसुरसदन.....। विजयश्री नाटिका, प्रथमांक
3. प्रबन्धचिन्तामणि, भोजप्रबन्ध, तथा परिषद्- पत्रिका में डॉ. राजपुरोहित का लेख 'सरस्वतीकण्ठाभरण'
4. वही
5. रूपम्, 1924

शिलाओं पर उत्कीर्ण थे, जिनमें से अब भी पूर्ण अथवा खण्डित अथवा विनष्ट रूप में अनेक उपलब्ध होते हैं। वस्तुतः यह भवन शिलांकित ग्रन्थों का अद्भुत ग्रन्थालय था जिसकी समृद्धि अर्जुनवमदेव के काल तक होती रही। इस नृप के राजगुरु मदन कवि की पारिजातमञ्जरी नाटिका भी इसी भवन में उत्कीर्ण है। यह भवन अब भोजशाला के नाम से विख्यात है। नगर से लगे हुए शाखापुर (उपनगर) भी थे। अल्बरुनी ने एक प्रासाद के द्वार के सम्मुख एक चाँदी सी चमचमाती लाट देखी थी। जिसके शिखर पर मानवाकृति बनी थी। अब भी लाट-मस्जिद के समक्ष एक लोह स्तम्भ तीन भागों में खण्डित अवस्था में पड़ा है। सम्भवतः उस काल इस पर श्वेत ओप अथवा रजत आवरण रहा होगा। इन स्तम्भ भागों की निर्मिति से लगता है कि परमारकाल में लोहे की भट्टी के कुशल कारीगर थे। तब स्तम्भ के सिरे पर परमारों पर राजकीय चिह्न मानवाकृति गरुड़ रहा होगा।

स्वयं राजा भोज ने अपनी 'शृङ्गारमञ्जरीकथा' में अनुपम नगरी धारा का विस्तार से अलंकृत विवरण प्रस्तुत किया है।<sup>2</sup> यह विवरण मूलतः परम्परागत है तथापि वहाँ कुछ तथ्य पाये जा सकते हैं। भोज के अनुसार धारा से अधिक और कोई नगरी विलक्षण नहीं, अतः कथा प्रारम्भ करने से पूर्व इसका वर्णन करना अनिवार्य है। धारा सारे जगत् में श्रेष्ठ तथा अद्भुत नगरी है। इसके वैभव ने इन्द्रपुरी को निष्प्रभ कर दिया। हर रात समुन्नत सौध की चन्द्रशाला में टहलती नगर रमणियों के सहस्रों मुखचन्द्रों से यह अकेले चन्द्र का उपहास करती है। स्फटिक तथा मरकत मणियों की श्वेत-श्याम किरणों की मित्रता वहाँ के बाजारों में देखी जा सकती है। भवनों पर फहराते ध्वज सूर्य के क्लान्त अश्वों का पसीना पोछते से लगते हैं। वसुन्धरा का प्राण, संसार का सार, विश्व का सर्वस्व, सारी सम्पदाओं की विश्वासभूमि, विलासलक्ष्मी की आवासभूमि, पृथ्वी का अलंकार, त्रिवर्ग का आश्रय, निसर्ग कमनीय कामिनियों की टकसाल, रमणीयता का प्रधान कोष एवं सारे जागतिक दार्शनार्थियों के नयनों की अमृतरसधारा धारा है। यहाँ के सौधों में अरुणमणि (लाल) की फर्श बनी है। स्फटिक की प्रासादपंक्ति से मानो तीनों लोक की प्राचीन नगरियों

1. सचाऊ-अल्बरुनी का भारत (हिन्दी)

2. भोजकृत शृङ्गारमञ्जरीकथा का मूल अंश द्रष्टव्य परिशिष्ट में।

का उपहास करती है। दर्शकों की आँखें अटक जाती हैं - चारों ओर प्रासाद, सौध, दीपिका, उपवन एवं पताका। विविध रत्नों का निचय वहाँ एकत्र दृष्टिगोचर होता है। भवनों में ललनाओं का ललित नर्तन, वलयों की झंकार तथा संगीत की ध्वनि का अनवरत क्रम चलता रहता है। सैकड़ों होम, वेदपाठ, कथा-वार्ता आदि वहाँ क्या क्या धर्म-कर्म नहीं होते। जहाँ के निवासी शान्त, सुखी, अनुग्र, सरल, सुन्दर वेश एवं अलंकारों से अलंकृत एवं व्यवहारकुशल हैं।

हिमपर्वत के समान शुद्धश्वेत, समुन्नत, विविध मणियों से जटित अप्रतिम प्राकार से यह नगरी रक्षित है जिसमें मोटे एवं विशाल कपाटों से चार द्वार हैं, जिनके सामने देश-विदेश से आगत नगर-दर्शन को उत्सुक लोगों की भीड़ लगी रहती है। आज भी धार में छोटी मोटी पर्वत श्रेणी सा यह प्राकार धूलकोट के नाम से विज्ञात है। प्राचीरों पर कंगूरे थे। प्राकार (परकोटा) मरकत मणियों से जड़ा है। इसके बाहर चारों ओर गहरी खाई (परिखा) थी जिसका जल निर्मल था जो विविध प्रकार के कमलों से नयनाभिराम हो रहा था। प्राकार के बाहर इस परिखा के चिह्न अब भी देखे जा सकते हैं।

इस नगरी के आसपास नयनाभिराम, निर्मल जल से पूर्ण, रंगबिरंगे कमलों से युक्त, घनी अमराई से परिवृत्त अनेक सरोवर थे। यह नगरी अनेक उद्यानों से अलंकृत थी। ऐसे ही एक उद्यान-धारागिरिलीलोद्यान-का संकेत पारिजातमञ्जरी में है जो निश्चय ही भोज के काल लगाया गया होगा। क्योंकि वहाँ जो महत्ता उपलब्ध होती है, शृङ्गारमञ्जरीकथा से उसकी पुष्टि होती है। धारा अब भी 13 तालाबों से घिरी है।

नगर में अनेक उपवन, उद्यान तथा प्रमदवन थे। क्रीड़ाशैल, तड़ाग, वापी, दीर्घिका, पुष्करिणी, धारागृह, यन्त्रधारागृह आदि की नगर में कमी नहीं थी। तालाब के किनारे स्फटिक के घाट तथा छायादार घने वृक्ष थे। यहाँ के उद्यान में स्वाभाविक सौन्दर्य था। बनावटी क्रीड़ा-पुष्करिणी, वीरविलासोद्यान, सेचन कुटी, यन्त्रधारागृह एवं धारागृह से इन उद्यानों की शोभा बढ़ गयी थी। यहाँ कृत्रिम कछुआ पानी में डूबता-उतरता तथा भागती हुई कृत्रिम मछलियाँ बगुलों को छलती थीं। यन्त्रमकर को देखने में लीन मछुइयाँ डरती हुई धरती को पैर छुआए विस्मय से देख रही होती तो



कहीं यन्त्रपुतलियाँ वाद्यवादन, गीत एवं नृत्य में रत होती जिन्हें देख कुशल दर्शक भी चकित रह जाता। कहीं पत्रमकरिका की आँख के कोने से जलधारा निकल रही होती तो कहीं नीचा मुख किये मयूरी के मुख से, कहीं मणिनिर्मित यन्त्रपुतली के कुचद्वन्द्व से, कहीं सद्यःस्नाता स्वर्णपुतली की निचोड़ी जा रही वेणी के अलक-छोर से, कहीं मणिनिर्मित विलासिनी के नखाग्र से, कहीं रोते बालक के दन्ताग्र से, कहीं कृत्रिम वृक्ष पर बैठे यन्त्र-वानर के मुख से, कहीं धरातल से, कहीं भीत के छोर से, कहीं भित्तिनलिनी से एवं कहीं स्तम्भ-छोर से। और इस प्रकार सारा वातावरण कृत्रिम वर्षा से पूर्ण हो जाता था। स्तम्भों व दीवालें पर सहारे वे शोभा के लिए विविध बहुमूल्य मणियों की शालभंजिकाएँ कुछ ऐसे सधे हाथ से बनी थीं कि कृत्रिम होते हुए भी स्वाभाविक सी लगती थीं।

धारा के भवन अनेक मंजिले होते थे। छत से पानी निकालने को चन्द्रमणि की प्रणालियाँ होती थीं। भवनों में झरोखे, हंसपालि तथा कपोतपालि होती थीं। वे चूने से पुते हुए थे पर अन्दर से उनकी दीवालें तथा छत बहुमूल्य पत्थरों एवं चित्रों से अलंकृत होती थीं। वेदिका तथा उच्चासन बने रहते थे। प्रांगण, तोरण, सोपान, वातायन, गवाक्ष आदि के साथ ही राजप्रसादों में क्रीड़ा-मण्डप, शयनागार तथा अपवारक भी होते थे।

यहाँ के निवासी कलाप्रिय, स्त्रियाँ मण्डनप्रिय तथा वीर युद्धप्रिय थे। इनकी प्रवृत्ति धार्मिक थी। सैनिकों के मनोरंजन के लिए अलग से वीरविलासोद्यान बनवा दिया गया था जिससे नागरिकों के मनोरंजन में उनका हस्तक्षेप न हो।

इस प्रकार भोज ने धारा को प्राकार, परिखा, उद्यान, हाट, चौराहे, भवन, प्रासाद तथा मन्दिरों से दुल्हन के समान सजा दिया था।<sup>1</sup> कालिदास तो अलका की केवल कल्पना कर रह गया परन्तु भोज ने अपनी कल्पना की नगरी को मूर्त रूप दिया। उसकी कल्पना का परिणाम जगत् के लिए आश्चर्य बन गया। परवर्ती कलाप्रिय परमारों ने इसकी मनोरमता में परिवृद्धि कर उसे और भी अधिक नयनाभिराम बनाने में अपनी रुचि दिखायी।

इस प्रकार मुंज के समय से धारा में निर्माण कार्य आरम्भ हुए। भोज ने उसे

1. भोज की धारा, मध्यप्रदेश संदेश, 1975 में द्रष्टव्य- डॉ. राजपुरोहित का लेख

पूर्ण नवीनता प्रदान की। अर्जुनवर्मा के समय भी उसमें 84 चौराहे विद्यमान थे। स्पष्ट ही इसकी सड़कें सीधी थीं जो चौराहे बनाती जाती थीं। आज की धारा भी तदनु रूप ही है। बसाहट में विशेष अन्तर नहीं आया है।

भाइलस्वामिपुर

भोजकृत शृङ्गारमञ्जरीकथा के अनुसार भाइलस्वामीपुर विदिशा के एक भाग का नाम है। इसका ही अपभ्रंश भेलसा है जो विदिशा का पर्याय बन गया था। 878 ई. में महलघाट, भेलसा से प्राप्त लेख में, सूर्यस्तुति में उल्लेख है कि भाइलस्वामी के दो बाजार किराये से दिये गये थे और उससे 130 पंचियक द्रम्म किराया आता था। वह सूर्यमन्दिर को दान दिया था। इसी प्रकार जयसिंह जयवर्मन द्वितीय के मान्धाता ताम्रपत्र में उल्लेख प्राप्त होता है कि देवपालदेव ने म्लेच्छाधिप को भाइलस्वामीपुर में पराजित किया था<sup>1</sup> और वहाँ के दुर्ग को अपने अधीन कर लिया था। भाइलस्वामी महाद्वादशक प्रान्त में उदयपुर का प्रान्तपति 1171 ई. में लूणपासक था।<sup>2</sup> यह विक्रम संवत् 1229 के शिलालेख से स्पष्ट है। लक्ष्मीवर्मा के उज्जैन ताम्रपत्र से ज्ञात होता है कि 1134 ई. में यशोवर्मा द्वारा प्रदत्त दान को 1144 में लक्ष्मीवर्मा ने भाइलस्वामी के लिए जारी ही रखा।<sup>3</sup> विविधतीर्थकल्प में भइलस्वामिगढ़ का उल्लेख है।<sup>4</sup> वेत्रवती के तटवर्ती भइलस्वामी की साक्षी में महाकुमार हरिश्चन्द्र ने भूमिदान किया था।<sup>5</sup> उदयादित्य ने भी दारिद्रदुः खहरणार्थ भाइलस्वामी की शरण ली थी तथा तत्सम्बन्धी शिलालेख विजामण्डल से मिला था। विक्रम संवत् 1320 के भेलसालेख में राजा जयसिंह और भाइलस्वामिपुर का तथा भाइलस्वामी का उल्लेख प्राप्त होता है।<sup>6</sup> भोज के सभाकवि छित्तप ने भाइलस्वामी में सूर्यस्तुति पाषाण पर उत्कीर्ण करवायी थी।<sup>7</sup> इन संदर्भों से स्पष्ट

1. एपिग्राफिया इण्डिका, खण्ड 32, श्लोक 46-48
2. इन्डियन एण्टीक्वेरी 18, पृ. 81
3. वही, 19 तथा डॉ. के.सी. जैन, मालवा थूद एजेस, पृ. 365
4. विविधतीर्थकल्प, पृ. 32, 47 एवं 85
5. एपि.ई. भाग 26, पृ. 225
6. वही, भाग 35, पृ. 187
7. एपि. ई. भाग 30, पृ. 251

होता है कि विदिशा का परमारयुग में भाइलस्वामिपुर नाम हो गया था जो परवर्तीकाल में लगभग एक सहस्र वर्ष तक प्रचलित रहा और घिसकर 'भेलसा' रह गया था। यह नाम भारत के स्वतन्त्र होने के बाद तक प्रचलित रहा।

भाइलस्वामिपुर का प्राचीन नाम विदिशा था। रामायण, महाभारत, विविध पुराण, बृहत्कथा के विविध संस्करण इत्यादि में तथा जातककथाओं एवं विपुल जैनसाहित्य में विदिशा के अगणित उल्लेख प्राप्त होते हैं। कालिदास के मालविकाग्निमित्र नाटक का कार्यक्षेत्र विदिशा ही है जिसे शृंगों की राजधानी बताया गया है। मेघदूत में भी इसे 'राजधानी' कहा गया है तथा यहाँ की विलास गुहाओं का वर्णन किया गया है। वहाँ दोनों तटों पर लहलहाते उद्यानों वाली नवनदी की भी चर्चा है जिसे आज को चोपलूर कहते हैं। बाणभट्ट ने अपनी कादम्बरी में शुद्रक की राजधानी के रूप में विदिशा का कुछ विस्तार से वर्णन किया है। इन विवरणों से स्पष्ट होता है कि विदिशा राजधानी के एक व्यापारिक शाखानगर का नाम वेश्यनगर था जो आज भी बेसनगर कहलाता है तथा इसी नगर के एक अन्य शाखानगर को 9वीं सदी से ही भाइलस्वामिपुर पुकारा जाने लगा था। यही भाग परमार युग में प्रधान हो गया था जिसके कारण परवर्ती युग में विदिशा नगर का ही नाम भेलसा हो गया था।

साहित्य में भेलसा के नगर से सम्बन्धित इससे अधिक कुछ ज्ञात हो नहीं पाता है। उसके नगर इत्यादि से सम्बन्धी विस्तृत विवरण साहित्य में अज्ञात हैं।

मण्डप दुर्ग

दुर्ग की दृष्टि से माण्डव का विशेष महत्त्व है। 946 ई. के प्रतापगढ़ लेख से ज्ञात होता है कि माण्डू और उज्जैन प्रतिहारों के अधीन थे।<sup>1</sup> 1046 ई. में कर्णाटराज सोमेश्वर ने भोज को पराजित किया और उसके दण्डनायक गुंडमय ने माण्डू पर अधिकार कर लिया था।<sup>2</sup> भोज ने धार तथा माण्डू के दुर्गों का निर्माण किया था।<sup>3</sup> विन्ध्यवर्मा के सान्धिविग्रहिक विल्हण के माण्डू से प्राप्त शिलालेख में विष्णु की

1. ए.इ., भा 14, पृ. 176

2. एन्यूअल रिपोर्ट ऑफ मेसोर आर्कालाजि डिपार्टमेंट, 1928, पृ. 68-69

3. डॉ. के.सी. जैन, मालवा थ्रू द एजेज, पृ. 352

मनोरम स्तुति प्राप्त होती है।<sup>1</sup> 11वीं सदी के उत्तरार्द्ध में माण्डू में कालिकादेवी का मन्दिर था।<sup>2</sup> सरस्वतीस्तुति से पूरित एक शिलालेख माण्डू से प्राप्त हुआ है।<sup>3</sup> यह स्तुति खण्डित परन्तु ललित संस्कृत में है। धार, उज्जयिनी, उदयपुर तथा ग्यारसपुर के समान माण्डू में भी परमारकला के उत्कृष्ट उदाहरण प्राप्त होते हैं।<sup>4</sup> धार के समान माण्डव में भी शारदासद्म था जहाँ से सरस्वती स्तुति प्राप्त हुई है। धार, उज्जैन आदि के समान माण्डव में भी निवासीय भवन तथा जनोपयोगी मनोरम स्थल बनाये गये थे। माण्डू से कर वसूल कर हम्मीर ने धार के भोज द्वितीय को पराजित किया था।<sup>5</sup>

साहित्य में माण्डव का वर्णन विशेष प्राप्त नहीं होता। परन्तु आज जो भी उल्लेख प्राप्त होते हैं और अवशेष प्राप्त होते हैं उनसे स्पष्ट होता है कि माण्डव सुनियोजित एवं विशाल नगरी थी।

ओंकारेश्वर

ओंकारेश्वर पौराणिक महत्त्व की नगरी है। मान्धाता की राजधानी तथा तीर्थ के रूप में उसे पर्याप्त प्रसिद्धि मिली। स्कन्दपुराण के रेवाखण्ड में इसकी विशेष चर्चा है। मुंजराज ने यहाँ मन्दिर बनवाया था।<sup>6</sup> जयसिंह जयवर्मा द्वितीय के शासनकाल में ओंकारेश्वर शिव मन्दिर बनाया गया था।<sup>7</sup> यहाँ पर दसवीं सदी में अमरेश्वर मन्दिर निर्मित हुआ था।<sup>8</sup> 'श्री ओंकार' लिखे गधैया सिक्के भी प्राप्त हुए हैं जो स्थानीय शासक के होंगे।

ओंकारेश्वर में अपार पुरातत्त्वीय सम्पदा विकीर्ण असुरक्षित पड़ी है। उससे ही ज्ञात होता है कि यहाँ पर्याप्त निर्मितयाँ हुई होगी। परन्तु साहित्य में इस स्थली का

1. परमार इन्सिक्लशन्स तथा एनल्स ऑफ भण्डारकर ओरि. रिसर्च जर्नल, भाग 9

2. वही, भाग 4, पृ. 99

3. वही, भाग 8, पृ. 142-44

4. डॉ. के.सी. जैन, मालवा थ्रू द एजेज, पृ. 448

5. हम्मीर महाकाव्य, 9/17

6. द ग्लोरि देट वाज गुर्जर देश, भाग 3, पृ. 117

7. ए. इ., भाग 2, पृ. 182

8. आर्कालाजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया, 1935-36, पृ. 80

विशेष विवरण प्राप्त नहीं होता, विशेषतः इस परमार युग के साहित्य में। वैसे सत्रहवीं सदी के आशाधर भट्ट ओंकारेश्वर और नर्मदा की स्तुति अपनी त्रिवेणिका में करता है।

इस प्रकार प्राचीन साहित्य में सर्वाधिक विवरण उज्जयिनी, विदिशा तथा धारा का प्राप्त होता है। परन्तु परमारयुगीन साहित्य में केवल धारा का ही विशिष्ट विवरण प्राप्त होता है, वह भी स्वयं राजा भोजकृत शृङ्गारमञ्जरीकथा में। उसने आदर्श नगर की समरांगणसूत्रधार में कल्पना की, स्वयं ने धारा के रूप में उस नगर को साकार किया तथा स्वयं ने उस आदर्श नगरी का वर्णन भी किया था। इस युग में इतना पूर्ण विवरण और किसी मालवी नगरी का नहीं किया गया।

## भोजपाल भोपाल

भोपाल का प्राचीन नाम भोजपाल था। भोजपाल का तात्पर्य है भोज की पाल। भोज निर्मित तालाब की पाल पर की बस्ती है भोपाल। पाल रक्षक को कहते हैं। यह तालाब की रक्षा करने वाली चौकी थी। जहाँ रक्षक चौकस (चौक्ष) रहते थे। विशाल तालाबों के विभिन्न तटों पर गाँव बसे होते थे। राजा भोज द्वारा निर्मित विशाल झील के तट पर भोजपुर भोज की सेरगाह बस्ती थी। दूसरे तट पर भोजपाल बस्ती थी। भोजपुर से भोपाल तक विस्तृत जलाशय था। यह कहा जाता है कि भोज के मंत्री ने विस्तृत तालाब बनवाकर भोजपाल नाम की बस्ती बसाई।

भोजपुर के निकट बेतवा को बाँधकर राजा भोज ने अपने स्वास्थ्य लाभ के लिए जो झील बनाई थी, उसमें नाव से वे सैर करते रहते थे। भोजपाल से जाकर भोजपुर में शिवार्चन करते। वहाँ से वे भीमबेट तक यात्रा करते थे। भीमबेट अर्थात् भीम का द्वीप। जैसे बेटद्वारिका यही आज का प्रसिद्ध स्थल भीमबेटका है। भीम राजा भोज की उपाधि भी थी। उनकी अपनी एक पुस्तक का नाम भी भुजबलभीम है। भीम पराक्रम भी उनका नाम है। राजा भोज की पुस्तकों के नाम उनके विरुद्ध भी होते थे। इंडियन एंटीक्वेरी के 1888 दिसम्बर अंक में डब्ल्यू किंकेड ने इस सरोवर, इसके तटवर्ती भोजपुर, भोजपाल आदि का पृष्ठ 348 से 352 तक विवरण देते हुए

उस झील का मानचित्र भी दिया। तदनुसार किसी भीषण रोग का इलाज राजा भोज को एक योगी ने बताया था कि वर्ष के 365 दिन तक 365 स्रोतों के एकत्र जल में स्नान करने से रोग से मुक्ति मिल सकती है। राजा भोज के अभियांत्रिक अपने राज्य में ऐसे स्थल की खोज करने लगे। तब कालिय नामक गोंड ने बताये स्थान पर बेतवा बाँध बनाया गया जिसमें 359 स्रोतों का जल था। फिर कालिय के बताये अनुसार एक छः धारा वाली नदी को मोड़कर उसमें मिलाकर 365 संख्या पूर्ण की गयी। वह कालिय स्रोत आज भी यथावत् है।

इस बाँध से जलभराव क्षेत्र जो निर्मित हुआ था उसका 250 मील (400 कि.मी.) विस्तृत क्षेत्रफल है। सर्वेक्षण द्वारा जलभराव के चिह्नों का सावधानीपूर्वक आंकलन द्वारा यह पुष्ट हुआ है। इसका केवल पत्थर चुनकर जो दो बाँध बनाये गये थे उनमें से बड़ा बाँध आज भी विद्यमान है। छोटे बाँध को माण्डू के सुलतान होशंगशाह ने तुड़वा दिया था। उस खाली उपजाऊ क्षेत्र में आज तीन सौ साठ गाँव बसे हैं। वहाँ से नर्मदा क्षेत्र के पास में जो मण्डी दीप है वह उन्नत भूमि होने से तब द्वीप था। राजा भोज वर्ष भर तक उसी क्षेत्र में रहे व नौका से वहाँ तक भी उनकी यात्रा होती रहती थी। झील खाली हो जाने पर भी जो जल भरा रह गया, वही आज भोपाल का ताल है। शेष बचा वही इतना बड़ा है कि उसकी विशालता सम्बन्धी यह कहावत प्रसिद्ध है- ताल हो तो भोपाल ताल, सब दूसरे तलैया।

गोंड परम्परा के अनुसार भोजपाल (अर्थात् भोज की पाल) नाम ही आज भोपाल कहलाता है (पृष्ठ 352)। पुराने भोपाल किले के ऊपर तीन विशाल बाँध के अवशेष आज भी देखे जा सकते हैं। वे गोंड गोनार के इस दुर्ग और झील क्षेत्र में छिपी उन आत्माओं की बात करते हैं जिन्होंने भोज के भोजपुर मन्दिर निर्माण को बीच में ही रोक दिया था। इस किले में प्राचीन सुन्दर अलंकृत प्रतिमाएँ और पत्थर पाये जाते हैं। इस बाँध के कारण बेतवा की बाढ़ का विदिशा को खतरा नहीं रहा था। इसीलिए वहाँ बेतवा जल क्षेत्र से नीची भूमि पर भोज ने भइलस्वामीदेवपुर नामक नया नगर बसाया जो बाद में भेलसा नाम से प्रसिद्ध नगर रहा। वही आजकल पुनः विदिशा नगर कहलाता है। स्पष्ट ही भोपाल का प्राचीन नाम भोजपाल था। इस सम्बन्ध में 1823 में प्रकाशित सर जान मालकम के ए मेमायर ऑफ सेन्ट्रल

इण्डिया (भाग-1-2) से ही विवरण प्राप्त होने लगे थे।

(इंडियन एंटिक्वेरी भाग 17 (1888), मालकम का सेन्ट्रल इण्डिया, भाग 1, पृष्ठ 25, जर्नल ऑफ एशियाटिक सोसायटी ऑफ बेंगाल भाग 8, 1889, पृ. 814 सहित अनेक प्राचीन ग्रन्थों में इस विषयक विवरण हैं। देखें मेरी पुस्तक प्रतिभा भोजराजस्य, पृष्ठ 76-80 तथा फड़के कृत परमारांचा इतिहास, पृ. 7)।

## चतुर्थ पर्व भोज का नगर-स्थापत्य-वैशिष्ट्य

परमार युग भारतीय राजनीतिक इतिहास में संक्रान्ति युग है। इन दिनों मुस्लिम आक्रमणों का आरम्भ हो गया था। फलतः मुस्लिम सैन्य-विशिष्टियों के अनुरूप सुरक्षात्मक उपाय आवश्यक हो गये थे। परमार-युग से पूर्व मृत्प्राकार बनते थे परन्तु अधिक सशक्त बनाने के लिए अब पाषाण दुर्ग बनाने आरम्भ कर दिये गये थे। प्राकार भी पाषाण के बनने लगे। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण परमारों की राजधानी धारा में अब भी प्राप्त होता है। ये धार के उटावद दरवाजे के पास दिखाई देते हैं जहाँ मृत्प्राकार के साथ ही ईंट एवं पत्थरों की दृढ़ दीवाल भी पायी जाती है।

समरांगणसूत्रधार में बुर्जों के उल्लेख प्राप्त होते हैं। इन प्राचीनों पर एक हाथ ऊँचे कपिशीर्षक (कंगूरे) बनाने का भी संकेत प्राप्त होता है। ये बुर्जे प्रत्यक्ष में परमार युग में चौखट्टे अथवा चौकोर बनते थे, हिन्दू तथा परमार-स्थापत्य के अनुरूप। इसके उदाहरण धार, विदिशा तथा ओंकारेश्वर के दुर्गों में प्राप्त होते हैं। इसके प्रधान कारण ये हैं कि हिन्दू स्थापत्य में गोलाकार निर्माण की परम्परा अधिक प्रचलित नहीं थी। यह परम्परा इस्लामी स्थापत्य में विशेष लोकप्रिय एवं प्रचलित थी। भारत में गोलाकार द्वार-शीर्ष तथा ऐसी ही बुर्जे बनाना मुसलमानों के आगमन के पश्चात् उनके ही द्वारा आरम्भ किया गया।

धार के दुर्ग में अधिकांश बुर्ज गोल हैं परन्तु कुछ चौकोर भी हैं। ये चौकोर बुर्जे प्राचीन हैं, परमारयुगीन। इससे प्रतीत होता है कि मुहम्मद तुगलक ने परमारयुगीन धारागिरिलीलोद्यान, दुर्ग का जीर्णोद्धार किया था। यही कारण है कि इस दुर्ग की बुर्जों में मुस्लिम तथा मुस्लिम पूर्व, परमार स्थापत्य का समन्वय दिखाई देता है। इस दुर्ग में एक परमारयुगीन वापी भी विद्यमान है। युद्ध की दृष्टि से भी चौकोर एवं गोलाकार बुर्जों से उपयोगिता में अन्तर है। तोपों के गोले चौकोर बुर्जों को सरलता से तोड़ सकते थे क्योंकि गोलों की मार सीधी पड़ती है परन्तु गोलाकार बुर्जों पर वे गोले फिसल जाते हैं। इसीलिए मुस्लिम युग में अपनी परम्परा के साथ ही युद्ध के औचित्य की दृष्टि से भी गोलाकार बुर्जे बनना आरम्भ हो गयी थीं।

परमारयुगीन प्राकार के प्रवेश द्वार सीधे नहीं होते थे। ये स्वस्तिकाकार होते थे। जिससे शत्रु द्वार में प्रवेश करते ही सीधे प्रवेश न कर सकें। स्वस्तिकाकार द्वार, टेढ़े-मेढ़े होने से द्वार में प्रविष्ट शत्रुओं पर भी आक्रमण कर वार करना सरल होता है। अतः द्वार सीधे न बनाकर स्वस्तिकाकार बनाये जाते थे। धार, बूढ़ी माण्डव, ओंकारेश्वर, विदिशा इत्यादि स्थलों पर ऐसे ही द्वार प्राप्त होते हैं।

इन नगरों की रचना के प्रमुख आधार बाजार तथा मन्दिर थे। प्रत्येक नगर में विपुल बाजार होते थे जहाँ सभी प्रकार की वस्तुओं का क्रय-विक्रय होता था। प्रभावकचरित के अनुसार धारा में भिन्न भिन्न वस्तुओं के विक्रय हेतु भिन्न भिन्न 24 बाजार थे। यह स्थिति सर्वत्र थी। समरांगणसूत्रधार के अनुसार ये नगर समांतर सड़कों वाले, समान दूरी पर चौराहे बनाते थे। धारा में बहुत कुछ वही स्थिति दिखाई देती है। परमारों ने नगरों को आमूल नहीं बसाया था, उनमें कुछ आवश्यक परिवर्तन ही किये गये थे। इसलिए उनकी योजना की शतशः अनुरूपता उनके नगर-विन्यास में प्राप्त नहीं होती। ये नगर मन्दिर-प्रधान थे। धारा में 84 चौराहे थे और प्रत्येक चौराहे पर एक सुरसदन था। 'चतुरशीतिचतुष्पथसुरसदनप्रधाना' इसलिए उसे कहा गया है। यही स्थिति अन्यत्र भी थी।

यही नहीं, प्रत्येक नगर में एक प्रधान देवालय होता था। उज्जयिनी में महाकाल, ओंकारेश्वर में ओंकार-ममलेश्वर, धारा में शारदासदम अथवा सरस्वतीकण्ठाभरण था जिसे आज भोजशाला कहते हैं, माण्डव में भी सरस्वती

सदन था एवं विदिशा में सूर्य-मन्दिर प्रधान था जिसे भाइलस्वामी का मन्दिर कहते थे। ये सुरसदन तथा प्रधान नगर-रचना के प्रमुख आधार होते थे।

प्राचीन के अनुरूप इस युग के नगर भी गहन परिखा एवं प्राकार से रक्षित होते थे। यही नहीं, नगर के चारों ओर नदी अथवा तालाबों अथवा दोनों की संरक्षक रचना होती थी। धारा में खाई के साथ ही चारों ओर तेरह तालाब थे। जो नगर का सौन्दर्य-वर्धन तो करते ही थे, उसकी सुरक्षा भी करते थे। माण्डव में भी परिखा के साथ ही सुरक्षात्मक तालाब थे। ओंकारेश्वर में नदी की परिखा है। विदिशा में नदी की एवं निर्मित परिखा है। मोड़ी में नदी और तालाब दोनों रक्षा करते थे। उज्जैन में तीन ओर सिप्रा रक्षा करती थी और शेष भाग को तालाबों से रक्षित कर दिया गया था। यह तथ्य मानचित्र से स्पष्ट हो जाता है। विष्णु, पुरुषोत्तम, गोवर्धन, क्षीर, पुष्कर, रुद्र इत्यादि सागर-तालाब उज्जैन की रक्षा ही करते थे। यहाँ एक गहन परिखा भी प्राकार को घेरती थी, उससे बाहर तालाब थे। समरांगणसूत्रधार में त्रिपरिखा की बात कही गयी है। धारा तथा उज्जयिनी में परिखा एवं तालाब थे। इस प्रकार दोहरी परिखा के तो प्रत्यक्ष उदाहरण भी प्राप्त होते हैं।

वर्धनापुर अथवा बदनावर के दुर्ग के अवशेष वहाँ की पहाड़ी पर अब भी देखे जा सकते हैं। यह नगरी परमार काल के पहले ही लोकप्रिय रही। प्राक्परमारकालीन वहाँ कई प्रतिमाएँ हैं। परमारकालीन वहाँ बैजनाथ मन्दिर है। इस समय के ताम्रपत्रों-शिलालेखों में भी वर्धमानपुर या वर्धनापुर के उल्लेख प्राप्त होते हैं। आठवीं शती से लगातार यह सदियों तक ग्रन्थ रचना का केन्द्र भी रहा। जैन हरिवंशपुराण यहाँ भी लिखा गया और मेरुतुंग की प्रबन्धचिन्तामणि की रचना भी यहीं हुई।

आस्थावान होने से इस युग की नगरियाँ धार्मिक प्रतीकाकार भी बसाई जाती थीं। ओंकारेश्वर ओम् के आकार में बसी थी तो उज्जयिनी मन्दिराकृति बसी थी। यह मानचित्र से स्पष्ट है।

गुजरात के चालुक्यों तथा मेवाड़ के एवं अन्य पड़ोसी राजाओं ने भी अपने नगरों की संभवतः ऐसी ही रचना की थी। समकालीन होने से स्थापत्य धाराओं का परस्पर प्रभाव होना स्वाभाविक है। पुनः तत्सम्बद्ध शास्त्र भी सामान्य होते थे। यद्यपि परमार भोज ने अपने शास्त्र भी स्वयं बना लिये थे-समरांगणसूत्रधार तथा युक्तिकल्पतरु, पर उनकी उपयोगिता एवं प्रतिष्ठा सर्वत्र थी।

षष्ठ पर्व

## राजा भोज की शृङ्गारमञ्जरीकथा में धारा नगरी वर्णन

समस्त भुवनों में एकमात्र मनोहर अनोखी समस्त जनता के नयनों की अमृत रस धारा नामक नगरी है। यह वही नगरी है जो अपने वैभव से देवनगरी का भी उपहास करती है। हर रात समुन्नत प्रासादों की चन्द्रशालाओं में विचरती पुर-रमणियों के हजारों मुखचन्द्रों द्वारा एक अकेले चन्द्रबिम्ब का उपहास करती रहती है। स्वर्ग में छलकते विमल स्फटिक उपल के भवनों की किरणों से स्फुटित मणि-प्रासादों के किरण जालों से निसर्ग के विरुद्ध अन्धकार और ज्योत्स्ना की प्रत्येक विपणी में भिन्नता सम्पादित करती रहती है। विस्तृत गगन के लघन श्रम से थके सूर्य के रथ के अश्व प्रत्येक प्रासाद को चंचल पवन से, ध्वज के पट पल्लव के पंखों से पसीना पोंछती सी लगती है। यह पृथ्वी के प्राण हैं, संसार का सार है, विश्व का सर्वस्व है, समस्त सम्पदाओं का विश्वास स्थान है, विलास-लक्ष्मी की आवासभूमि है, धरा का आभूषण है, त्रिवर्ग का आश्रय है, निसर्ग से ही कमनीय कामिनियों की उत्पादनशाला है, रमणीयता का प्रधान निधान है। जिस धारा नगरी में पाण्डु वर्ण के स्फटिक भवनों की संचित आभा बिखर रही है। सुभद्र और अभिराम तथा अर्जुन (सुभद्रा, राम, अर्जुन) को दिशाओं का चक्रवाल उत्पन्न कर रहा है और जिसमें मरकतमणि के फर्शों से निगली जा रही है, स्फटिक प्रासाद की भूमि द्वारा विच्छेद की

जा रही है, स्वर्ण सौधों द्वारा जर्जर की जा रही है, नगर की नारी के वदन चन्द्र की ज्योत्सना से पी जा रही है, वातायन (उजालदान) से उठते गूगल के धूप के धुँएँ से घेरी जा रही है, उपवनों द्वारा मानो एकत्र की जा रही है, जयकुंजर (गज) के दाँतों के किरणजाल से मानो छेदी जा रही, हर रात इन्द्रनील मणि के भूमिगृहों (भण्डारों) में मानों अंधकार निधि के समान सुरक्षित रखा जा रहा है।

जिस धारा नगरी में प्रासादों पर लाल मणियों के फर्शों पर फैलती चन्द्रकिरणों मुग्ध नारियों को हर रात सुगन्धित वन भ्रान्ति उत्पन्न करती हैं और जो उल्लसित होती विमल स्फटिक प्रासादों की पंक्ति की कान्ति से त्रिभुवन के पुरातन समस्त नगर निर्माण स्थान का उपहास कर रही है। जो ललचाई नजरो से प्रासादमय इस भुवनतल को देख रहे हैं। यह महलों की नूतन सृष्टि है, विधि की यह मानो दीर्घिकामय धरा है, दिशाओं का समूह मानो उपवनमय है, लोगों को ऐसा लगता है मानो गगन का प्रांगण पताकायमय हो गया है।

हर रात चन्द्रमा की किरणें मानों स्फटिक की फर्शों पर अस्त हो रही हैं, मरकतमणि के प्रांगणों में पी जा रही है, लालमणि के भवन की वेदिका के कलशों के मध्य सन्ध्या की जलधारा बरसा रही हो, काले गूगल के धूप के धुँएँ से श्यामल स्फटिक के वातायनों में हरिण की छाया सहित लग रही है, छत की चन्द्रमणि की नालियों में बहती सी दिखाई देती हैं - हर रात चन्द्रमा कि किरणें।

जिसमें प्रतिदिन सूर्य की किरणें सोने के कंगूरों पर अंकुरित होती सी, स्वर्णध्वज दण्डों पर काण्डों (गाँठ) के समान, लालमणि के भवन शिखर शिखाओं पर पल्लवित होती सी, स्वर्णहंसपालियों पर लालमणियाँ पुष्पित होती सी, चमकते स्वर्ण प्रासादों के स्वर्ण काण्ड के पिण्डों पर फलित के समान स्फटिक के पाषाणों की दीवारों पर गिरकर धरा पर सूर्य की किरणें मिलकर स्थलकमल से दिखते हैं, निर्मल मोतियों से बनी वेदिकाओं पर गिरकर लौटती सूर्यकिरणें कुमुद के फूल सी लगती हैं, चन्द्रशिलाओं पर गिरकर इन्द्रनीलमणि सी लगती हैं, मूंगों की क्रीड़ाभवनभूमि पर बालातप (सुबह की धूप) सी लगती हैं, स्वर्णप्रासाद के शिखरों पर उल्लसित होती दीपक सी चमक रही हैं, पन्नों की बनी वलभियों पर बुझती सी लगती हैं, काले गूगल के धुँएँ पर छा जाती सी, नगर की रक्षा के लिए चारों ओर हजारों इन्द्रधनुष

बनाती सी परस्पर प्रतिफलित प्रतिबिम्बित विचित्र भवनमणि की किरण-समूहों से प्रतिदिन सूर्य कि किरणें अनोखे दृश्य उपस्थित कर रही हैं।

जिसमें समुन्नत प्रासादों पर निवास करती नारियों के मणियों से बने कंगन अपने झंकार से संगीत की ध्वनि को सुनकर चकित हिरण जाने को आकुल हो जाता हर रात चन्द्रमा। उनमें ही नाचने में अस्थिर (क्षुब्ध) ऊँची होती भुजलताओं के मणियों के कंगन की किरणों की डोरियों के बन्धन से थका सा अनुभव कर रहा है मृगलाञ्छन चन्द्रमा।

निरन्तर बुलाते सैकड़ों यज्ञों की अग्नि से उठते प्रचुर धुँएँ से साँवले गगन से उठते पर्वत की ज्वाला से जटिल क्षितिज से आते देवताओं से बँधे मेघों का आडम्बर। कहीं निरन्तर धर्म कर्म लीन श्रेणियों की मंडली द्वारा पाठ किया जाता, खिल सहित वेद ध्वनि का वातावरण। कहीं समस्त पुराण, इतिहास, श्रुति, स्मृति की व्याख्या से ब्रह्मलोक सा लगता है। कहीं यौवन मद से उन्मत्त कामिनी के चरण के आलते से पाटल (गुलाब के फूल) खिलाते से स्फटिक के फर्श पर स्थल पर भी जलकमल की शंका उत्पन्न करती, घर घर निरन्तर संगीत की प्रवृत्ति, गम्भीर नाद के कारण अत्यन्त सघन नीलकुसुम वाहिका को वृक्षों से भवन के श्यामल आँगन के कारण मयूरों के ताण्डव के पाण्डित्य का प्रदर्शन, प्रेम कहल से क्रुद्ध कामिनियों को प्रसन्न करने के उपाय में चतुर दूतियों की विभिन्न हरकतों का उपदेश देती, प्रियतम के पास जाने को व्याकुल मृगनयिनों की अलंकार व्यवस्था करने को सखियों को उत्सुक करती सी यह धारा कामलोक निर्मित करती सी लगती है। भोगी भुजंगों (लम्पटों) के द्वारा कहीं पाताल लोक का आचरण हो रहा है और कहीं सूर्य की ओर जाते पवनों से स्वर्गलोक का आचरण हो रहा है।

जहाँ केनागरिक प्रभंजन (आँधी) के समान सक्षम, सागर के समान तापरहित, पौलस्त्य के समान हैं जिसकी बस्ती को विभीषण (भीषणता) ने त्याग दिया, गहन अमावस्या की रात्रि के समान है। जिसमें विधुर-विरह (विधु नहीं) हैं और चन्द्र-सूर्य का सहयोगी होकर रात में गायब हो गया। वसन्त के समान है जिसमें कचनार की शोभा है क्योंकि काँचन से शोभित है। ग्रीष्म के समान श्वेत व पवित्रता उसमें है। वर्षा काल के समान यहाँ (उग्रकर उग्रता का सूर्य) नहीं दिखता। शरत् काल के

समान यह निर्मल अम्बर (कपड़े और आकाश) में रुचि रखता है। हेमन्त ऋतु के समान सदा (समहिम) शीतल या महिमायुक्त रहता है। शिशिर के समान सदा तापरहित है। यह मधुमय होकर भी अशोक (वृक्षवाला) है। सरल होकर भी अरिष्ठ (अरीठे) और नीम है। यह सु-ग्रीव होकर भी सुमित्रानन्दन (लक्ष्मण और मित्रों को आनन्दित करने वाला) है। विरोचन (बालि का पुत्र) होकर भी अमृतमय (चन्द्रमा) है। परमेश्वर होकर भी अनुज है। भूताधिपति होकर भी वक्रनहीं है। मुक्ता (मुक्त और मोतियों वाला) होकर भी समस्त रत्नों से अलंकृत है। समस्त व्यवहारों में कुशल हैं यहाँ के नागरिक और यह धारा नगरी ऐसे प्राकार (परकोटे) से घिरी है जो हिमालय पर्वत के समान हिमधवल है, रावण के समान है जहाँ चन्द्रमा भी फिसलता है। विन्ध्याचल के समान तपन (सूर्य और गर्मी या कष्ट) का मार्ग रोक दिया है। सब दूर से विचित्र मणियों की कान्ति की किरणों से घिरा है अपना तट का आभोग (कण या क्षेत्र)। पुरी की रक्षा के लिए जिसने मानों प्रत्यंचा चढ़ा रखी है। इन्द्रधनुष के समान छा जाते हैं या सर्वत्र मण्डल (राज्य के विभाग) से युक्त है। विस्तृत घने कपाटों से शोभित अनेक हजार लोगों से भरी हुई है। पुरी देखने के कौतुहल से दिशा दिशा से आते पर्यटकों के समान चारों प्रतोलियों (पोलों से युक्त तीनों लोकों में अनुपम आकार के प्राकार से घिरी है यह धारा नगरी)।

यह नगरी कहीं समुन्नत कंगूरों के सिरों से छलकते पुष्पराग (पुखराज) की किरणजाल से सम्पन्न दिन की कान्ति के कारण यहाँ चकवे के जोड़े बिछुड़ते नहीं हैं और सदा पुष्पित रहते हैं कमलसमूह। कहीं प्राकार के नीलमणि की कान्तिसमूह के सघन अन्धकार से उत्पन्न रात्रि के भ्रम से सदा खिले रहते हैं नीलकमल के वन। कहीं लालमणियों से निर्मित शाला की अटारी की किरणों स्पर्श वाले जल से धुलते पुरनारियों के स्तनकलशों के कुंकुम की लालिमा सी लगती है। कहीं स्फटिक शाल के वलय के प्रतिबिम्बित से नगरी देखने के कौतुहल से निकलती सी परिखा से घिरी है।

इस नगरी के तालाबों के जल खिले कमल, कुमुद, कल्हार (कनेर), इन्दीवर (नीलकमल) के परागपुंज से पीला जल सज्जनों के मन के समान अत्यन्त स्वच्छ हैं। दुर्जन के मनों के समान गहरे हैं, उद्दण्ड (ऊँची डंडी वाले) पुंडरीक खण्ड पर उड़ते

भ्रमरों के मधुर झंकार मन हरण करते हैं। क्रीडास्नान करती नागरियों के कुचलश से गले चन्दन से गले चन्दन से मस्त सुरभि, सुगन्धित गन्ध से लुब्ध भ्रमर श्रेणि से श्यामल हैं तट प्रवेश, स्फटिक मणि की शिलाओं पर स्नान के लिए आर्यों नगर नारियों के प्रतिबिम्ब से जलक्रीडा के लिए डुबकी लगातीं पाताल कन्याओं से अधिष्ठित सी। हर रात कामालस से चकवियों द्वारा प्रियतम के भ्रम से साभिलाष अपना प्रतिबिम्ब देखती सौं। खिले कुमुद के कोश के गड्ढे में छिपे भ्रमर के कारण सूर्यकिरण के डर से क्षीण अन्धकार पर आश्रित के समान। स्थलकमालिनी की पंखुड़ी की छाया में छिपी हंस पंक्तियाँ हैं जो सूर्य के मर्दन से डरी हुई खिले कुमुद की कान्ति सी ज्योत्स्नाओं द्वारा टुकड़े सेवन कर रही है। गहरे स्वच्छ जल से दिखते सफर (छोटी चमकीली मछली) वाले घास की कामना से बार बार दिये जाते विफल फलों से उसकी अप्राप्ति से ठगाते मोहित बगुले के समूहों से सेवित, विषाण (विषसहित) होने पर भी अमृत का स्वाद देते, प्रवृद्ध होने पर भी समकर (बराबरी या मगर वाला) चिह्न है। कमल सहित होने पर भी अकमल (पाप पीड़ा रहित) हैं। द्विधा (दोहरे) होने पर भी शतपत्र (कमल) वाले हैं। द्विधा होकर भी (सोम) सवन (वन सहित) है। द्विधा होकर भी कुवलय (नीलकुमुद) से मनोहर हैं। द्विधा होकर भी विस्तृत हैं। कहीं उन्नत दण्डी के पुंडरीक (श्वेतकमल) के खण्डों से हैंसते से, कहीं तेज हवा से हिलते ऊँची डंडी के लाल कमल से नाचते से, कहीं लहरों से घिरे खिले नीलकमल की भौंह चलाते कटाक्ष के तीर फेंकते से, कहीं अधिक लहरियों से टकराने से जर्जर जल से मसली बूंदों के सार से धूल बनाते से, कहीं दोनों ओर से भूतालिया के सघन वायु से टकराती तरंगों की ऊँची ध्वनि से रहते से-इस प्रकार उन्नत की चेष्टा करते से तालाब हैं।

और जिस धारा नगरी में नागरिकों के मन मदमत्त हो रहे हैं। उसमें क्रीडा-पुष्करिणी (पोखर), वीरविलासोद्यान आदि अनेक मनोरंजक रमणीय निर्मितियों में नन्दनवन में निर्मल मणियों से निर्मित सीमान्त भित्तियों पर प्रकट होती मूर्तियों द्वारा सूर्य की धूप के डरते के समान अत्यन्त कोमल शरणागतों को भीतर प्रवेश कर प्रवेश करते से उपवन के पेड़ों को देख सकते हैं। सहस्रों धाराओं के गिरने से जन्मते आसपास सरक आते शीतलता छोटे के टूट जाने के भय से दूर से ही प्रवेश करते



लोगों का हर दिशा में उत्थान करता सा, ऊपर टंकित बनी वेदिकाओं के सब तरफ फरफराती मरकतमणि कान्तियों से दूर से ही समस्त लोक के सन्ताप करने वाले सूर्य के तेज से बचने के लिए आकाश में मानों मेघसमूह बनाते से नीलमणि से निर्मित दोनों ओर के द्वार के प्रतिबिम्ब से वन के पत्तों के बहाने प्रवेश करते लोगों के सन्ताप के ज्वलन को ढककर बाहर स्थापित करते से लगते हैं। हरकत करतीं मणिनिर्मित यन्त्रपुतलियों पुरातन विधाता के त्रिलोक में सृष्टिप्रपंच का उपहास करतीं सी लगती है। मानों वरुण का विश्रामघर है, शिशिर का संकेतसदन है, हिमालय के देवताओं की मंगलस्थली है। ग्रीष्म की गर्मी को अस्त करने का स्थान है। मरककेतु का विलासमन्दिर है। शृङ्गार सागर का मानों क्रीड़ागार (खेसघर) है। बरसात का मानो प्रवृत्तिस्थान है। व्युत्पत्ति (ज्ञान और प्रतिभा) की मानो उत्पादन मंडी है। रमणीयता का मानो सर्वस्व है। विदग्धता (दक्षता) का विलासमणिदर्पण (काँच) है। विलास का वाहनभवन (गैरेज) है। अत्यन्त शीतल होने से लगता है मानो कपूर के चूरण से बनाया गया है, हिमानी (बर्फ के ढेर) से बना है, चन्द्रमा के खण्ड से सम्पन्न किया गया है। सुगन्धित जल से उत्पन्न अत्यन्त सुरभि के कारण मौलसिरि के पुष्पामोद से उत्पन्न किया गया। कक्कोल फल के चूरण से मानो बनाया गया, लौंग के फूल से क्षेत्र मानों तैयार किया गया। इलायची के रस से मानो धार बनी। सब दूर फैली हजारों जलधाराओं से विधाता की जलमयी सृष्टि का प्रदर्शन करती, सूर्य किरणों के लिए अगम्य, सन्ताप का जहाँ प्रवेश नहीं है, विरहियों की सन्ताप स्मृतियों का निर्माण जहाँ नहीं होता, विरहणियों के विरह के दावानल जिसे देख भी नहीं सकता, शीतलता का भी शीतल उपचार का स्थान, सुखों का भी सुखघर, रमणीयता का भी रमणीय, हर तरफ से उठते परस्पर टकराते फैलते जलों की हजारों धाराओं को चारों ओर से उछालते छींटों की बहुलता से कपूर का चूरण मानो विभिन्न दिशाओं में फेंक रहे हैं। चन्द्र (कान्त) मणि से निर्मित जलयन्त्र की पुतली से चूने-टपकने वाली चांदनी सा फैलाता बर्फ समूह सा लगता है। खिलते कमल के भार से भग्न के ऊपर कमलिनी के मृणाल के टूटने से निकले विसन्तु (धागे) जैसी सैकड़ों धाराएँ धारण कर रही है। प्रत्येक स्तम्भ के सिरे के पट्टे पर की सालभञ्जिकाओं या पुतलियों के आपसी सुगठन के कारण, समुचित स्थान के कारण, सघन सन्धिबन्धन के कारण

विभिन्न रत्नों से निर्मित होने पर भी एक रत्न के एक पत्थर से निर्मित सी, मानों धरती से प्रकट होती सी बनावटी होने पर भी कृत्रिम सी न दिखाई देती सी, वृत्ति का निधान, जलधारा-लता की उद्गम भूमि, भुवनलक्ष्मी का आवासभवन, प्रमोद का प्रमदवन (उपवन), खिले स्वर्ण कमल के कोश के भीतर से निकलती किरणों से परिवेष्टित प्रतिमा, जलधाराओं से कुंकुम रस समूह बनाता सा, लालमणि के पट्टे तट की अनवरत कोमल धारा की परम्परा से आसपास लटकता सा प्रकट करता, उछालकर जलधारा का प्रकट मोटी निरन्तर पड़ते जलकण से अन्य के समान उत्पन्न करते से, मरकत मणि की कान्ति से श्यामल आकाश से पुतले के द्वारा बजाये जाते मृदंग या ढोल से प्रकट धीमी मधुर ध्वनि के साथ सतत गिरती जलधारा से अन्धकारित दिशाओं के कारण उत्पन्न मेघ भ्रमों से पंख खोलकर उपवन के मयूरों का नर्तन करना, नीलमणि के कान्तिसमूह में मिला काले गूगल के धूप के धुएँ जैसी जलधाराएँ प्रकट करना, यन्त्र पुतली की हथेली से उठती हुई, जलधाराओं से त्रिलोक की विजय के लिए आतुर कामदेवरूपी राजा की हजारों प्रत्यंचाएँ बनाते हुए पूर्णिमा के चन्द्रमण्डल को समस्त लोक के नेत्र रूपी नीलकमल का, काम के वारुण (फंदा) अस्त्र का घर, इन्द्रिय समूह का निवृत्ति क्षेत्र, सुख की खदान, आनन्द का घर, सुन्दरता का मन्दिर है। कहीं खिली बनावटी कमलिनी के मध्य बैठी धवल मणियों से निर्मित मुग्ध हँसनियों द्वारा घूमती जलधारारूपी बिसधारा को मुँह से काटी जाती सी लगती कहीं क्रीड़ा-सारिका (मैना का खिलौना) द्वारा प्रसन्न शोभित भुजलताओं द्वारा मणियों की यन्त्र पुतलियों द्वारा नचाती सी लगती है। कहीं खिले सुगन्धित नीलकमल की कर्णिका (कीड़ा) के समीप नीलमणि से निर्मित गुंजन करते यन्त्र भ्रमर के जोड़ों के गाने जैसा, कहीं दिन में भी चाँदनी के भ्रम से प्यास से ललचाते मनो से खुली चोंचों से उपवन के चकोरों द्वारा, पीते हुए स्फटिक के स्तम्भ की कान्तिधारा को, कहीं पत्र मकरिका (पतरे की मगरी) के नेत्र कोरों से, कहीं नीचे मुख की मयूरी के मुखों से, कहीं मणि की यन्त्र पुतली के दोनों स्तनों से, कहीं डूबती-उतरती स्वर्णपुतली की निचोड़ी जा रही चोंटी के बालों के छोरों से, कहीं मणि निर्मित विलासिनी के नख और मुखों से, कहीं रोते वानर के मुख से, कहीं यन्त्र वृक्ष से बंधे फाल वाले वानर कुटुम्ब के मुख के छेदों से, धरती, भीत के विभिन्न

भागों से, भीत में लगी कमलिनी विमल विसतन्तु के समान कमलिनी के ऊपर से, मणि निर्मित पुतलियों से, स्तम्भों से, स्तम्भ के सिरों से, दो-तीन विसतन्तु मिलकर मोटी धार सब दूर से निकलती, प्रचुर विविध मणि कान्ति के जाल से सहस्रों इन्द्र धनुष निर्माण के लिए आसपास अन्य अनोखा बाँस का वन उत्पन्न करता सा, मुरकत मणि स्तम्भ से उगते किरण की मंजरी के समूहों से बँधे मेघ के घटाटोप के बीच बची उल्लसित होती प्रचुर लालमणि के किरण रज्जु से के दामन से सम्पन्न नूतन प्रथा से शोभित निरन्तर गिरती सहस्रों धारा से विलसित ध्वनि के साथ अन्धेरा किया जाता क्षितिज वर्षाकाल का आभास देता है। कहीं आँगन की बावड़ी-पोखर आदि में डूबती-उतरती छोटी छोटी शफरी मछलियों द्वारा छला जा रहा है बुगला समुदाय। कहीं डूबते उतरते दिखते छिपते छोटे छोटे यन्त्र के कृत्रिम कछुएँ हैं। कहीं देखने में रस के कौतुहल से व्याकुल मछुआरिनों द्वारा अगला कदम नहीं रखा जा रहा है अपने ऐसे चरणकमल वाली वे बड़े त्रास के साथ देख रही हैं जल पर उभरते यन्त्र के मगर को। कहीं भीतर स्थित भीत में लगी कमलिनी की कलियों के विकास के लिए प्रातःकालीन हल्की धूप के खण्डों के समान लाल मणि के किरण जाल को फेंका जा रहा है। आपस में मूर्तियों के प्रतिबिम्ब के कारण एकत्र होकर भार उठाते आपस में कल्पित सहारा देते स्तम्भों से जिसका मध्य भाग टिका हुआ है। अत्यन्त मनोहरता से कुतूहल भरे हृदयों से मानों एकटक दृष्टियों से सब तरफ भार उठाये पुतले इस दृश्य को देख रहे हैं। अनोखे गायन, वादन, नर्तन करते यन्त्र से चलते पुतले अच्छे अच्छे जानकारों के चित्र में भी भ्रम पैदा कर देते हैं। ऐसे अनोखे यन्त्र देखने से भ्रमित चित्त वाले भीत में लगे विकसित श्वेत कमल के बहाने उन अति चतुर दर्शकों का भी उपहास करते से लगते हैं। कस्तूरी के गाढ़ लेप, कपूर के चूर्ण की बालू के तट पर उतरते अच्छे चन्दन के रस सुरभित मूँगे की मंजरी से लिपटी इन्द्रनील की किरणों से कमलिनी के वन जो आसपास परिसर में क्रीड़ानदी वाले यन्त्र धारा गृह नागरिकों के मनो को उन्मत्त कर रहा है।

और जिस नगरी में निरन्तर अत्यन्त नीलिमा की काली छाया से अगणित सूर्यकिरणों से अन्धकारों से युक्त है। निरन्तर धरती को भेद कर निकलते नये पत्तों से सदा नगर की विवाहित प्रौढ़ाओं को देखने का प्रकट होते अनुराग के वृक्षों से

अलंकृत, मधुर मधुर झंकार के कोलाहल के बहाने कामदेव के विजयराज्य की घोषणा करता सा फूल चुनता सा इधर उधर विचरण करती पुरनारियों से उपवन ऐसे लगते हैं मानों वनदेवता निरन्तर वहीं रहते हैं।

इस प्रकार राजा भोज की शृङ्गारमञ्जरीकथा में धारानगरी का अलंकार पूर्ण वर्णन कर रचयिता ने स्वचरित वास्तुशास्त्र के ग्रन्थ समरांगण-सूत्रधार में वर्णित नगर विन्यास का ललित उदाहरण प्रस्तुत कर दिया। कौटिल्य, वराहमिहिर, विभिन्न पुराण आदि की व्यापक परम्पराओं में देश-कालानुसार परिवर्तन-संशोधन होता रहा है। उसी क्रम में राजा भोज का व्यापक प्रयास सराहनीय है। शूद्रक ने अपने मृच्छकटिक में वसन्तसेना के भवन के भीतरी कक्षों का जो वर्णन प्रस्तुत किया है वह दूसरे प्रकार का है। भोज ने तो युक्तिकल्पतरु, समरांगणसूत्रधार, शृङ्गारमञ्जरीकथा आदि के साथ ही अपने ज्योतिषीय ग्रन्थों में भी वास्तु सम्बन्धी संकेत दिये हैं। भोज के बाद की अपराजितपृच्छा में भी उसी प्रवाह का यथोचित पालन किया गया है। भारत की प्राचीन विभिन्न आकार की बस्तियों में इन शास्त्रों के नियमों को साकार देखा-परखा जा सकता है अब भी। उनमें से कतिपय मूल ग्रन्थों के विवरण यहाँ दिये जा रहे हैं।

## सप्तम पर्व दुर्ग एवं नगर स्थापत्य

विभिन्न प्राचीन ग्रन्थों में दुर्ग एवं नगरव्यवस्था के यथोचित विवरण प्राप्त होते हैं। द्वन्द्व अथवा दुर्ग व्यवस्था भारतीय ही नहीं विश्व सैन्यव्यवस्था का महत्वपूर्ण अंग रहा। राजा भोज का कहना है कि वास्तव में राजा का बल कोई बल नहीं, द्वन्द्व ही बल है। कम शक्ति का राजा भी द्वन्द्व बल से अधिक बलवान् के सामने स्थिर रह सकता है। परकोटे में सुरक्षित धनुर्धर एक अकेला सैनिक बाहर के सौ लोगों से लड़ सकता है और सौ लोग दस हजार से लड़ सकते हैं। इसलिए दुर्ग महत्वपूर्ण है।

दुर्ग दो प्रकार के होते हैं - अकृत्रिम और कृत्रिम। राजा भोज ने अपने युक्तिकल्पतरु में विवरण देते हुए बताया है कि अकृत्रिम अथवा प्राकृतिक दुर्ग शत्रु राजाओं के लिए दुर्लब्ध होता है। यह ईश्वर निर्मित होता है, प्राकृतिक होता है। पर्वत, नदी आदि से सुरक्षित होता है। समुद्ररक्षित भी हो सकता है। मैदानी क्षेत्र में शत्रुओं द्वारा दुर्गम बनाने के लिए दुर्ग को समुन्नत दृढ़ प्राकार और परिखा से घेर कर बनाते हैं। राजा अपनी राजधानी ऐसे अकृत्रिम दुर्गों पर बनाते हैं अथवा ऐसे दुर्गों में सुरक्षित बनाते हैं। नगर के चारों ओर परकोटे और परिखा अथवा खाई के अवशेष आज भी कई प्राचीन नगरों में देखे जा सकते हैं। ये मिट्टी, पत्थर, ईंट के हो सकते हैं। जहाँ जो वस्तु सुलभ हो उससे बनाते रहे। मिट्टी के दुर्ग सर्व प्राचीन हैं। इन दुर्गों में

बुर्जे बनाई जाती थीं। प्राचीन काल में चौकोर बुर्जे बनाई जाती थीं। परन्तु तोपों का जबसे उपयोग होने लगा तब से गोलाकार बनायी जाने लगी। ताकि तोप के गोले दागे जाने पर दीवार टूटें नहीं और वे फिसल जाएँ। प्रायः बस्ती इस परकोटे में ही बसाई जाती थी। आजकल कई नगरों-कस्बों में प्राचीन परकोटों के अवशेष अथवा द्वार पाये जा सकते हैं जो अब बस्तियों के आकार बढ़ते जाने के कारण दबते या नष्ट होते जा रहे हैं। प्राकृतिक दुर्ग अत्यन्त समुन्नत सिर वाले, अत्यन्त उन्नत भूमि पर, दुर्गम, वन से घिरा होना चाहिए। उसमें जलाशय पर्याप्त हों और पर्याप्त भोजन सामग्री होनी चाहिए। इस पर्वत दुर्ग से निकलना सरल होता है। नगरी और चौड़े पाट वाली नदियाँ चारों दिशाओं में उस क्षेत्र को घेर रखे। ऐसे क्षेत्र के मध्य जो क्षेत्र होता है वह नदी दुर्ग कहलाता है। चिरकाल से जिस क्षेत्र में दुर्गम वन होते हैं वह वन दुर्ग होता है। उस दुर्गम वन में बनाया जाता है वन दुर्ग। इनमें क्रमशः पहले पहले वाले श्रेष्ठ दुर्ग होते हैं - पर्वत, नदी, वन आदि।

जिस राज्य में न पर्वत हो, न गहरे जल की नदी हो वहाँ राजा कृत्रिम या बनावटी दुर्ग बनवाएँ। इस किले के चारों ओर परिखा या खाई हो। वह इतनी गहरी, चौड़ी और जलभरी हो कि हाथी पार न कर सके। उसमें बहुत से जलजन्तु हों। आसपास विशाल शाल वृक्ष हों, काँटेदार सघन झाड़ियाँ हों। नीचे की ओर पक्का बाँधा गया हो। उसमें खोहें गुफाएँ हों जिनमें से थोड़ा थोड़ा पानी झरता रहता हो। शत्रुवर्ग के लिए उसे पार करना कठिन होना चाहिए। हर तरफ परिखा बनाकर कन्दराएँ बना देनी चाहिए। उस जल के प्रवाह से जलदुर्ग हो जाता है। इनके अभाव में निचले भूपदेश के बन्धन से वर्षा का थोड़ा पानी जाने पर भी जल दुर्ग हो जाता है। इन दोनों के मिश्रण से संमिश्र द्वन्द्व बना लें। कृत्रिम किले में रहते हुए किसी भी दिशा में बलवान् शत्रु को भी वश में किया जा सकता है। यदि शत्रु रथ वाला हो तो जल में दुर्ग बनाएँ। वह हाथी-घोड़े वाला हो तो भी जलदुर्ग बनाएँ। शत्रु दोनों प्रकार का हो तो पर्वत दुर्ग बनाएँ।<sup>1</sup>

राजा भोज ने अपने सुप्रसिद्ध वास्तु ग्रन्थ समरांगणसूत्रधार (दशम अध्याय) में बताया है कि पुर के अन्तर्गत दो घण्टामार्ग बनाएँ जो गुण और प्रमाण में राजमार्ग

जैसे ही हों। पूर्व-पश्चिम सत्रह मार्ग और उत्तर-दक्षिण भी सत्रह मार्ग होने चाहिए। घण्टामार्ग (रिंग रोड जो नगर के चारों ओर हो) के बाहर घण्टामार्ग के बराबर सब तरफ वप्र या प्राकार (परकोटा) होना चाहिए। महारथ्या या महामार्ग के बराबर उस प्राकार भूमि के बाहर चौड़ाई-गहराई की दूरी के साथ तीन परिखाएँ होनी चाहिए। परिखा की खुदाई से निकली मिट्टी से उस अपने भूभाग पर परकोटा या वप्र बनाना चाहिए। वह गजपृष्ठ जैसे ढलवाँ होना चाहिए। इसे बैलों द्वारा खूब खूँदा जाए जिससे मिट्टी जम जाए। वप्र निर्माण से जो मिट्टी बचे उससे निचली भूमि भर कर समतल कर देना चाहिए। इस प्रकार तीनों परिखा बनाकर आसपास पत्थरों या ईंटों से दृढ़ तलभूमि बनानी चाहिए। आव के पानी या लाये हुए पानी से भरी परिखा विभिन्न प्रकार के कमलों से सुन्दर हो। पानी का उसमें संग्रह भी हो और बहाव भी हो। सब तरफ फूलदार पेड़ों के बगीचे हों। सब ओर बाहरी भाग पेड़ों की जड़ों, लताओं और काँटों से घिरा हो। वप्र के ऊपरी मध्य भाग में मोटे पत्थर चुन दिये जाएँ या फिर पकी ईंटें लगा दी जाएँ। बड़ा बारह हाथ, मध्यम दस हाथ और छोटा आठ हाथ का हो। ऊँचा सत्रह हाथ का बड़ा हो, मध्यम पन्द्रह और तेरह हाथ का कनिष्ठ होता है। न वह सत्रह से अधिक हो, न तेरह से कम हो। युग्म (4, 8 आदि) हाथ का नाप भी न हो। हाथ में दो अंगुल की चौड़ाई से मूल में बारह हाथ चौड़ाई होती है। चार हाथ ऊँचा तथा सिरे पर दस हाथ चौड़ा, एक हाथ ऊँचा कंगूरा और दो हाथ काण्डवारिणी। चारों दिशाओं में प्राकार से अट्टालिका या ऊँची बुर्जे हों। चौकीदारी के लिए प्राकार की ऊँचाई और विस्तार के अनुरूप दुमंजिली चरिका या होदियाँ हों। होदियाँ मीनार के समान ऊँची विचरणलायक, चढ़ने में सुविधाजनक हो। उसमें वेदिका, चढ़ाव, कंगूरे आदि भी हों। नगर में चारों ओर तीन तीन द्वार हों जिससे जुड़े होने चाहिए राजमार्ग और महारथ्या। राजमार्ग का महाद्वार चौकोर हो। चौड़ाई से नौ, आठ, सात हाथ ऊँचा हो। महारथ्या का द्वार छः, पाँच, चार हाथ ऊँचा और डेढ़ हाथ चौड़ाई में कम होता जाए। प्रत्येक महाद्वार पर प्रतोली या पोल है। इसमें मजबूत अर्गला, इन्द्रनील, कपाट, परिघ हों। राजमार्ग के अनुरूप शाखा हो जो प्रतोली से निकलती हो। यथोचित स्थान पर उपयोग योग्य नदी या पर्वत (निर्झर) के जलाशय हों। जहाँ तहाँ पक्षद्वार या पिछवाड़े बनाने चाहिए। नगर में पत्थर या लकड़ी में छिपाकर दो या

एक हाथ की नालियाँ हों जिनमें पानी घूमता हुआ प्रदक्षिणा करे। शायद यह पीने के पानी की नहरें हों नगर में। ऐसी नहरें आज भी राजस्थान के पाली, जोधपुर आदि में इन दिनों भी देखी जा सकती हैं।

दो छकड़े के समान चौड़ाई से दुगना लम्बा और उल्टा सर्पचक्र हो वह नगर निन्दित होता है। छिन्नकर्णपुर में निवास करती जनता को तस्करों का डर रहता है। अन्य बीमारियों से भी डर बना रहता है। विकर्ण नगर के निवासियों को सब लोगों की निन्दा, शत्रु का स्वामित्व, निस्संतानता और अल्पायुत्व होता है। वज्राकृति वाले नगर में बसने वालों को स्त्री जीत लेती है, विष-रोग हो जाते हैं और विविध भेद हो जाते हैं। सूची मुखाकार नगर में रहने वाले प्राणी सदा नष्ट हो जाते हैं। भूख और बीमारी से परेशान रहते हैं। वृत्त नगर में रहने वाले स्वामी सहित अवनत हो जाते हैं, सब संचित त्याग करना पड़ता है, अल्पायु हो जाते हैं। व्यजन (वीजण या पंखा) की वक्री आकृति के नगर में लोगों के चित्त चंचल रहते हैं, झूठे, अल्पायु और वात या पवन से पीड़ित हो जाते हैं। धनुषाकार नगर के निवासी बहुधा नपुंसक और दुश्चरित्र नारियों वाले हाते हैं। दो छड़के के समान आकार के नगर में रोग, शोक, अग्नि, चोर आदि का डर रहता है। (चौड़ाई से) दुगना लम्बा आरम्भ से असिद्धि देता है। विप्र को भयकारक, जाति-बन्धुओं में फूट डालने वाला, नागरिकों और स्वामी के हाथी-घोड़े नष्ट करने वाला होता है और उसे शत्रु आक्रमण कर भोगता है। दिङ्मूढ (भूलभुलैया) नगर में जनहानि, आग लगना, स्त्रियों द्वारा किये भय होते हैं। वह नगर पूरा नहीं हो पाता है। भुजंगकुटिल नगर में लोग शस्त्र, वायु, पिशाच, अग्नि, भूत, यक्ष, रोग से पीड़ित रहते हैं। पुराणों के अनुसार अप्रशस्त ऐसे नगरों में किसी एक की भी स्थापना नहीं करना चाहिए। जिस नगर के मध्य में देवता निवास करते हैं, चौराहे-चौतरों पर स्थापित हों, उनकी नागरिकों द्वारा निरन्तर पूजा होती रहती हो वहाँ शान्ति रहती है। स्थापत्य चार प्रकार का, चिकित्सा आठ प्रकार की, धनुर्वेद के सात अंग, ज्योतिष ब्रह्मा से लेकर सामान्य लक्षण, उत्पातलक्षण का ध्यान रखने और समाधान करने से उस नगर को ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र नहीं त्यागते हैं।

अब नगर का विभाग बताया जाता है। खेट (खेड़ा), उसका आधा विष्कम्भ,

उसका आधा ग्राम बताया गया है। पुर से एक योजन दूर खेट, खेट से एक योजन दूर ग्राम बताते हैं। ग्राम से ग्राम की दूरी एक गव्यति (दो कोस) हो। विषय में दो कोस से सीमा, उससे आधे से नगर की, नगर से आधी खेट में, खेट से आधी ग्राम में। तीस धनुष (दूरी पर) विष्कम्भ, पुर में दिङ्-मार्गों पर हों। खेड़े में बीस और ग्राम में दस मार्ग बताये हैं। बड़ा राष्ट्र वह है जिसमें 99064 ग्राम हों। पाँच (या बाईस) हजार तीन सौ चौरासी ग्राम (5384/22384) ग्राम का मध्यम राष्ट्र होता है। 1450 ग्राम का कनीय या छोटा राष्ट्र होता है। इन ज्येष्ठ, मध्य और कनीय की आधी, आधी संख्या कर करके प्रत्येक को नौ से विभाजित कर दें। इन विभाजित राष्ट्रों के प्रत्येक भाग में सात पुर बसा दें। इनमें यथावत् जाति, वर्ण आदि बसें हो।

अग्निजीवी स्वर्णकार आदि के साथ ही अन्य काम करने वाले आग्नेय (दक्षिण-पूर्व कोण) दिशा में होने चाहिए। दक्षिण में वैश्य, द्यूत-धूर्त, कुम्हार-तेली, नट-नर्तक के घर हों। सूअर वाले, पशु छेदने वाले, केवट या मछुआरे, दण्डाधिकारी आदि को नैऋत (दक्षिण-पश्चिम कोण) में बसा दें।

रथ और हथियारों में कुशल लोग पश्चिम में हों। विभिन्न कामों के अधिकारी और कर्मचारी, मदिरा वालों को वायव्य (पश्चिमोत्तर कोण) में बसा दें। यतियों के आश्रय, ब्रह्मवत्सों (ब्रह्मचारियों) की सभा, प्रपा, पुण्यशालाएँ उत्तर दिशा में बननी चाहिए। घी और फल के विक्रेता पुर के ईशान (उत्तर पूर्व कोण) में हों। पूर्वभाग में बलाध्यक्ष तथा सेना में राजा के प्रमुख अधिकारी हों। और आग्नेय दिशा में विविध सेना हो। दक्षिण में श्रेष्ठी वर्ग और देश के महत्तर लोग नैऋत्य में हों। कोशपाल, महामात्र, सेनापति या ज्योतिषी, कारीगर, सारथि, केवट आदि पश्चिम में हों। वायव्य दिशा में समस्त सहयोगियों के साथ दण्डनाथों (न्यायाधीशों) को बसाएँ। उत्तर दिशा में पुरोहित, ज्योतिषी हों। ब्राह्मण उत्तर में, क्षत्रिय पूर्व में, वैश्य दक्षिण में और शूद्र पश्चिम में हों। वणिक् और वैद्य को तथा सेना के चारों दिशाओं में स्थापित करें। नगर के बाहर पूर्व में लिंगस्थ और दक्षिण में श्मशान हों।

नगर के लिए जैसे सब दिशाओं का निर्देश किया गया उसी प्रकार ग्राम, खेट और सेना की बसाहट में भी हो। नगर की ओर मुख किये संपूर्णविक और महोदय शुभ हों। सौम्यमुख के लक्ष्मी और कुबेर द्वार द्वार पर हों। राष्ट्र, खेट, ग्राम या पुर को

ये देखें तो वहाँ आरोग्य, अर्थसिद्धि और प्रजा की विजय होती है। यदि ये ग्राम, खेट, पुर या राष्ट्र को नहीं देखते हों तो क्लेश, बन्ध और वध से लोग आपस में हिंसक होते जाते हैं।

समरांगणसूत्रधार के दसवें अध्याय में जो यह विस्तृत विवरण बस्तियों की बसाहट के विषय में दिया गया है वह पारंपरिक के साथ ही युक्तियुक्त भी प्रतीत होता है। प्रश्न उठता है कि नगर या ग्राम बसाने का तरीका क्या है? जनता कहाँ से आयेगी? कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में इस विषय में तथा बस्तियाँ बसाने के विषय में आरंभिक परन्तु मौलिक विवरण (2/9 और आगे) दिया है।

राजा पूर्व स्थापित या नये जनपद में अन्य जनपद के या अपने जनपद के अन्यत्र के लोगों को लेकर बसावें। कृषकों और शूद्रों के कम से कम सौ कुल या पाँच सौ कुल कोस-दो कोस की दूरी पर बसावें। ये आपस में एक-दूसरे की रक्षा के उपाय करें। नदी, पर्वत, वन, गुफा, सेतुबन्ध, शमी, सेमल, दूधवाले पेड़ आदि सीमा पर लगाने चाहिए। आठ सौ ग्राम के मध्य स्थानीय, चार सौ ग्रामों के मध्य एक द्रोणमुख, दो सौ ग्राम के मध्य एक कार्वटिक और दस ग्रामों के मध्य एक संग्रहण ग्राम स्थापित करें। सीमाओं पर अन्तपालदुर्ग और अन्तपाल की देखरेख में जनपद के द्वार स्थापित करें। उनके अन्दर के क्षेत्रों की रक्षा शिकारी, शबर, पुलिन्द, चण्डाल और वनचर करें।

ऋत्विक्, आचार्य, पुरोहित और श्रोत्रियों को दण्डकर मुक्त वंश परम्परा में उपयोग के योग्य ब्रह्मदेय (दान या भूमि) प्रदान करें। गोप, स्थानिक (दुर्ग के चौथे भाग का अधिकारी), गज शिक्षा सम्पन्न हस्ति शिक्षक, अश्व हरकारा को विक्रय या रहन के अधिकार से रहित क्षेत्र दें।

कर देने वाले कृषकों को एक पीढ़ी के लिए भूमि दी जाए। फिर वह राजसात् हो जाए। कमजोर खेतों को कृषि योग्य बनाने वाले कृषकों से फिर भूमि न लें। कृषि न करने वालों से भूमि लेकर अन्य को दे दी जाए या फिर ग्रामसेवक एवं वणिक् उन क्षेत्रों में कृषि करें। कृषि भूमि प्राप्त करने पर भी खेती जो स्वयं नहीं करता, उसकी क्षतिपूर्ति करें। कृषकों को यथावश्यक धान, पशु और स्वर्ण से अनुगृहीत करें। सुविधानुसार वे भी राजा को कृषिफल प्रदान करें। निवासकाल या परम्परानुसार छूट

देनी चाहिए।

खनिजों के केन्द्र, द्रव्य, गजवन, गोस्थान, वणिक् पथ पर आयात निर्यात हेतु जल एवं स्थल वस्तु विक्रय के व्यावसायिक नगर बसाने चाहिए। सेतुबन्ध, उद्यान, पुण्यस्थान बनाएँ या बनाने वालों को शासक भूमि, मार्ग, काष्ठादि उपलब्ध कराएँ। सब मिलकर बनाते समय जो स्वयं कार्य नहीं करता वह मजदूर, बैल आदि से सहयोग करें। निर्मित सेतु, जलाशय के मत्स्य, पक्षी पर राजा या शासन का अधिकार होता है।

अर्थशास्त्र (2/3) में दुर्ग विधान भी दिया गया है। तदनुसार जनपद की चारों दिशाओं की सीमाओं पर युद्धोचित प्राकृतिक दुर्ग बनवाएँ। द्वीप के मध्य, प्राकृतिक परिखा (नदी या खाई) से घिरा औदक दुर्ग होता है। पथरीला या गुहा में स्थित पर्वत दुर्ग, जलरहित तथा ऊपर धान्वन दुर्ग, दलदल और गहन वन में वन दुर्ग होता है। उन दुर्गों में नदी या पर्वत दुर्ग पर अन्तपाल के स्थान, मरु (धन्व) या वन दुर्ग में वनवासी आटविकों का स्थान तथा विपदा में राजा के भागकर छिपने का स्थान होता है। जनपद के मध्य समुदय स्थान और स्थानीय स्थापित करें। इनमें क्रमशः राजकोष होता है और यह आठ सौ ग्राम के मध्य का उपनगर होता है। वस्तु की दृष्टि से प्रशस्त क्षेत्र में नदियों के संगम पर, न सूखने वाले तालाब या झील के मध्य वास्तु के अनुरूप तथा स्थान के अनुसार गोल, लम्बा या चौकोर नगर हो। उसके चारों ओर बहता जल हो। वहाँ स्थल मार्ग व जलमार्ग से व्यवसाय होता हो। उसके सब तरफ दूरी पर तीन परिखाएँ हों जो क्रमशः 14, 12 और 10 दण्ड चौड़ी हो। चौड़ाई से गहराई पौन या आधी हो। उसका नीचे का तीन या चार भाग पत्थर या ईंटों से पक्का बंधा हो। उसमें स्वयंभू या आया-लाया गया पानी हो। उससे जल की निवासी हो। उसमें कमल और मगर वगैरह हों।

उस परिखा या खाई से 4 दण्ड (प्रायः 24 फिट) दूर उस खाई की मिट्टी से 6 दण्ड (36 फिट) ऊँचा मजबूत, ऊँचाई से दुगना विस्तृत (चौड़ा) नीचे चौड़ा तथा ऊपर पतला होता हुआ समतल या घड़े के मध्यभाग के समान वप्र या धूलकोट बनवाकर हाथियों और बेलों से मर्दन कर मजबूत कर दिया जाए। उस पर काँटेदार झाड़ियों और विषलताएँ लगा दी जाएँ। शेष बची मिट्टी से गड्ढे भर दिये जाएँ। उस

वप्र या धूलकोट के ऊपर प्राकार बनवाएँ। उसकी ईँटें चौड़ाई से दुगनी लम्बी हों। उसकी ऊँचाई 12 से 24 हाथ (18 से 36 फीट) हो। उसका मूल तालवृक्ष जैसा दृढ़ हो। ऊपर वह इतना चौड़ा हो कि उस पर रथ आसानी से दौड़ सकें।<sup>1</sup> मृदंग या कपिशिर्ष से उनका शिखर दृढ़ हो या बड़ी बड़ी शिलाओं के प्राकार बनवाएँ। लकड़ी का प्राकार कभी न बनवाएँ। क्योंकि काष्ठ में अग्नि का वास है। प्राकार के ऊपर चौड़ाई के अनुरूप अट्टालक (अटारी या बुर्ज) बनाये जाएँ। उनमें यथोचित सोपान हों। इन बुर्जों की आपसी दूरी 30 हाथ (45 फीट) होनी चाहिए। हर दो बुर्जों के बीच हवादार दुमंजिली प्रतोली (पोल) होनी चाहिए। उसकी लम्बाई, चौड़ाई से डेढ़ गुनी हो। अटारी और पोल के मध्य तीन धनुर्धरों के रहने लायक छिद्रवाले पिधान या छिपाव (आड़) इन्द्रकोश हो। बीच में पास के भाग में दो हाथ चौड़ा और आठ लम्बा देवपथ बनवाएँ। एक दण्ड (छः फिट) या दो दण्ड के अन्तर पर सीढ़ियाँ बनवाएँ। शत्रु द्वारा अप्राप्य गुप्त स्थान पर तीर रोकने वाले आवरण और निकलने के द्वार हों। परिखा से बाहर जानुभंजनी, शूलसमूह, कूप, कूटावपात, काँटेदार लोहरज्जु, अहिपृष्ठ, तालपत्र, शृंगाटक, श्वद्रंष्ट्र, अर्गला, उपस्कन्दन, पादुका, अम्बरीष (भ्राष्ट्र्यन्त्र), उदपान (दूषित जल) के पच्छन्न पथ निर्मित कर दें। प्राकार के दोनों ओर डेढ़ दण्ड (9 फिट) मेषाकार स्थान छोड़कर प्रतोली (पोल) के छः खम्भों के मध्य द्वार बनावें। यह पाँच से आठ दण्ड तक चौकोर तथा उसकी लम्बाई से चौड़ाई 1/9 या 1/8 भाग या अधिक हो। पन्द्रह हाथ से प्रारम्भ कर अठारह हाथ तक क्रमशः ऊँचाई हो। खम्भा ऊँचाई से 1/6 स्थूल हो। जितना मोटा हो उससे दुगना भूमिस्थ हो और स्थूलता से चौगुनी चूलिका की ऊँचाई हो।

प्रथम तल का पाँचवाँ भाग शाला, वापी और सीमागृह हो। उसके दोनों ओर दो प्रतिमंच और अन्तरमाणी का छोटा द्वार और हर्म्य (धूल भवन) हो। खम्भों पर प्रथम तल से आधा ऊँचा द्वितीय तल हो। तृतीय तल उत्तमागार डेढ़ या पञ्च दण्ड के द्वार का तृतीय भाग हो। उसके बाजू ईंटों से बनें हों। बायीं ओर प्रदक्षिणाकार सोपान और दायीं ओर गुप्तभित्ति सोपान हों। तोरण (बहिर्द्वार) का सिर दो हाथ का

1. भटिण्डा का दुर्ग, चुनार का किला, चीन की दीवार आदि ऐसे ही सुविस्तृत वप्रों के अवशेष हैं।

हो। किवाड़ों का जोड़ा तीन या पाँच भाग वाला हों। उसमें दो अर्गलाएँ हो। इन्द्रकील लगभग एक हाथ ऊँचा हो। लघु द्वार पाँच हाथ का हो। प्रमुख द्वार चार हाथियों के एक साथ निकलने योग्य चौड़ा हो। द्वार के आधे भाग पर हस्तिनख के समान क्रमशः निम्नोन्नत भूमि बनायी जाए। मुख्यद्वार के समान विस्तृत और संहार्य (हटाने लायक) जलरहित सूखे पथ पर भूमिमय पथ हों। प्राकार के अनुरूप मुख्य द्वार बनवाकर तृतीय भाग में गोह की मुखाकृति सा गोपुर (पुर का प्रवेश द्वार) बनवाया जाए। प्राकार के मध्य वापी (बावड़ी) बनवाकर पुषकरिणी (जलाशय) द्वार बनवाएँ। डेढ़ दण्ड (नौ फिट) के अन्तर पर चतुःशाल बनवाकर बीच में साणिक या बाण चलाने के छेद या मोखे वाला कुमारीपुर बनाया जाए। बिना शिखर का दोतला हर्म्य बनाकर मुण्डक (खुले सिरे का गोल) द्वार बनाएँ या भूमि तथा द्रव्यानुसार ये सब बनवाएँ। चौड़ाई से तिगुनी लम्बी कुल्या (खोलियाँ) बनवाएँ जिनमें भाण्ड (माल ताल, सामग्री) रखी जाए। उनमें पत्थर, कुदाल, कुल्हाड़ी, बाण, काँटेदार गदा (भुषुण्डी), मुद्गर, दण्ड, चक्र, यन्त्र, शतघ्नी, लोहार निर्मित हथियार, शूल, तीखे बाँस के डंडे, उष्ट्रग्रीवी, अग्निसंयोगकारी काष्ठ तथा विषैली वनस्पतियाँ रखी जाएँ।

कौटिल्य के (2/4) अनुसार पूर्व-पश्चिम तीन और उत्तर-दक्षिण के राजमार्ग तीन हों। बाहर द्वार, जलमार्ग, भ्रमणमार्ग और गुप्तमार्ग हों। रथ योग्य रथ्याएँ (सड़कें) चार दण्ड (24 फिट) चौड़ी हों। राजमार्ग, द्रोणमुखपथ, स्थानीय मार्ग, राष्ट्रपथ, विवीत (चारागाह) पथ, संयानीय (बाजार) पथ, व्यूह (सैन्य) पथ, श्मशानपथ और ग्रामपथ आठ दण्ड (48 फिट) चौड़े हों। इन पर भीड़ अधिक रहती है। सेतुपथ और वनपथ चार दण्ड (24 फिट), गजपथ और क्षेत्रपथ दो दण्ड (12 फिट), रथपथ पाँच अरत्ति (पाँच हाथ = 15/2 फिट) पशुपथ चार अरत्ति (6 फिट), क्षुद्र पशु और मनुष्य पथ दो अरत्ति (3 फिट) के हों।

सुदृढ़ राजभवन चतुर्वर्णोपयोगी प्रशस्त स्थान पर बनवाया जाए। उस वास्तु के मध्य से उत्तर नौवें भाग में पूर्व या उत्तरमुखी अन्तःपुर बनवाएँ। उस अन्तःपुर के पूर्वोत्तर में आचार्य, पुरोहित, मंत्रीगण, यज्ञ एवं जलस्थान हों। दक्षिणपूर्व (आग्नेय) में रसोईघर, हस्तिशाला, सभागृह और कोष्ठागार (कोठार) हो। पूर्व में रस, माल्य,

गन्धविक्रेता, प्रधान शिल्पी और क्षत्रिय हों। दक्षिणपूर्व भाग में भाण्डागार (भण्डार), अक्षपटल (आय-व्यय गणना स्थल), कर्मनिषद्य (स्वर्ण-रजत के कारीगर, क्रय-विक्रय बाजार, श्रमिक घर) हों। दक्षिण-पश्चिम भाग में सोना-चाँदी के सिवाय वस्तु भण्डार और आयुधगार हो। उससे आगे (दक्षिण में) नगर के धान्य क्रय-विक्रय व्यापारी, कर्मशालाधिकारी, सेनापति हों। पका अन्न, सुरा, माँस विक्रेता, गणिकाएँ, नट एवं वैश्य-निवास हों। दक्षिण पश्चिम दिशा में गर्दभ-ऊँट के स्थान, कारागार, कर्मशाला हो। पश्चिमोत्तर भाग में यानशाला, रथशाला हो। पश्चिम दिशा में ऊन का काम करने वाले, जुलाड़े तथा बाँस, चर्म, वर्म (कवच, ढाल), शस्त्रावरण (म्यान) आदि बनाने वाले शिल्पी और शूद्र निवास करें। उत्तर-पश्चिम दिशा में दुकानें, चिकित्सालय, औषधिशाला, उत्तरपूर्व भाग में कोश, गो तथा अश्व हों। उससे आगे उत्तर में नगरदेवता, राजदेवता, लौहमणि के शिल्पी और ब्राह्मण बसें। वास्तु रहित अनिर्मित स्थानों या बाड़ों में श्रेणी, विदेशी व्यापारी के समूह बसें। नगर के मध्य अपराजित (दुर्गा), अप्रतिहत (विष्णु), जयन्त (इन्द्रपुत्र), वैजयन्त (इन्द्र) के कोठे या कक्ष हों। शिव, वैश्रवण (कुबेर), अश्विनीकुमार, श्री (लक्ष्मी), मदिरा (काली या दुर्गा) के मन्दिर बनवाएँ। यथास्थान वास्तुदेवता की स्थापना करें। उत्तर-पूर्वदिक्कम से ब्रह्मा, ऐन्द्र, याम्य (यमसम्बन्धी), सेनापत्य द्वार बनाये जाएँ।

परिखा के बाहर सौ धनुष की दूरी पर चैत्य, पुण्य स्थान, वन, सेतुबन्ध आदि बनवाएँ और अपनी अपनी दिशा के अनुकूल दिग्देवता स्थापित करें। श्मशान के उत्तर या पूर्व भाग उत्तम वर्णों के लिए और दक्षिण भाग निम्नवर्ण के लिए हो। इसका अतिक्रमण दण्डनीय है। पाषण्ड (कापालिक आदि) और चाण्डाल का आवास श्मशान के समीप हो। कर्म और (खेत) क्षेत्र के अनुसार गृहस्थ परिवारों की सीमा निर्धारित हो। अपने काम के स्थल के पास वे बसाये जाएँ। वे राजादेश से उन क्षेत्रों में फल-फूलों की वाटिकाएँ (बाड़ियाँ) लगाएँ और विक्रेय वस्तुओं का संग्रह करें। दस कुल (परिवार) की बाड़ियों के लिए एक कुआ हो।

अनेक वर्षों तक उपयोग के योग्य इन वस्तुओं का संग्रह किया जाए। सब प्रकार के तेल, धान्य, क्षार, लवण, गन्ध, औषधि, सूखा शाक, घास, वल्लूर

(सूखा मांस), तृण, काष्ठ, लौह, चर्म, अंगार, स्नायु, विष, विषाण (सींग/दाँत), बाँस, छाल, कठोर, काष्ठ, प्रहरण (अस्त्र), आवरण, पाषाणसमूह संग्रह किया जाए। नये से पुराने का शोधन न लें। चतुरंगिणी हस्ती, अश्व, रथ, पदाति सेना के प्रमुख अधिकारी नियुक्त किये जाएँ। अनेक प्रमुख होने से परस्पर भय होने से सेना में शत्रु फूट नहीं डाल सकते। इस प्रकार अन्तपाल दुर्ग की व्यवस्था हो। राजा बहिरिक (धुमन्तू या देश हानि करने वाला) लोगों को पुर में न बसाएँ। इन्हें जनपद में हटा दें अथवा इनसे कर लें।

कोषाधिकारी, कोषगृह, पण्यगृह, कोषागार, कुप्यगृह (काष्ठों, वनस्पति का संग्रह), आयुधागार, बन्धनगार बनवाएँ। आर्द्रतारहित वापी खुदवाकर मोटी शिलाओं से चारों ओर तथा तल तक चुनाई कर मजबूत काठ के पिंजरे से युक्त भूमि के बराबर तीन तल का अनेक विधान प्रकोष्ठ वाला ऊपरी मंजिल, मध्य की मंजिल और तल मंजिल हो। उसमें एक द्वार हो और यन्त्र युक्त सोपान और भूमिगृह या सोपान हो। उसके ऊपर दोनों ओर भीतर-बाहर अर्गलायुक्त ईंटों से बना बरामदा हो, विविध द्रव्यों से परिपूर्ण और घिरा कोषागार बनवाएँ या प्रासाद बनवाएँ। माण्डव की चम्पा बावड़ी इसका सुन्दर उदाहरण है। जनपद के सीमाक्षेत्र में आपातकाल के लिए स्थायीकोष वध्य पुरुषों द्वारा बनवाये जाएँ। पकी ईंटों के स्तम्भ और चतुःशाल वाला, एक द्वार तथा अनेक प्रकोष्ठ एवं तलों वाला कठोर बनवाएँ। उसके स्तम्भ खोखलें हों, निकलने के मार्ग हों। दोनों ओर पण्यगृह (मकान) और कठोर हों। उसमें लम्बे और अनेक कोठों से घिरी दीवाल वाला कुप्यगृह (स्वर्णरजत से भिन्न धातु भण्डार) हो। वहीं भूमिगृहयुक्त आयुधागार हो। धर्मस्थ एवं महामात्र सम्बन्धी (न्यायाधीश) और महामात्र सम्बन्धी बन्धनागार हो जिसमें स्त्री-पुरुष के लिए भिन्न भिन्न स्थान हैं और उनके स्वतन्त्र तथा सुरक्षित निर्गम द्वार हों।

सबकी शालाओं को खाई, जलाशय या कूप, शौचालय, स्नानगृह, अग्नि, विषत्राण के उपायार्थ बिल्ली, नेवला आदि द्वारा तथा अपने देवताओं की पूजा से युक्त करवाएँ। कोषागार में वर्षा नापने के लिए एक हाथ चौड़े मुख का कुण्ड स्थापित करें। विभिन्न द्रव्यों के विशेषज्ञ पुराने और नये रत्न, सार, फल्गु (असार) और कुप्य (सोने चाँदी के सिवा धातु) द्रव्य संग्रहीत करें।

इस प्रकार कौटिल्य ने विस्तार से नगर वास्तु पर चर्चा कर प्रायः 2300 वर्ष पूर्व ही भविष्य के लिए इस विषय की चर्चा का पथ प्रशस्त कर दिया था। कौटिल्य से पूर्व बृहस्पति, उशना, महाभारतकार व्यास आदि और मनु ने भी इस विषय की चर्चा की और मार्गदर्शन किया था। वराहमिहिर ने अपनी बृहत्संहिता में वास्तुविद्या (अध्याय 53) और प्रासाद लक्षण (अ० 56) दिये हैं। तदनुसार राजाओं के घर कई प्रकार के होते थे। उनमें से 135×108 हाथ का उत्तम, 125×100 द्वितीय प्रकार का, 115×92 तृतीय, 105×84 चौथा, 95×76 पाँचवा प्रकार बताया गया है। सेनापति का उत्तम घर 74/16×64, दूसरा 67/16×58, 60/12×52, 53/16×46, 46×16×40। मंत्रियों के घर क्रमशः 56, 52, 48, 44 हाथ चौड़े हों। चौड़ाई का आठवाँ भाग मिलाने पर लम्बाई हो जाती है। इसकी लम्बाई और चौड़ाई से आधे भाग के परिणाम के रानिघर होते थे। युवराज का घर 80 हाथ चौड़ा 6-6 हाथ कम होते उसके अन्य प्रकार होते थे। चौड़ाई का तीसरा अंश मिलाने पर लम्बाई होती थी। इनसे आधे आकार के उसके छोटे भाइयों के घर होते थे। राजा और मंत्री के घरों में जो अन्तर हो वही सामंत और श्रेष्ठ राजपुरुषों के घरों के हों। राजा और युवराज के घर के अंतर हों वही भेद कंचुकी, वेश्या या नाचने-गाने वालों के घरों के हो। समस्त अध्यक्ष और अधिकारियों के घर का परिणाम कोशगृह और रतिगृह का आकार एक जैसा हो। युवराज और मंत्री के घर में जो अंतर हो वही कर्माध्यक्ष और दूतों के घर का परिणाम हो। ज्योतिषी, पुरोहित और वैद्यों के घर 40 हाथ चौड़े हों। 4-4 हाथ चौड़ाई कम होती जाती है। चौड़ाई का 1/6 मिलाने पर लम्बाई आ जाती है।

घर जितना चौड़ा हो उतना ही ऊँचा हो। एक शालावाले घर की लम्बाई, चौड़ाई से दुगुनी हो। चारों वर्णों के घर बताते हुए कहा गया है - ब्राह्मण पाँच, क्षत्रिय 4, वैश्य 3, शूद्र 2 तथा अन्त्यज एक प्रकार का घर बना सकते थे।

	उत्तम	मध्योत्तम	मध्यम	अधम	अधमाधम
ब्राह्मण	32×35/4/48	28×30/19/12	24×26/9/36	20×22	16×17/14/24
क्षत्रिय	28×31/12	24×27	20×22/12	16×18	0
वैश्य	24×28	20×23/16	16×18/8	0	0
शूद्र	20×25	16×20	0	0	0
अन्त्यज	16×16	0	0	0	0



प्रजा और सेनापति के घर में जो अन्तर होगा वही कोषगृह और रतिगृह का परिमाण होगा और यही अन्तर सेनापति और चार वर्ण के वास्तुमान का अंतरमान ही राजपुरुषों के गृह का परिमाण होगा। राजपुरुष ब्राह्मण हो तो ब्राह्मण वास्तु-व्यास को सेनापति वास्तुमान व्यास से कम करने पर आये मानांक से उसके पाँचों घर बनावें। इसी प्रकार क्षत्रिय आदि अधिकारी के घर बनेंगे। परसव राजतिलक पावें और अम्बष्ठ आदि के घर संकर जाति के नियमानुसार होते थे। अर्थात् उन दो जातियों के घरों की लम्बाई चौड़ाई मिलाकर उसके आधे मान के आधार पर गृहपंचक बनावें। इसी प्रकार सब जातियों के घर बनते हैं। पशुशाला, प्रव्राजिकालय, धान्यागार, शस्त्रागार, अग्निशाला और रतिशाला (बैठक) का इच्छानुसार हो सकता है। परन्तु कोई भी घर सौ हाथ से ऊँचा न हो।

सेनापति के घर और राजा के घर के व्यासांक जोड़कर सत्तर मिलाने हुए दो जगह रखें। एक में 14 का भाग देने पर प्राप्त फल शाखा के भीतर का आकार है और दूसरे का 15 से भाग देने पर जो अंक आवे वही अलिन्द (सोपान सहित आँगन) का परिमाण होगा। वह राजा के लिए है। अन्य जाति के भवनों के भवन और आलिन्दमान राजा और सेनापति के घर के दो-दो व्यासों के योग के साथ सजातीय व्यासांक कम करके उसमें 70 मिलावें। इसे पूर्ववत् क्रम से 14 और 15 से भाग करने पर क्रम से शाला और अलिन्द का आकार निकलता था।

पूर्वोक्त शालामान के तीन भाग की स्थानभूमि भवन के बाहर रखें। इस भूमि का नाम वीथिका है। यह भवन के पूर्व में हो तो सोष्णीष, पश्चिम में हो तो सायाश्रय तथा उत्तर या दक्षिण में हो तो सावष्टम्भ वास्तु कहलाता है। यदि भवन के चारों ओर ऐसी वीथिका हो तो संस्थत कहलाता है। इन सबकी पूजा की जाती है। घर की चौड़ाई के  $1/16$  भाग में 4 हाथ मिलाने पर जितने हाथ हों वे ही घर की ऊँचाई हो। शेष 4 घरों की ऊँचाई क्रमशः 12 भाग करके कम होती है। सब घर के व्यास का  $1/16$  लाभ भीत का परिमाण हो। यह पक्की ईंट के घरों का है। पर काठघर का परिमाण इच्छानुसार हो। राजा और सेनापति के घर के व्यास में सत्तर मिलाकर ग्यारह से विभाजित करने से जो फल हो उतने हाथ उसके मुख्य द्वार का विस्तार होगा। विस्तार जितने अंगुल का हो उतने हाथ ऊँचा हो। द्वार विस्तार का

अर्धद्वार विष्कम्भ होता है। ब्राह्मण आदि अन्य जाति के लोग के गृहव्यास के पचास में 18 अंगुल मिलाने के बराबर उसके घर के द्वार का आकार होगा। उसका  $1/8$  द्वार का विटाकम्भ और उससे ऊँची द्वार की ऊँचाई होगी। जितने हाथ ऊँचा उतने अंगुल चौड़ा। द्वार शाखा के परिमाण से डेढ़ा उदुम्बर का परिमाण है। घर की ऊँचाई के हाथ को 17 से गुणाकर 80 से भाग का फल इसकी नौव की चौड़ाई हो। ऊँचाई से 9 गुनी और 80 से विभाजित हाथ माप अपना दशांश कम करने पर जो बचे वह स्तम्भ के अग्रभाग का परिमाण है। स्तम्भ मध्य चौकोर हो तो रुचक, अष्टास्र हो तो वज्र, षोडसास्र हो तो द्विवज्र, बत्तीस अस्र हो तो प्रलीनक, गोल हो तो वृत्त - ये पाँच प्रकार के स्तम्भ शुभ बताये हैं। स्तम्भाकार को नौ से विभक्त करने पर लब्ध हो उसे वहन है। उसका सबसे नीचे का भाग वहन, अष्टम भाग घटाग्र, सप्तम पद्य, छठा उत्तरोष्ठ, पंचम भारतुला, चौथा तुला, तीसरा उपतुला, दूसरे भाग का नाम अप्रतिषिद्ध और प्रथम का नाम अलिन्द है। यह क्रमशः चतुर्थांश से घटाते जाएँ। भवन के चारों ओर ऐसा वाहन और द्वार सर्वतोभद्र वास्तु होता है। यह राजा, राजाश्रित और देवताओं के लिए मंगलप्रद है। जिस वास्तु के चारों ओर अलिन्द प्रदक्षिणा के क्रम से नीचे तक आवे उसे नन्द्यावर्त कहते हैं। उसके पश्चिम में द्वार नहीं होता। तीन तरफ होते हैं। अलिन्द द्वार के नीचे तक जाय तो उस शुभ वर्धमान के दक्षिण में द्वार नहीं होता। वह वर्धमान है जिसके पश्चिम और पूर्व में अलिन्दन हों शेष दो उठे हुए हों शेष खुला रहे। उस स्वस्तिक वास्तु के पूर्व में द्वार अच्छा नहीं। पूर्व पश्चिम में अलिन्द न हों पर बाकी दो वहाँ तक चले जाएँ उसे रुचक घर कहते हैं। उसमें उत्तरमुखी द्वार अच्छा नहीं। नन्द्यावर्त और वर्धमान वास्तु सबके लिए शुभ है। स्वस्तिक और रुचक मध्यम हैं। शेष वास्तु राजभवनों के लिए शुभ हैं।

जिस भवन के उत्तर में शाला न हो वह हिरण्यनाभ, तीन शाला वाला धन्य, पूर्व में शाला न हो तो सुक्षेत्र। ये सब शुभ हैं। दक्षिण में बिना शाला का चुल्ली त्रिशालक धननाशक होता है। पश्चिम में शाला न हो तो पक्षधन है और पुत्रनाश व वैर करवाता है। पश्चिम व दक्षिण शाला वाला सिद्धार्थ, पश्चिम व उत्तर में शाला वाला दण्ड तथा पूर्व व दक्षिण में शाला वाला वात कहते हैं। पूर्व-पश्चिम शाला वाला घर-गृहचुल्ली, दक्षिण और उत्तर में शाला वाला काच घर कहलाता है।

सिद्धार्थ से धन, यम सूर्य से गृहस्वामी की मृत्यु, दण्डवास्तु से दण्ड और वध, वात से क्लेश, चुल्ली से वित्तनाश, काच से जाति विरोध होता है।

दो प्रकार के वास्तु मण्डल - 81 पद और 64 पद। उत्तर और पूर्व की ओर दस-दस रेखा डालने से 81 कोठे होते हैं। इनमें 48 देवता विराजमान। बीच में तेरह और बारह बत्तीस। 9×9 पूर्व-उत्तर से 64 कोठे बनते हैं। इनसे वास्तु पुरुष होता है। प्रत्येक कोठे में एक देवता स्थापित हो। देवता स्थान के अनुरूप भवन के गुण दोष व्यापक रूप से बताये गये हैं। इसी प्रकार घर की अपनी विशेषताओं और आसपास की परिस्थिति से भी गृहस्वामी का परिवार प्रभावित होता है। यथा गृह का द्वार बिना खोले खुल जाय तो उन्माद रोग होता है। भीतर के गौण द्वारों से मुख्य द्वार विशेष होना चाहिए। घर के पास खैर, आक, आम आदि फलदार वृक्ष नहीं लगाने चाहिए। नागकेसर, अशोक, नीम, मौलसिरी, कटहर, शाला, आदि वृक्ष शुभ हैं। घर के पास मंत्री, ठग, देवमन्दिर, चौराहा नहीं होना चाहिए। बस्ती का प्रधान (चैत्य) वृक्ष, सर्प की बाँबी, गड्ढेदार भूमि, कछुए जैसी भूमि घर के पास नहीं होनी चाहिए। गड्ढे में मिट्टी भरने से कम पड़ जाय तो घर अशुभ। ठीक भर जाए तो मध्यम और मिट्टी बच जाए तो उत्तम होता है। घर सब तरफ से बराबर बढ़ाना चाहिए। अन्यथा अशुभ होता है। गृह के ईशान कोण में देवगृह, अग्निकोण में रसोईघर, नैऋत्य कोण में गृहसामग्री और वायव्य में धन अन्न स्थापित करें। घर में दूधवाले पेड़ की लकड़ी, नीम, बहेड़ा आदि की लकड़ी न लगाएँ। अन्न, गौ, गुरु, अग्नि, देवता के ऊपर तथा बाँस के नीचे न सोएँ। उत्तर अथवा पश्चिम की ओर मस्तक करके नहीं सोना चाहिए।

वराहमिहिर ने पूर्वोक्त वास्तु विद्या (अध्याय 53) के अतिरिक्त (अध्याय 56 में) विभिन्न प्रकार के प्रासादों की भी चर्चा की है। तदनुसार प्रासाद बीस प्रकार के होते हैं - मेरु, मंदर, कैलास, विमानच्छंद, नंदन, समुद्र, पद्म, गरुड़, नन्दिवर्धन, कुंजर, गुहराज, वृष, हंस, सर्वतोभद्र, घट, सिंह, वृत्त, चतुष्कोण, षोडशाश्रि और अष्टाश्रि। इनके लक्षण संक्षेप में इस प्रकार बताये गये हैं।

मरु प्रासाद षट्कोण होता है। बारह भूमिखण्ड होता है, भीतर विभिन्न गवाक्ष होते हैं। चारों दिशाओं में द्वार होते हैं। 32 हाथ का विस्तार और 64 हाथ ऊँचा

होता है। मंदिर प्रसाद षट्कोण, तीस हाथ विस्तृत, दस भूमिकाएँ और शिखरों वाला होता है। कैलास प्रासाद शिखर वाला अट्ठाईस हाथ विस्तृत, आठ भूमिकाएँ और षट्कोण होता है। विमानच्छंद इक्कीस हाथ विस्तृत जाली झरोखेदार आठ भूमिकाओं वाला होता है। नन्दन प्रासाद षट्कोण, छः भूमिकाएँ, बत्तीस हाथ विस्तृत और सोलह अंडों (शिखर) वाला होता है। समुद्र और पद्म प्रासाद गोल होते हैं। आठ हाथ चौड़े, एक शृंग और एक भूमिका वाले होते हैं। गरुड़ प्रासाद गरुडाकृति होता है। पंख पूँछ नहीं होते। गरुड़ और नन्दी दोनों 24 हाथ विस्तृत, सात भूमियाँ और 24 अंडों से युक्त हो। कुंजर प्रासाद गज पृष्ठाकार होता है। मूल से चारों ओर सोलह हाथ विस्तृत होता है। गुहराज कार्तिकेय के आकार का विस्तार 16 हाथ होता है। इन दोनों की वलभी 3-3 चन्द्रशालाओं वाली होती है। वृष प्रासाद में एक भूमिका और एक शृंग होता है। यह बारह हाथ विस्तृत और गोल होता है। हंस प्रासाद हंसाकार होता है। चोंच, पंख व पूँछ भी होती हैं। घट प्रासाद आठ हाथ विस्तृत कलशाकार होता है। इसमें एक भूमि और एक शृंग होता है। सर्वतोभद्र प्रासाद में चारों ओर चार द्वार, अनेक तथा सुन्दर चन्द्रशालाएँ और 26 हाथ विस्तृत चौकोर पाँच मंजिला हो। सिंह प्रासाद सिंह की प्रतिमा वाला बारह कोण का आठ चौड़ा होता है। वृक्ष, चतुष्कोण, षोडशास्र और अष्टास्र अपने नाम जैसे आकार के होते हैं। इनमें काजल जैसा अन्धकार रहता है। मय के अनुसार एक भूमि 108 अंगुल और विश्वकर्मा ने 3.5 हाथ की बतायी। दोनों में भेद नहीं है। साढ़े तीन हाथ या 84 अंगुल में कपोतपालिका जोड़ने से मय के अनुसार हो जाता है। गर्ग, मय, मनु, वसिष्ठ, नग्नाजित् ने भी प्रासाद लक्षण के ग्रन्थ रचे थे।

विभिन्न पुराणों में भी नगरवास्तु सम्बन्धी चर्चा यदा कदा होती रहती है। अग्निपुराण (अध्याय 106) में संक्षेप में नगरवास्तु का विवरण दिया गया है। तदनुसार एक या आधा योजन भूमि अधिगृहीत करने के बाद वास्तुनगर की पूजाकर उसमें प्राकार बनवाएँ। चारों दिशाओं में चार द्वार बनाएँ। नगर में चौड़े चौड़े बाजार हों। नगर द्वार कम से कम छः हाथ (9 फिट) चौड़ा हो जिससे हाथी भी सुविधा सहित गुजर सके। नगर छिन्नकर्ण, भग्न, अर्धचन्द्राकार या वज्रसूचीमुख हितकर नहीं माना गया। एक, दो या तीन द्वारों वाला धनुषाकार वज्रनागाभ नगर शान्तिप्रद

बताया गया है।

विभिन्न पदाधिकारी और भिन्न-भिन्न कर्म करने वाले नगर के निर्धारित क्षेत्रों में ही बसाये जाने चाहिए। नगर के आग्नेय कोण में स्वर्णकार, दक्षिण में नर्तकियों और गणिकाओं के भवन हों। नैर्ऋत्य कोण में नट, कुम्भकार, केवट आदि हों। पश्चिम में रथकार, आयुधकार और खड्गनिर्माता हों। वायव्य में मद्यनिर्माता, कर्मकार भृत्यादि हों। उत्तर में ब्राह्मण, यति, सिद्ध तथा पुण्यात्मा हों। ईशान में फल विक्रेता और वाणिज्य हों, पूर्व में सेनापति, आग्नेय में सैन्यदल, दक्षिण में नारियों को ललितकला सिखाने वाले आचार्य और नैर्ऋत्य कोण में धनुर्धर सैनिक हों। पश्चिम में महामात्य, कोषपाल और कारीगर, उत्तर में दण्डाधिकारी, नायक और द्विज, पूर्व में क्षत्रिय, दक्षिण में वैश्य, पश्चिम में शूद्र तथा अन्य विभिन्न दिशाओं में वैद्य, अश्व एवं सेना हों। पूर्व में गुप्तचर, दक्षिण में श्मशान, पश्चिम में गाय बैल, और उत्तर में कृषक हों। म्लेच्छों को दिक्कोणों में बसाएँ या उन्हें ग्रामों में बसाएँ। पूर्व द्वार पर लक्ष्मी और कुबेर हों। मन्दिर दक्षिणाभिमुखी न हो। इन्द्र-विष्णु आदि के मन्दिर नगर रक्षार्थ बनवाएँ। देवशून्य बस्तियों या दुर्ग में पिशाच का वास होता है और वहाँ रोग होते हैं।

वास्तु के पूर्व में शृंगार कक्ष, आग्नेय दिशा में रसोईघर, दक्षिण में शयनघर, नैर्ऋत्य में शस्त्रागार, पश्चिम में भोजन घर, वायव्य में धान्य, उत्तर में धन, ईशान में देवगृह हों। घर में एक, दो, तीन या चार शालाएँ हों। चतुःशालगृह के शाल और प्रांगण (अलिन्द) भेद से दो सौ भेद होते हैं। चतुःशाल के 55, त्रिशाल के 4 और द्विशाल के पाँच भेद होते हैं। एक शाल चार प्रकार के होते हैं। गृहवास्तु तथा नगरवास्तु के 28 अलिन्द होते हैं। चार तथा सात अलिन्दों के 55, छः अलिन्दों के बीस, आठ अलिन्दों के 20 भेद होते हैं। आठ अलिन्द के वास्तु भी होते हैं।

अग्निपुराण (अध्याय 104) में प्रासाद या भवन के लक्षण भी दिये गये हैं। मेरु पर वैराज, पुष्पक, कैलास, मणिक और त्रिविष्टप ये पाँच ही प्रासाद हैं। अतः प्रमुख ये ही हैं। इनमें प्रथम वैराज चौकोर, पुष्पक चतुरस्रायत, कैलास वृत्ताकार, मणिक वृत्तायत और त्रिविष्टप अष्टकोणाकार है। इनमें से प्रत्येक के नौ-नौ भेद होने से कुल 45 प्रकार हुए।

वैराजकुल में मेरु, मन्दर, विमान, भद्र, सर्वतोभद्र, रुचक, नन्दक या नन्दन, वर्धमान नन्दि या नन्दिवर्धन और श्रीवत्स। पुष्पक कुल में वलभी, गृहराज, शालागृह, मन्दिर, विशाल चमस, ब्रह्म मन्दिर, भुवन, प्रभव और शिविकावेश्म। कैलास कुल में-वलय, दुन्दुभि, पद्म, महापद्म, वर्धनी, उष्णीश, शंख, कलश और खवृक्ष। वृत्तायत कुल के प्रासाद मणिक नामक प्रासाद से प्रकट हुए हैं। वे हैं - गज, वृषभ, हंस, गरुत्मान्, ऋक्षनायक, भूषण, भूधर, श्रीजय और पृथ्वीधर। त्रिविष्टप कुल के - वज्र, चक्र, स्वस्तिक, वज्रस्वस्तिक (या वज्रहस्तक), चित्र, स्वस्तिक खड्ग, गदा, श्रीकण्ठ और विजय।

ये नगरों के भी नाम हैं। शिखर की ग्रीवा (कण्ठ) के आधे के बराबर ऊँचा चूल (मोटा) हो। मोटाई कण्ठ की  $1/3$  हो, वेदी के दस भाग कर पाँच द्वारा स्कन्ध का विस्तार हो। कण्ठ और चार भागों द्वारा उसका अण्ड बनाना चाहिए। द्वार दिक्कोण में नहीं होने चाहिए। द्वार की ऊँचाई गर्भ के चौथे-पाँचवें भाग से दुगनी रखनी चाहिए। एक सौ आठ अंगुल की ऊँचाई से लेकर दस-दस अंगुल कम करते हुए चार द्वार बनते, वे उत्तम माने गये हैं। जैसे 160, 150, 140, 130 उत्तम। 120, 110, 100 अंगुल ऊँचे मध्यम, 90, 80, 70 अंगुल के कनिष्ठ। द्वार की ऊँचाई से आधी चौड़ाई हो। ऊँचाई से  $1/4$  विस्तार हो। द्वारशाखा द्वार की चौड़ाई से आधी हो। तीन, पाँच, सात या नौ शाखाओं का द्वार शुभ हो। द्वार के सामने खंभा स्तम्भवेध दोष करता है। वृक्ष, कूप या क्षेत्र भी सामने नहीं होने चाहिए। प्रासाद, गृह, शाला, सभा, वर्ण, उलूखल, शिला, छाया आदि सामने न हों। हों तो उनको हटाकर निराकरण करना चाहिए। इनके बीच में चहारदिवारी या आड़ कर देने से दोष नहीं रहता। सीमा से दुगनी भूमि छोड़ने से भी दोष नहीं होते। वास्तु के 81 पदों के वास्तु चक्र में विभिन्न देवताओं का वास बताया गया है। 81 के समान 101 पदमण्डप भी होता है। भद्रप्रासाद में वीथियों के समान द्वारवीथी होती है। प्रासाद की द्वार वीथी में वीथी का पृष्ठ भाग नहीं होता। भद्र में अग्रभाग नहीं होता। वीथी के बाजू के भागों को कम करने से भी भद्र ही होगा। गर्भ के समान वीथी का विस्तार भी होता है। वीथी के आधे मान से उपवीथी बनानी चाहिए।

साधारण गृह 1, 2, 3, 4 और 5 शालाओं का होता है। एक शाला वाले

घर की शाला दक्षिण में और उत्तर में होता है। दो शाला बनानी हो तो पश्चिम और पूर्व में बनवाएँ। द्वार आमने-सामने हों। चार शाला के द्वार चारों ओर अलिन्द से युक्त हों। यह कल्याणकारी है। पश्चिम में दो शालाएँ हो तो 'यमसूर्यक' कहलाता है। पूर्व पश्चिम में हो तो दण्ड। पूर्व-दक्षिण में दो हो तो वात। तीन शाला वाले घर में पूर्व में शाला न हो तो सुक्षेत्र होता है। यह बुद्धिप्रदायक होता है। दक्षिण में शाला न हो तो विशाल होता है जो कुलक्षयकारी है। पश्चिम में न हो तो पक्षघ्न कहलाता है। वह पुत्रहानि और शत्रु उत्पादक होता है।

पूर्वादिक्रम से ध्वज, धूम, सिंह, श्वान, वृषभ, खर (गधा), हाथी और काक ये आठ नाम हैं। पूर्व में स्नान और अनुग्रह (बैठक) घर हो। अग्निकोण में रसोई हो। दक्षिण में रसक्रिया तथा शय्या घर हो। नैऋत्य में शस्त्रागार हो। पश्चिम में धन-रत्न का कोषागार हो। वायव्य में अन्नागार हो। उत्तर में धन और पशुघर हों। ईशान कोण में दीक्षा के लिए उत्तम भवन बनवाएँ। बाजार में गृहपंक्ति पूर्व-पश्चिम और उत्तर-दक्षिण की ओर होती है। एक एक भवन में प्रत्येक दिशा में आठ-आठ द्वार हो सकते हैं। उन सबके भिन्न-भिन्न फल बताये जाते हैं।

मत्स्यपुराण में गृहपरिचय देते हुए कहा गया है कि जिसमें एक दिशा में एक कक्ष हो तथा अन्य दिशाओं में केवल बरामदा हो तो वह एकशालगृह है। इसी प्रकार दो दिशाओं में दो, तीन दिशाओं में तीन और चार दिशाओं में चार कमरे हों वह क्रमशः द्विशाल, त्रिशाल या चतुःशाल कहलता है। चतुःशाल में चारों ओर कमरे हों। सबके द्वार आमने सामने हों तो वह सर्वतोमुख गृह सर्वतोभद्र है। यह देवालय और राजभवन दोनों में उपयोगी होता है। पश्चिम में न होकर तीनों ओर द्वार हो तो नन्द्यार्त कहलाता है। दक्षिण में द्वार न हो तो वर्धमान। पूर्व में द्वार न हो तो वह त्रिशाला धान्यक, पूर्व में शाला न हो तो सुक्षेत्र, दक्षिण में शाला न हो तो विशाल, पश्चिम में शाला न हो तो पक्षघ्न कहलाता है। इन सबके विभिन्न फल भी बताये गये हैं।

मानसार – छठी-सातवीं सदी में रचा गया मानसार वास्तु का महत्त्वपूर्ण प्राचीन ग्रन्थ है। उसमें बस्तियाँ बसाने सम्बन्धी कुछ अध्याय रचे हैं। एक अध्याय पूरा ग्रामलक्षण सम्बन्धी है। तदनुसार ग्राम आठ प्रकार के होते हैं - दण्डक, सर्वतोभद्र,

नन्द्यार्त, पद्मक, स्वस्तिक, प्रस्तर, कार्मुक एवं चतुर्मुख। 27 अंगुल का एक हस्त और 4 हस्त का एक दण्ड होता है। 25 दण्ड से आरम्भ कर दो दो दण्ड बढ़ाते 101 दण्ड तक 39 प्रकार की चौड़ाई के दण्डक ग्राम होते हैं। चौड़ाई को दुगुना कर उसमें दो दण्ड जोड़ने से ग्राम की लम्बाई आती है। 31 से 2-2 दण्ड बढ़ाते 107 (113) दण्ड तक 42 प्रकार की चौड़ाई मध्यम ग्राम की होती है। इसकी लम्बाई पूर्वानुसार ही है। 37 से 2-2 बढ़ाते 125 तक 45 प्रकार की चौड़ाई के उत्तम दण्डक ब्राह्मणों के लिए बताये गये हैं। 50 से 2-2 बढ़ाते 200 तक 76 प्रकार की चौड़ाई बतायी गयी है। 61 से 2-2 बढ़ाते 313 दण्ड तक 127 प्रकार की चौड़ाई सम या विषम प्रकार की सर्वतोभद्र ग्राम की होती है। यह ब्राह्मणयोग्य है। 157 से दो दो दण्ड बढ़ाते हुए 565 तक 205 प्रकार की चौड़ाई वाला नन्द्यार्त ग्राम होता है। इसकी लम्बाई चौड़ाई से दुगुनी होती है। यह ब्राह्मणों के योग्य है। पद्मक ग्राम की एक सौ दण्ड से 2-2 कर एक हजार दण्ड तक 451 प्रकार की चौड़ाई होती है। यह भी ब्राह्मणों के योग्य है।

स्वस्तिक 201 दण्ड से 20-20 दण्ड बढ़ाते 2000 दण्ड तक चौड़ाई होती है। लम्बाई-चौड़ाई बराबर होती है और यह राजा के योग्य है। प्रस्तर ग्राम 300 दण्ड से 100-100 दण्ड बढ़ाते हुए 2000 दण्ड तक चौड़ाई होती है। कार्मुक 65 से शुरू कर 2-2 दण्ड बढ़ाते समविषम में 500 दण्ड तक हो। चौड़ाई से इसकी लम्बाई दुगुनी हो। 100 दण्ड तक बढ़ती है और यह वैश्यों के लिए मंगलप्रद है। चतुर्मुख 30 दण्ड से 2-2 दण्ड बढ़ाते हुए एक सौ दण्ड होता है। चौड़ाई से दुगुनी लम्बाई होती है। यह शूद्रों के लिए शुभ है। मुख्य ग्राम की लम्बाई-चौड़ाई की सीमा तक अंकित कर बाहरी क्षेत्र तक दस से 100 दण्ड तक दो-दो दण्ड बढ़ाते रहना होगा। बाहर परिधि के प्राकार और परिखा की व्यवस्था हो। लम्बाई-चौड़ाई के आधार पर आय, क्षप, व्यय, योनि, तिथि, वार आदि का निर्धारण होता है।

दण्डक आयताकार होता है। इसमें तीन या पाँच रथ्या और मूल से अग्र भाग तक वीथी चाहें तो करें। तिरछी गली भी चाहें तो हो सकती है। सड़क 1, 2, 3, 4 या 5 दण्ड चौड़ी हो। मध्य वीथी के चारों ओर वीथी एक-दूसरे के बराबर बनाएँ।

भीतर की रथ्या के बराबर वीथी बनवाएँ। उसमें एक पक्ष पैदल रास्ता हो। मुख्य वीथी में दो पैदल मार्ग हों। मुख्य वीथी के घर तीन, चार या पाँच दण्ड हों। लम्बाई, चौड़ाई से दुगनी हो। प्राकार परिखा हो। प्राकार में चार द्वार हों। उपद्वार भी हों। यथोचित मन्दिर हों। यह ब्राह्मणों के योग्य है। यह वन या पर्वत पर हो तो आश्रय कहलाता है। यतिसंघ हो तो ग्राम, नदी किनारे हो तो पुर कहलाता है। 50 दीक्षित हो तो नगर, 58 गृहस्थान हों तो मंगल, सौ का संघ हो तो कोष्ठ कहलाता है।

सर्वतोभद्र वर्गाकार हो। ग्राम मध्य में मन्दिर हों। तपस्वी, यति, ब्रह्मचारी, योगिनी या अन्य संघ यथेच्छ रह सकते हैं। इसमें 1 से 5 तक सड़कें हों। चारों ओर भी सड़क हो। इसके चारों कोनों पर मठ, मण्डप, सत्रशाला, जल, धर्मालय हों। भीतर की रथ्या के चारों कोनों पर मठ हो। वप्र व पारिखा हो। हर दिशा में द्वार-उपद्वार हों। महारथ्या पर सब कारीगर हों। दक्षिण में वैश्य-शूद्र के घर, दक्षिण-पूर्व में गोपाल हों। दर्जी आदि नैऋत्य में हो। दर्जी, चर्मकार उससे बाहर हों। वायव्य में लोहार हो। उससे बाहर मांसाहारी हों। पास ही क्लर्क लोग रहें। वैद्य, वर्णसंकर, छवाल का काम करने वाले हों। तेली हों। उत्तर में वैष्णव व चामुण्डा के मन्दिर हों। बाहर दूर चाण्डाल की कुटी हो। दक्षिण, पश्चिम या नैऋत्य में सरोवर हो।

नन्द्यावर्तक में लम्बाई-चौड़ाई बराबर हो अथवा लम्बाई चौड़ाई से अधिक हो। रथ्यापथ उत्तर-दक्षिण, पूर्व-पश्चिम हो। वीथियाँ हों। 1, 3, 5 या 7 गली हों। उसमें पक्ष (पैदल पथ) भी हो। महामार्ग व वीथी कंकरीली हो। इनके बीच क्षुद्र पथ सीधे बनें। वीथी की चौड़ाई 3 से 12 दण्ड तक हो। रथ्या बड़ी हो। महामार्ग वीथी के समान 9 दण्ड चौड़ा हो। क्षुद्र मार्ग उसका 3/4 चौड़ा हो। इसमें अठावन से एक हजार तक ब्राह्मण रहते हैं। दैवक, मानुष, पैशाच ब्राह्मणों द्वारा पूर्ण हो तो वास्तुमंगल कहा गया। नृप, वैश्य से पूर्ण हो तो पुर और वैश्य, शूद्र से पूर्ण हो तो अग्रहार कहलाता है। इसमें ब्राह्मण, राजगृह, दैव, मानुष, पैशाच पद हों। पैशाच पद में वैश्य शूद्र हों। पैशाच पद में दो से सात तक रथ्या हो। पूर्वानुसार चौड़ाई हो। दक्षिण की प्रथम रथ्या पर वैश्य। चक्रवर्ती राजा पश्चिम में हो। पास ही राजगृह के मित्र व यौद्धा हों। नैऋत्य में क्लर्क हों। सामंतों के घर दक्षिण में हो। अमात्यों व स्वामीभक्तों के मार्ग भी हों। पुरोहित, द्वारपाल रक्षकों के घर हों। दक्षिण में गणिका-वादक के घर

हों। वायव्य में स्थपतियों व रत्नकारों के घर हों। उत्तर में शल्यशाला व कंचुक के घर हों। ईशान में चौकीदार व अतिथिगृह हों। पश्चिम में मछुआरे, दक्षिण में किरात शिकारी, उत्तर में तेली। उधर ही ब्राह्मण भी हों। आग्नेय या वायव्य में धोबियों के घर तथा पूर्व में नाचने वालों के घर हों। उत्तर या नैऋत्य में दर्जियों के घर हों। दक्षिण में कामगार लोग हों, उत्तर दक्षिण में टोकरी बनाने वाले, पूर्व या पश्चिम में हथियार बनाने वाले तथा उत्तर में चर्मकारों के घर हों। शेष में जीविका चलाने वालों के घर हों। पूर्व या उत्तर में एक कोस पर चाण्डाल और उसके उत्तर में श्मशान हो। उधर ही प्रेत, भूतादि हों। ग्राम रक्षा के लिए प्राकार परिखा हो। चारों ओर महाद्वार हों। ग्राम के अनुसार गोल या चौकोर वप्र (मिट्टी का परकोटा) हो। पूर्व-पश्चिम में तो द्वार होनी ही चाहिए। जलद्वार भी हो।

पद्म वास्तु की लम्बाई-चौड़ाई बराबर हो। बाहरी दीवार सुवृत्त, चतुरस्र, षट्कोण या अष्टकोण हो। बाहरी पथों पर सभा बनवाएँ। सब रथ्या पैदल मार्गों से जुड़ी हों। चार से आठ तक वीथी मध्य में हो। चार दिशा में चार द्वार हों।

स्वस्तिक ग्राम के मध्य से पूर्व पश्चिम रथ्या हो। बीच में वे मिलें। ये कंकड़वाली हों। पूर्वोन्मुखी ईशान की ओर तथा दक्षिण वाली आग्ने की ओर उन्मुख हों। पश्चिम वाली नैऋत्य की ओर तथा चारों मार्गों को ढकती रथ्या हो। एक वीथी दक्षिण से उत्तर तथा आग्नेय ये दक्षिण तक जोड़ती हो। पूर्व से पश्चिम हो। मध्य में न हो पर दो पक्ष हों। किनारे पर कम चौड़ी हो। वप्र-परिखा, आठ महाद्वार हों। सब उपद्वार हल जैसे हो कपाटों वाले हों। राजा तथा विभिन्न जाति के लोग हों। किसी भी दिशा में या मध्य में राजमहल हो। बौद्ध मन्दिर वायव्य में, जैन मन्दिर नैऋत्य में और भैरव मन्दिर सब दिशाओं में द्वार के पास में और दुर्गा या गणेश का मन्दिर चारों दिशाओं अथवा विदिशाओं में बनाने चाहिए। इसी प्रकार विभिन्न मन्दिरों का न्यास भी बताया गया है। ग्राम में जहाँ रथ्या पूरी हो रही हो वहाँ महाद्वार बनवाएँ। उनमें 4, 8 या 12 द्वार हों। कार्मुक ग्राम के विन्यास में बताया गया है कि उसकी लम्बाई अधिक हो। कभी-कभी लम्बाई-चौड़ाई बराबर हो। यह पत्तन, खेटक या खर्वट जैसा हो। पत्तन में वैश्य संघ रहता है। खेटक में शूद्र रहते हैं। पृथुओं (पुर्तिले दूत) का वास भी खर्वट में होता है। कार्मुक नदी या समुद्र के किनारे हों। दक्षिण व

पश्चिम के मध्य एक मार्ग हों। इसमें वप्र हो या न हो। चतुर्मुख ग्राम चतुर्भुजाकार हो और प्राकार भी ऐसा ही हो। लम्बाई पूर्व-पश्चिम में हो। चारों ओर महावीथी और दो पगडंडी हों। चारों दिशाओं में चार वीथियाँ, उनके सिरे पर द्वार, एक महाद्वार और शेष उपद्वार हों। अनेक लघु वीथियाँ (गलियाँ) हों। महारथ्याओं पर सब जाति के लोग हों। भीतर शूद्रसंघ हों तो आलय और ब्राह्मणों के संघ हों तो पद्म होगा। वैश्य संघ हो तो कोसक हो। द्विज के घर चारों दिशाओं में हों। ब्राह्मणों के आग्नेय में, क्षत्रियों के नैऋत्य में, वैश्यों के वायव्य में और शूद्रों के ईशान में हो। पैशाच में सभी कारीगरों के घर हों। नटों का वास रथ्यारहित हो। संदेह में पुरातन ग्राम रीति का अनुसरण करें। प्रदक्षिणा बलि (नैवेद्य) स्थान या रथ्या में नहीं बनवाना चाहिए। देवालय निर्धारित स्थलों के अतिरिक्त रथ्या के मूल, मध्य, सिरे पर या दो रथ्या के बीच बनवाना चाहिए। पुराने देवालय को गिराना नहीं चाहिए। ग्राम गृहों के प्रवेशद्वार दक्षिण में हो। पुराने ग्राम के पुनर्विन्यास में दण्डक आदि का ध्यान रखें। वीथी के दोनों ओर 1 से 12 तल तक के मन्दिर हों। भवन एक सी ऊँचाई के हों। बड़े भवन अधिक ऊँचाई के हो सकते हैं। निम्न वर्ग के भवन एक तल के हों। शिल्पियों के गुरु (मिस्त्री/उस्ताद) को कन्या, धन, रत्न, धान्य, भूमि, गृह, दासी या वाहन दें।

नगर विधान - विभिन्न प्रकार के राजाओं के लिए भिन्न-भिन्न नगरों का विधान किया गया है। अस्त्रग्राही राजा के लिए सौ दण्ड से सौ-सौ बढ़ाते हुए तीन सौ दण्ड, दो सौ दण्ड से चार सौ दण्ड या तीन सौ दण्ड से सौ-सौ बढ़ाते पाँच सौ दण्ड तक होते हैं। ये लघु, मध्यम व ज्येष्ठ होते हैं। चौड़ाई एक हजार दण्ड तक जाने से ये 21 प्रकार के हो जाते हैं। प्रहारक राजा का नगर चार सौ दण्ड से सौ-सौ बढ़ाते 500, दूसरा पाँच सौ से, तीसरा छः सौ से प्रारम्भ कर 1200 दण्ड तक 21 प्रकार का होता है। पट्टभाक् राजा का 63 प्रकार के नगर की चौड़ाई 7, 8 या 9 सौ दण्ड से आरम्भ कर 100-100 बढ़ाते हुए 3000 दण्ड तक होती है। मण्डलेश राजा के 63 प्रकार नगर की 1100, 1200, 1300 दण्ड के प्रारम्भ कर 100-100 दण्ड बढ़ाते हुए 3100 दण्ड तक चौड़ाई होती है। पट्टधर राजा के लिए 63 प्रकार के नगरों की चौड़ाई 2600 दण्ड से आरम्भ कर सौ-सौ दण्ड बढ़ाते हुए 5500 तक व्यापक हो। (यही) सात देवताओं वाला होने पर पुर कहलाता है।

नरेन्द्र के लिए 63 प्रकार के नगर 400 से 100-100 बढ़ाते हुए 6600 दण्ड तक हो। महाराजा के लिए 63 प्रकार 4700 से 100-100 बढ़ाते हुए 6900 तक होता है। चक्रवर्ती के लिए 5600 से 100-100 बढ़ाते हुए 7200 दण्ड तक होता है। सबसे बड़ा नगर दस हजार दण्ड तक चौड़ा हो सकता है। नगर की चौड़ाई डेढ़, पौने दो या दो गुनी होती है।

नगर आठ प्रकार के होते हैं - राजधानी का नगर, केवल नगर, पुर, नगरी, खेट, खर्वट, कुब्जक और पत्तन। दुर्ग भी आठ प्रकार के बताये जाते हैं - शिविर, वाहिनी, मुख, स्थानीय द्रोणक, संविद्ध, कोलक, निगम और स्कन्धाकार। संग्राम के समय नगर भी दुर्ग कहलाते हैं। राष्ट्र के बीच नदी तट पर पुण्यजनों से निवसित नगर होता है जिसके मध्य राजप्रासाद हो। प्रवेश या मध्य में विष्णु का मन्दिर हो तो वह राजधानी है। केवल वह कहलाता है जब चारों दिशाओं में गोपुर सहित द्वार हों, रक्षागृह हों, सेना-सदन हों, वणिक् व बाजारों वाला हो तथा अन्दर-बाहर अनेक देवालय हों। पुर वह होता है जहाँ उद्यान हों, विभिन्न लोगों के घर हों, क्रय-विक्रय का प्रसिद्ध स्थान हो, वैश्यों की आवाज गूँजती रहती हो और सात देवताओं के सदन हों। इसमें राजभवन हो तो वह नगरी है। नदी-पर्वत के तट पर शूद्रों के घर सहित ऊँची दीवार हों तो खेट होता है। खर्वट वह है जहाँ चारों ओर पर्वत, विभिन्न वर्ग के घर, गोचर भूमि हो। खेट-खर्वट के बीच का कुब्जक होता है। उसमें सब तरह के घर होते हैं परन्तु वप्र नहीं होता है। सागर या जलमार्ग, जाति के घर, वणिजों वाला, वप्र सहित, लम्बा, रत्न-कपूर के क्रय-विक्रय का केन्द्र पत्तन होता है। जहाँ दस हजार सेना और सीमान्त युद्ध की सम्भावना वाला शिविर है। विपुल रक्षा, राजमहल और लोगों वाला सेनामुख या वाहिनीमुख होता है। नदी किनारे राजमहल और पर्वत हों तथा रक्षाव्यवस्था हो तो वह सुखद स्थानीय कहलाता है। उत्तर व दक्षिण समुद्र में मिलती नदियाँ हो, वणिज के साथ अन्य भी लोग हों। क्रय-विक्रय के लिए लोग आते रहते हैं वह द्रोण हैं। महाग्राम के निकट क्षुद्रग्राम से युक्त ब्राह्मणों वाला संविद्ध है। यही महाराजा के घरवाला हो तो कोलक कहलाता है। चारों वर्णों और बहुकर्मी लोगों वाला हो तो निगम कहलाता है। राजभवन, नदी, कानन, नदी तथ पर बस्ती हो तो स्कन्धावार है। पास में द्विजगृह हो तो यह चैरी कहलाता है।

शत्रु से राजा की रक्षा के लिए दुर्ग होता है। वह गिरिदुर्ग, वनदुर्ग, सलिलदुर्ग, पंकदुर्ग, रथदुर्ग, देवदुर्ग और मिश्र दुर्ग होते हैं। पर्वत से घिरा, पर्वत के मध्य या पर्वत के समीप गिरिदुर्ग होता है। नीचे जल हो, प्रवेश आकाश हो वह वनदुर्ग है। समुद्र-नदी से घिरा जलदुर्ग है। पर्वत कन्दरा वाला, शत्रु प्रवेश के लिए दुष्कर पंकदुर्ग होता है। वन व जल से रहित, चोरों वला सूना रथदुर्ग होता है। शत्रु के आगम-निर्गम के समय पाषाणवर्षा, भूत-प्रेत के यम व तंत्र-मंत्र वाला देवदुर्ग है। वन-पर्वत वाला मिश्रदुर्ग है। सब दुर्गों में वप्र और परिखा हो। निर्गमद्वार हों। वप्र 12 हाथ ऊँचा ईंटों से बनाया जाए। भीत से कुछ दूर संचार व्यवस्था हो।

सब नगरों के विन्यास में एक से बारह तक रथ्या क्रमशः बढ़ते हुए पूर्व-पश्चिम उत्तर-दक्षिण सम या विषम हो। ग्राम विन्यास के समान बनवाने चाहिए।

युक्तिकल्पतरु – राजा भोज ने अपने समरांगणसूत्रधार में तो स्थापत्य सम्बन्धी विस्तृत विवरण दिया है। परन्तु अपने प्रसिद्ध विविध विषयक ग्रन्थ युक्तिकल्पतरु में भी इस विषय पर संक्षेप में प्रकाश डाला है। तदनुसार शुभ समय में नगर स्थापित किया जाए। भविष्योत्तर पुराण को उद्धृत करते हुए कहा गया है कि राजा दीर्घ, चौकोर या अन्य अनेक प्रकार का नगर बनवाए। दीर्घ एक चौथाई अधिक लम्बा हो, चतुरस्र बराबर चौकोर हो, तीनों ओर से समान त्र्यस्र और वर्तुल वलय जैसा गोल होता है। इनमें पहले दो अच्छे, बाद के दो अशुभ बताये गये हैं।

राजा के अपने दस हाथ का राज हस्त, दस राजहस्त का एक राजदण्ड, दस राजदण्ड का एक राजछत्र, दस राजछत्रों का एक राजकाण्ड और दस राजकाण्ड का एक राजपुरुष होता है। अर्थात् एक राजपुरुष एक लाख हस्त (लगभग डेढ़ लाख फिट) का होता है। दस राजपुरुषों (15 लाख फिट) की एक राजधानी होती है। इस राजधानी का दस गुना (150 लाख फिट) का एक राजक्षेत्र होता है। पूर और पत्तन के ये सात आकार बताये गये हैं। राजक्षेत्र से राजा पूर-पत्तन बनवाए। सोलह प्रकार की नगरी मुनियों ने बताई है। लक्ष्मी, जय, क्षमा, सौख्य, पंचत्व, भंग, समृद्धि, वित्त-नाश, मंगल, बलक्षय, साम्राज्य, भोग सम्पत्ति। ये यथार्थ नाम हैं। भोज के अनुसार नदी, श्मशान, पर्वत, वन, दुर्ग और नगर के पास राजा अपना महल न बनावें।

नगर विस्तृत हो। समान आधे आधे पर चौराहे हों। प्याऊ, मण्डप, तालाब, उद्यान आदि से शोभित हो। बीच में उठा हुआ, ईशान पूर्व में ढलान वाला होना चाहिए। दक्षिण ढाल का रोगकारी, उत्तरी ढाल का धनदाता, पश्चिमी ढाल का सुख-सम्पदानाशक, बीच में निम्न दरिद्रता, किनारे निम्न हों तो सुखद होता है। तिराहे से राजदण्डों पर, राजछत्र पर, चौराहे पर, राजकाण्ड पर मण्डपिका और राजपुरुष (दूरी) पर दो तालाब हों। राजधानी में हाट, राजक्षेत्र में दूध, बीच में साधु, मृदु, वैद्य, ज्योतिषी को बसावें। नगर के किनारे म्लेच्छ, अन्त्यज, क्रूर, वीर, सैनिक जैसे कर्कश बसाएँ। गोपुर में सैनिक वीरों को और राजभवन के पास मन्त्रियों को बसावें। मन्त्रियों को आपस में पड़ोस में कदापि न बसावें, उससे दुर्मन्त्रणा होती रहती है। नगर के बीच बीच में नियुक्त लोग रहें। नियोगी और मन्त्रियों की (आपसी) दृष्टि कार्य को ध्वस्त करती है। मन्त्रियों की निकट बस्ती कर्म शीघ्र नहीं करती। नवकद्वार हों, एक ही द्वार न बनावें। न विषम, न अविषम, न सम तथा न असम हों। नगर के बीच हाथी न बसाएँ और घोड़े नगर से एक तरफ न हों। सेना का वास पास में न हो और साधु तथा मन्त्रियों का वास दूर न हो। न ब्रह्मचारी, न अधिकाङ्गों, न हीनों और न उद्धातों, न विदेशगमों, न ऊँचों, न महाव्याधि से पीड़ितों की राजा अपने नगर में रक्षा करें, यदि वह अपना श्रेय चाहता है तो। अपने पुर में नृत्यशाला, न अध्ययनशाला बनवाएँ। वहाँ ठहर कर गुप्तचर सब बल-अबल जान लेते हैं।

भोज ने भी नगर युक्ति अन्य प्रकार से कही है। राजा के अपने हाथ से एक करोड़ हाथ हो तो राजक्षेत्र कहलाता है। इस माप का राजा पत्तन स्थापित करें। चार राजक्षेत्र से पुरपत्तन होता है। अपने द्वारा स्थापित नगर में ही राजा निवास करें।

अपराजितपृच्छा – 12-13वीं शताब्दी के भुवनदेव के ग्रन्थ अपराजितपृच्छा में भी इस विषय पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया। उसमें (अध्याय 70) बताया गया है कि भूधर, हेमकूट, रत्नकूट प्रकार के नगर होते हैं। एक हजार हाथ का अधम, डेढ़ हजार हाथ का मध्यम और दो हजार हाथ का ज्येष्ठ होता है। कनिष्ठ में आठ, मध्य में दस और ज्येष्ठ में 16 भाग होते हैं। कनिष्ठ में 64, मध्य में 100 और श्रेष्ठ 856 पद होता है। अधम 32 हाथ, 42 मध्यम और ज्येष्ठ 52 हाथ घरों का प्रमाण हैं। कनिष्ठ 500, मध्यम 750 और ज्येष्ठ 1000 घरों का

होता है। कनिष्ठ में 9 मार्ग, मध्यम में 13 और ज्येष्ठ में 17 मार्ग हों।

चतुरस्र सम क्षेत्र का हो। आठ भागों में विभाजित हो। लम्बाई-चौड़ाई बराबर हो। एकांश के तीन भाग करके मध्य कोष्ठ छोड़कर आठ घर होते हैं। उत्तर-दक्षिण में स्थित घरों के पूर्व-पश्चिम में द्वार हों। सबका इस प्रकार छन्द 64 पदों में होता है। घरों की संख्या और घर 32 हाथ की हो। चौराहे पर 12 मार्ग या 16 मार्ग हों। 9 मार्ग भी होते हैं। लम्बाई चौड़ाई में बराबर सीमा एक हजार हाथ की हो। 64 पद हों। नगर के मध्य में चतुर्मुख ब्रह्मा का मन्दिर हो। पूरे सीमान्त पर नौ हाथ ऊँचा प्राकार बनवाएँ। दो हाथ ऊँची त्रिगूढा कण्डवारिणी हो और उसी के समान कपिशीर्षक (कंगूरे) हों। प्रत्येक कर्ण में गोल अटारियों (बूर्जे) बनानी चाहिए। तीन हजार के बाद फिर योधविद्याधारी करें। उसी भाग के प्रमाण से सिंहावलोकन बनवाएँ। चार प्रतोली (पोल) और चक्रद्वार बनवाएँ। आठ खटक्क्या द्वार हों। सब द्वारों में खटक्की (खिड़की) हो। सोपान भी हों। रथमार्ग के मुहाने पर प्रतोली हो। दृढ़ अर्गला वाले कपाट सब द्वारों में हों। स्तम्भ, ध्वजास्तम्भ, कीर्तिस्तम्भ, महान् आदि के नीचे पीठ हों और 21 मालिकाएँ हो। उनके बीच स्वर्ग-पाताल के देवता हों। ब्रह्माण्ड के समान सामने मेरुच्छन्द स्तम्भ हों। उस पर शिवमूर्ति हो, त्रिज्योतिरूपा शक्ति हो। उसके विभाग इस प्रकार होंगे। चौकोर ताटक पीठ सम करके बनता है। कीर्तिस्तम्भ 4 प्रकार के होते हैं। उनकी ऊँचाई के भाग 108 हैं। भाग के प्रमाण से चौड़ाई 14 प्रकार की होती है। मूलभाग से भद्र आधा और कर्ण दो भाग का होता है। पूर्व भद्र में ब्रह्मा, दक्षिण में जनार्दन, अनन्त पश्चिम में और रुद्र उत्तर में हों। भद्र स्तम्भ कोण सात भाग ऊँचा होता है। मेघ जैसे उसके आठ महाशृंग होते हैं।

पूर्वद्वार पर ध्वज स्थान है। वहाँ उत्तम कीर्तिस्तम्भ हो। उसे खड़ा कर उस पर हाथ भर कीर्तिपताका हो। घर के सब उपकरण लोहे या लकड़ी के ब्राह्मणों को देने चाहिए। भूधर नामक नगर कनिष्ठ है जो सर्वत्र विख्यात है।

हेमकूट नामक नगर चौकोर स्थान पर होता है। बारह भागों में विभाजित हो। बारह मार्ग हों। कर्ण-भुजा के अन्तर पर तेरह मार्ग हों। पन्द्रह हजार हाथ प्रमाण हो। घर 750 हों। 40 हजार गृहमान हो। प्रासाद के उपकरण, प्रतोली, कीर्ति स्तम्भ आदि भी हों।

रत्नकूट नगर चतुरस्र हो, समक्षेत्र हो, सोलह भागों में बाँटे। घर एक हजार हों। चारों दिशाओं में मनोहर भद्रस्थान बनावें। प्रासाद में चार कर्ण या चार भुजाएँ और मार्ग सत्रह हों। जब आठ मार्ग हो तो हाथ 12 हों। सीमान्त रेखाओं पर 24 हों।

कैलास में चार द्वार हों। रत्नकूट में एक सहस्र घर हों। उसमें द्वार, प्राकार, गृहोपकरण, द्विज, देवालय आदि भी हों। कनिष्ठ पुर चार हजार हाथ विस्तृत होते हैं। मध्यम आठ हजार और ज्येष्ठ पुर का व्यास 10 हजार हाथ हो। कनिष्ठ और ज्येष्ठ के मध्य एक हजार की वृद्धि हो। समस्त राजसदनों की वेद (चार या चौकोर) सी स्थिति हो। प्रसिद्ध राजमार्ग छः मार्ग नवांश के हों। पुर के अन्त में सब दूर घण्टा मार्ग हो। प्राकार 12, 16 या 20 की ऊँचाई के हों। आठ, दस या बारह प्राकार के स्कन्ध का विस्तार हो। सत्रह हाथ ऊँचा प्रासाद हो। उसमें दो कम या अधिक हो। उन पर दो हाथ ऊँची कण्डवारिणी (तीर रोकने वाली पेराफेड) हो। सघन कपिशीर्षक आठ अंगुल की दूरी पर हों। प्राकार के अन्त में रथ बनवाएँ। रथान्तर 40-30 का हो। उत्संग, पूर्णबाहु, हीनबाहु और प्रतिकाम-चार प्रवेश हों। 36 से छः बढ़ते हुए 108 तक पुर में प्रासादों की संख्या हो और उतने चौराहे पर देवस्थान हों। देवता न उत्तरमुखी हों, न दक्षिणमुखी। देवता प्राकार से बाहर हों तो पुरोन्मुखी होने चाहिए। प्राकार की ऊँचाई से दुगुनी तीन परिखाएँ होनी चाहिए। राजसदन के सामने प्रतोली (पोल) हो, उससे आगे राजमार्ग हो। यह बीस हाथ चौड़ी हो। 16 या 18 हाथ की अधम हैं। तब मार्ग से 16 वें भाग पर हाट की श्रेणी हो। सब हाटों में बलिकर्म (नैवेद्यस्थान) हों। दिशा-दिशा में पुर हों। घटों के जोड़े हों। पक्षों के वे सम्मुख हों। प्रासाद के प्रमाण से 1/4 कम या आधी ज्येष्ठ, मध्य, कनिष्ठा एक तल, दो तलवाली शाला हो। उसमें निर्गम हो, मत्तवारण हो, चित्रशाला हो। जगति के सामने छोटा भिट्ट हो। वासन्त महोत्सव में यहाँ हिन्डोले करें। देव के सामने ढकी नृत्यशालाएँ हों। वे पूर्व, आग्नेय या वायव्य में शुभ होती हैं। आग्नेय दिशा में सत्रमण्डप (यज्ञशाला) हो। उसमें वास्तु, वेदी हो। दक्षिण में मठ हो। पीछे यतिध्यानालय हो। पुर के सीमान्त प्राकार पर, प्रतोली और हाट के मार्ग पर जगती के पार रँहट वाला जलाश्रय होना चाहिए। उससे आगे क्रय-विक्रय की वस्तुओं के घर हों। जहाँ जनता की भीड़



आती रहे। स्वर्णकार, सुगन्ध, गन्धी, दन्तकर्मी, धान्यगृह पूर्व में हों। ताम्बूलफल, पुष्पमाला राजद्वार के सामने हों। मंजीठरंग के नारियल उत्तर में हों। लोहे (आदि धातु) के उपकरण, शस्त्र, व्यजन, छत्र, मोरपंख दक्षिण में हो। ईशान में कपड़े, बर्छी, कपड़े के पट्टे, अंगोछे, पट्टे हों। आग्नेय में स्वल्प वस्त्र हों। आगे वस्त्रबन्ध हों। राजमहल के उत्तर में लाल, दक्षिण में काले, पूर्व में श्वेत वस्त्र हों। सब दिशाओं में अठारहों प्रकार के धान्य हों। ताम्बूल, सुपारी देवाताओं के सामने हो। पुरवासियों के घरों में चित्रकारी हो। छिंपिका (छीपें), धोबी पुर में हो। ब्राह्मण पूर्व में, दक्षिणके क्षत्रिय, उत्तर में शूद्र और मध्य में वैश्य हों। बाहर रथपति (राजकारीगर) हों। प्रत्येक पुर में चारों वर्णों के लोग बसाये जाएँ। पूर्व में ब्राह्मण, दक्षिण में क्षत्रिय, उत्तर में शूद्र और पश्चिम में जलाशय हो। दक्षिण पूर्व में हाट मार्ग के चौराहे हों। पूर्वोत्तर में शिल्पी हों। उनसे आगे रजक, छिंपक (छीपे) हों। आग्नेय दिशा में चर्मकार, वरुट (बरगुंडे) हो, नैऋत्य में मद्यविक्रेता और वायव्य में जुलाहे हों। प्राकार पर व नगर में सर्वत्र सूत्रयन्त्र (चरखें) हों। विभिन्न यन्त्रों में भैरव, भास्कर, महिषासुर, गौरी, वाराह, महायंत्र हों। इससे अचानक मुद्गर के आघात, ज्वाला, शार से अक्षत व्यापार भयंकर रूप का हो जाता है।

पुरलक्षण – दोषरहित पुर बीस होते हैं। माहेन्द्र, सर्वतोभद्र, सिंहावलोक, वारुण, नन्द्यावर्त, नन्द, पुष्पक, स्वस्तिक, पार्श्वदण्ड, जयन्त, श्रीपुर, रिपुमर्दन, स्नाह, दिव्य, उत्तर, धर्म, कमल, शक्रद, महाजय और पौरुष। माहेन्द्र चौकोर, सर्वतोभद्र आयताकार, सिंहावलोकन वृत्त या गोल, वारुण वृत्तायत, नन्दाक्ष मुक्तकोण (कोणरहित), नन्द्यावर्त स्वस्तिक, पुष्पक अष्टदल, स्वस्तिक अष्टाश्रयक, जयन्त यवाकृति, दण्ड अतिदीर्घ, एक प्राकार में श्रीपुर, दो प्राकार में रिपुमर्दन, शैलकुक्षि (पर्वत की खोह) में स्नाह, दिव्यक शैलमस्तक पर, नदी के उत्तर में सौम्य, नदी के दक्षिण में धर्मक, नदी के पश्चिम में कमल, नदी के पूर्व में शक्रद, पुरुषाकार पौरुष और दो नदियों के मध्य महाजय पुर होता है। ये नगर सुर, नर, नागों द्वारा स्वस्ति और शान्ति करने वाले होते हैं। इन सभी नगरों में सुख ही सुख है।

ये सात पुर महादोष वाले होते हैं - अग्निद, वायव, शकट, युग्मशकट, वज्र, त्रिशूल और कर्णिक। अग्निद त्रिकोण, वायव षट्कोण, शकट शकट (गाड़ी) के

आकार का, युग्मशकट दो गाड़ी जैसा, वज्रक वज्र जैसा, त्रिशूल त्रिशूल जैसा और कर्णिकार विकर्ण होता है। अग्निद में अग्निशमन, वायव में अनेक कष्ट, शकट में प्रजा का क्लेश, द्विशकट में तस्करभय, वज्राकृति में वज्रपात, त्रिशूल में सदा युद्ध, कर्णिकार में दुर्भिक्ष होते रहते हैं।

आधे पुर से ग्राम, आधे ग्राम से खेट, आधे खेट से कूट, आधे कूट से कर्वट होता है। पुर में सत्रह, ग्राम में नौ, खेट में पाँच, कूट में तीन, कर्वट में दो मार्ग होते हैं। इनके छन्द पाँच बताये गये हैं - पुर, ग्राम, खेटक, कूट और कर्वट।

जलाशय और जलप्रबन्धन

पुर के बाहर-भीतर विविध जलाशय बनवाये जाएँ। वापी, कूप, तड़ाग, कुण्ड विविध प्रकार के बनवाएँ। दस कूप, चार वापी, चार कुण्ड एवं छः प्रकार के तालाब होते हैं। श्रीमुख, विजय, प्रान्त, दुन्दुभि, मनोहर, चूड़ामणि, दिग्भद्र, जय, नन्द और शंकर इन कूपों को 4 से 13 हाथ तक बढ़ावें। श्रीमुख चार हाथ, विजय पाँच, प्रान्त छः, दुन्दुभि सात, मनोहर आठ, चूड़ामणि नौ, दिग्भद्र दस, जय ग्यारह, नन्द बारह और शंकर तेरह हाथ हो। ये गोल कुएँ उत्तम हैं। शेषा कुइयाँ हैं जो तीन हाथ से छोटी होती जाती हैं। दो हाथ चौड़ी अच्छी मानी जाती है।

वापी चार प्रकार की होती है। नन्दा, भद्रा, जया, विजया। एक मुख, त्रिकूटा नन्दा उत्तम है। भद्रा द्विमुख छः कूट सुन्दर है। जया त्रिमुख नौ कूट देवदुर्लभा होती है। विजया चार मुख, सूर्यकूटा सर्वतोमुखी होती है।

कुण्ड भद्रक, सुभद्रक, नन्द परिघ देवताओं के सामने बनावें। चौकोर भद्रक, भद्रयुक्त सुभद्र, प्रतिभद्र नन्द और परिघ मध्य भिट्टे वाला हो।

## जल प्रबन्धन

ग्यारहवीं शताब्दी के परमार राजा भोज न केवल एक सफल शासक अपितु वैज्ञानिक दृष्टि से परिपूर्ण और जनता तथा शासकों के प्रेरणास्रोत भी थे। इसके लिए उन्होंने विविध-विषयक अनेक ग्रन्थों की रचना करके तथा उन्हें अपने राज्य में कार्यान्वित करके सिद्धान्त और व्यवहार का समन्वय भी किया। ऐसी ही एक दिशा जल प्रबन्धन की भी है।

मध्यप्रदेश की वर्तमान राजधानी भोपाल के निकट राजा भोज के नाम पर बसा नगर भोजपुर है। वहाँ का भोजनिर्मित शिव मन्दिर प्रसिद्ध है। वहीं बेतवा नदी पर भोज ने एक विशाल बाँध बनवाया था। परिणामतः जो झील बनी थी उसका क्षेत्रफल लगभग 250 वर्गमील था। इससे सिंचाई होती थी। इसके बाद में माण्डू के सुल्तान होशंगाशाह ने तोड़कर खाली करवा दिया था। इस झील के मध्य की ऊँची भूमि का जो द्वीप था वही आज मण्डीद्वीप कहलाता है। कहते हैं उसी झील का एक भाग शेष बच गया है जो आज भोपाल का ताल कहलाता है।

परम्परा कहती है कि भोपाल नगर नाम भोज के नाम पर ही बना है। राजा भोज का एक नाम या उपाधि भूपाल भी था। भोज की धर्मशास्त्र सम्बन्धी पुस्तकों के नाम भूपाल पद्धति तथा भूपाल कृत्यसमुच्चय हैं। परवर्ती धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों में

भोज के अभिमत 'भूपाल' नाम से उद्धृत हुए हैं। पी.वी. काणे ने अपने 'धर्मशास्त्र का इतिहास' नामक पुस्तक में भी यह बात कही है। यह भूपाल भोज थे। विभिन्न परम्पराओं के अनुसार भोजपाल शब्द से भोपाल नाम हुआ। काश्मीर में भोज का बनवाया कपटेश्वर कुण्ड था जिसके अवशेष आज भी हैं। राजता गिणी के अनुसार वहाँ का पानी काच के घड़े से भोज के लिए प्रतिदिन आता था।

राजा भोज ने भोजपुर की झील के अतिरिक्त भी कई तालाब बनवाये थे। धार, उज्जैन तथा माण्डव में वे तालाब आज भी देखे जा सकते हैं। इनके अतिरिक्त उनके राज्य में अन्य भी कई तालाब रहे। अपने समरांगण सूत्रधार में राजा भोज ने नगर-दुर्ग को घेरती हुई सुरक्षार्थ एक परिखा के निर्माण की अनुशंसा की है। उन्होंने उस परिखा या खाई की चौड़ाई तथा गहराई आदि का विवरण देते हुए यह भी कहा है कि उसमें मच्छलियाँ, कछुए आदि होने चाहिए। जिससे जल शुद्ध रहे। पानी में मगर भी होने चाहिए जिससे उसे कोई तैरकर पार न कर सके। उसमें कमल आदि जलशोभा की वनस्पतियाँ भी होनी चाहिए। समरांगण-सूत्रधार में उद्यानों की चर्चा करते हुए उनमें जलयंत्र, यंत्र, धारागृह, जलाशय, कुण्ड, बावड़ियाँ, कूप आदि के साथ ही सामजन व्यवस्था और पुतले पुतलियाँ वाले फव्वारों आदि की चर्चा भी यन्त्राध्याय में की है और मनहर तथा अपने समय से आगे के दर्शनीय ऐसे वीर विलासोद्यान नामक उद्यान का ललित और भव्य वर्णन राजा भोज की शृङ्गारमञ्जरी कथा में भी पाया जाता है। यह उद्यान राजा भोज की राजधानी धारा नगरी में था जो सबके आकर्षण का ऐसा केन्द्र था जिसे देखने दूर-दूर से पर्यटक आते थे। राजा भोज के दो सौ वर्ष बाद भी पारिजातमञ्जरी नाटिका से इसे ही धारागिरिलीलोद्यान कहा गया है। यह नाटिका मदन कवि ने लिखी थी और आज धार की भोजशाला में अपूर्ण शिलांकित है।

मेवाड़ के कुम्भलगढ़ लेख के अनुसार नागहद (नागदा) के पास भोजसर झील और धारेश्वर मन्दिर रहे। धारेश्वर नामक प्राचीन मन्दिर धार में है। धारेश्वर राजा भोज की उपाधि थी। धर्मशास्त्रों में इसके उल्लेख हैं।

राजा भोज के अपने ज्योतिष् सम्बन्धी अनेक ग्रन्थ हैं। विद्वज्जनवल्लभ या प्रश्नज्ञान, प्रश्नकेरली, आदित्यप्रतापसिद्धान्त, ग्रहभाष्य, ज्योतिस्सागरसार,

राजमार्तण्ड आदि उन विभिन्न ग्रन्थों में वर्षा के योग, कूपखनन मुहूर्त आदि भी जल सम्बन्धी चिन्तन ही है। प्राचीन ग्रन्थों में भोजकृत 'मेघमाला' पुस्तक की चर्चा प्राप्त होती है। यह पुस्तक अभी ज्ञात नहीं है। परन्तु इसके नाम से ही स्पष्ट है कि इसमें मेघों तथा वर्षा सम्बन्धी चर्चा रही होगी।

राजा भोज की 'चारुचर्या' पुस्तक के कई रूप प्राप्त होते हैं। उनमें से सबसे बड़ा आकार मैसूर में सुरक्षित है। उसका एक खण्ड 'जलमंगल' नामक है। इस जलमंगल खण्ड में नदी, तालाब, सागर, पोखर, कुंआ, बावड़ी, झरना, वर्षा का सीधा जल, ओले, बर्फ सहित विभिन्न स्रोतों के जलों की आयुर्वेदिक विशेषताओं का संक्षेप में विवरण दिया गया है। यही नहीं गंगा, यमुना, नर्मदा, कावेरी, कृष्णा सहित विभिन्न नदियों के जल की भिन्न-भिन्न विशेषताओं को भी वहाँ रेखांकित किया गया है। एकत्र जल, बहते जल, पत्तों वाले जल के साथ ही मिट्टी, पत्थर, स्वर्णपात्र, रजतपात्र, ताम्रपात्र, लोहपात्र, चर्मपात्र सहित विभिन्न पात्रों के जलों की विशेषताएँ भी वहाँ बताई गयी हैं। ठण्डे, गरम, कुनकुने पानी की विशेषताएँ भी बताई गयी हैं। यहीं नहीं नारियल आदि फलों के पानी की विशेषताओं की भी चर्चा की गयी है। काली, भूरी, सफेद वर्ण की मिट्टी वाला पानी या खारे पानी की मिट्टी के पानी की विशेषताओं की वहाँ चर्चा की गयी है। उसमें कहा गया है कि काली भूमि के पानी के सेवन धातुवर्धन और श्वेतभूमि का पानी अम्ल और पित्त करता है। लालभूमि के पानी से श्लेष्म होता है। सब वर्णों वाली भूमि सब दोष दूर करती है।

उसमें कहा गया है कि अशान्ति में पानी नहीं पीना चाहिए। अल्पाग्नि या गुल्मी लोगों को थोड़ा पानी पीना चाहिए। पाण्डुरोग, अतिसार, अर्श, ग्रहणी दोष वालों को भी थोड़ा पानी पीना चाहिए।

नाम्बुपेयमशक्तौ वा स्वल्पमत्याग्निुल्मिभिः ।

पाण्डुरोगातिसाराशो ग्रहणीदोषशोभिभिः ॥124

नदी का, नये मिट्टी के घड़े का, धूप से गरम, रात में चन्द्रकिरणों या चाँदनी में रखा, मन्दपवन से हिलने वाला, विभिन्न मणियों से शीतल के साथ ही कमल, गुलाब, केवड़ा से सुगंधित पानी, इलायची, खसखस, चन्दन, मृणाल, कपूर आदि के जल की विशेषताओं की चर्चा भी की गयी है। गंगा के पानी की अनेक विशेषताएँ

बताते हुए अन्ततः कहा गया है कि गंगाजल पाप दूर करता है, त्रिदोष नष्ट करता है, पित्त नष्ट करता है, वह हल्का और शीतल होता है। वह कान्ति लाता है, समस्त मल दूर करता है, रोचक, शक्तिवर्धक और मनोहर होता है।

गङ्गाजलं पापहरं त्रिदोषान् निहन्ति पित्तं लघु शीतलं च ।

सुकान्तिकृत्सर्वमलापहारि रुचिप्रदं नृष्यप्रदं मनोज्ञम् ॥86

पानी के ही अन्य रूप, विभिन्न पशुओं के दूधों की भी इसी प्रकार राजा भोज ने जल विशेषताओं की चर्चा की है।

राजा भोज के अनुसार भोजन के पहले पानी पीने से भूख की आग्निक्षीण होती है और दुबलापन आता है, मध्य में पानी पीने से अग्नि बढ़ती है और अन्तमें श्रेष्ठ रसायन है। अधिक पानी पीने से अन्न नहीं पचता, पानी न पीने से भी वही दोष होता है। इसलिए पाचन अग्नि बढ़ाने के लिए थोड़ा थोड़ा पानी बार बार पीएँ। प्यास लगने पर खाना नहीं, भूख लगने पर पानी नहीं पीना। प्यासा रहने से गुल्म (तिल्ली) हो जाती है। भोजन के बाद धोये हुए गीले हाथ आँखों पर लगाने से नेत्ररोग दूर होता है।

इसी प्रकार राजा भोज जल सम्बन्धी बहुविध विवरण, उपयोगिताएँ, विशेषताएँ अपने भिन्न-भिन्न ग्रन्थों में जनहित में बताते रहे। यहाँ तक कि अर्त्तनाविधि में दान, तर्पणआदि जल के प्रयोग के भी उन्होंने संकेत किये हैं। यह सब इसलिए की राजवर्ग के साथ ही समाज भी उससे लाभान्वित हो सके।

परिशिष्ट (क)  
नगर-लक्षणम् नगर निवेशश्च

नगरनिवेशे

आद्यस्तु निगमः प्रोक्तस्कन्धावारो द्वितीयकः ।  
द्राणकस्तु तृतीयस्याच्चतुर्थः कुब्जको मतः ॥  
पट्टणं पंचमं षष्ठशिविरस्तु प्रकीर्तितः ।  
.....चारस्सप्तमो वाहिनीमुखः ॥  
यत्रास्ते नगरे राजा राजधानीं तु तां विदुः ।  
शाखानगरसंज्ञानि ततोऽन्यानि प्रचक्षते ॥  
शाखानगरमेवाहुः कर्वटं नगरोपमम् ।  
ऊनं कवंटमेवेह गुणैर्निगम उच्यते ॥  
ग्रामः स्यान्निगमादूनो ग्रामकल्पो गृहस्त्वसौ ।  
गोकुलावासमिच्छन्ति गोष्ठमल्पं तु गोष्ठकम् ॥  
उपस्थानं भवेद् राज्ञां यत्र तत् पत्तनं विदुः ।  
बहुस्फीतवणिग्युकं तदुक्तं पुटभेदनम् ॥  
विधाय कुटिका यत्र पत्रशाखातृणोपलैः ।  
पुलिन्दाः कुर्वते वासं पल्ली स्वल्पा तु पल्लिका ॥

नगरं वर्जयित्वान्यत् सर्वं जनपदः स्मृतः ।  
नगरेण समं कृत्स्नं राष्ट्रं देशोऽथ मण्डलम् ॥  
राजमार्गः शुभः कार्यो मध्यमं वंशमाश्रितः ॥  
कार्यो ज्यायसि(च) ज्यायांश्चतुर्विंशतिकः करः ।  
विंशत्या मध्यमे मध्योऽधमे षोडशकोऽधमः ॥  
बलस्य चतुरङ्गस्य पौराणां पार्थिवस्य च ।  
असम्बाधसमश्चैष कार्यो यं काश्मशकरैः ॥  
महारथ्याद्वयं कार्यं तदुपान्तस्थवंशयोः ।  
तद् द्वादश दशाष्टौ स्यात् करान् ज्येष्ठादिकं त्रिषु ॥  
पद्ममध्यगतं कार्यं यानमार्गचतुष्टयम् ।  
ज्येष्ठादिषु पुरेष्वेवं तत्पथं च चतुःकरम् ॥  
उपरथ्या महामार्गस्यार्धं वा द्विशताधिकम् ।  
शेषा रथ्यास्तदर्धेन विधातव्याः प्रमाणतः ॥  
यानमार्गचतुष्कस्य कार्यो पार्श्वद्वयाश्रितौ ।  
पदाष्टकपदान्तस्थौ द्वौ द्वौ जडापथावपि ॥  
पुरे ज्येष्ठे त्रिहस्तौ तो मध्यमेऽर्धकरोज्जितौ ।  
मध्यमादर्धहस्तेन हीनौ स्यातां कनीयसि ॥  
पुरस्यान्तर्गतौ कार्यौ घण्टामार्गौ तथापरौ ।  
राजमार्गगुणोपेतौ प्रमाणेन च तद्विषौ ॥  
प्राक्प्रत्यगायताः सप्तदश मार्ग इतीरिताः ।

पुर-निवेश (नगर-निवेशे ग्राम-निवेशे वा) जातिवर्णाधिवासः-  
विभागाश्च प्रमाणं च लक्षणं चादिमस्य यत् ।  
जातिवर्णाधिवासश्च यथावत् तदिहोच्यते ॥  
सुवर्णकारानाग्नेय्यां तथा वहन्युपजीविनः ।  
निवेशयेत् कर्मकरानन्यानपि विधानवित् ॥  
वैश्यानामकक्षधूर्तानां चक्रिकाणां च दक्षिणे ।  
नटानां नर्तकानां च गृहाणि विनिवेशयेत् ॥

निवेशयेत् सौकरिकान् मे(यी?षी) कारान् मृगच्छिदः ।  
 कैवर्तान् नैऋताशायां दमनाधिकृतांस्तथा ॥  
 रथेषु कौशलं येषां येषां स्यादायुधेषु च ।  
 वारुण्यां दिशि तान् सर्वान् पुरस्य विनिवेशयेत् ॥  
 कर्मस्वधिकृता ये च ये चापि परिकर्मिणः ।  
 शौण्डिकाये च तान् सर्वान् वायोर्दिशि निवेशयेत् ॥  
 यतीनामाश्रयान् ब्रह्मवासानां तथा सभाम् ।  
 प्रपाश्च पुण्यशालाश्च कुर्याद् दिशि धनेशितुः ॥  
 घृतविक्रयिणो ये च फलविक्रयिणश्च ये ।  
 निवेशिताः प्रशस्यन्ते पुरस्येशानदिग्गताः ॥  
 पूर्वभागे बलाध्यक्षान् राज्ञो मुख्यांस्तथा बले ॥  
 निवेशयेत् तथाग्नेय्यां बलं नानाविधं सुधीः ॥  
 श्रेष्ठिनो दक्षिणशालायां तथा देशमहत्तरान् ।  
 याम्येकहारान् (श्च) कुर्वीत तथा ककुभि नैऋते ॥  
 कोशपालमहामात्रादेशिकान् कारुकानपि ।  
 नियामकांश्च कुर्वीत सलिलाधिपतेर्दिशि ॥  
 वायोः ककुभिः कुर्वीत दण्डनाथम् सनायकान् ।  
 पुरोहितज्योतिषिकानुचरस्यां विवेशयेत् ॥  
 विप्राः सौम्या दिशो भागे क्षत्रियाः शक्रदिग्गता ।  
 वैश्यशूद्रास्तु कर्तव्या दक्षिणपरयोः क्रमात् ॥  
 निधेया वणिजो वैद्यास मुख्याश्चापि चतुर्दिशम् ।  
 चतुर्दिशं विशेषेण स्थापयीत बलानि च ॥  
 नगरस्य वहिः प्राच्यां लिङ्गस्थान् विनिवेशयेत् ।  
 श्मशानानि तथा तत्स्थान् याम्यायां स्थपतिः सुधीः ॥  
 पुरनिवेशे देवतायतनानि आरामोद्यानादीनि च  
 निवेशनानि कुर्वते त्रिदशानां यथाक्रमम् ।  
 नगराभिमुखं चित्रवनभाञ्जि शुभानि च ॥

याम्योत्तरायतं वंशं विकल्पपुरमध्यगम् ।  
 वहिरन्तश्च कुर्वीत देवानां विनिवेशनम् ॥  
 प्राच्यां प्रत्यङ्मुखान् कुर्यात् प्राङ्मुखांश्चाम्बुभृद्दिशि ।  
 याम्योदक्पाश्वर्योस्तस्य प्रादक्षिण्येन वंशगान् ॥  
 दक्षिणास्यां न कुर्वीत त्रिदशानप्युदङ्मुखान् ।  
 चैत्यशान्तिसभायक्षमातृप्रमथयान्विताः (?) ॥  
 इत्यमी कथिताः सम्यग् ये यथादिङ्मुखाः सुराः ।  
 दिक्षु दिक्षु बहिर्येस्युस्तानिदानीं प्रचक्ष्महे ॥  
 विष्णोर्दिनाधिनास्थय सहस्रनयनस्य च ।  
 धर्मस्य च विधातव्यं दिशि प्राच्यां निकेतनम् ॥  
 सनत्कुमारसावित् योमेरुतां मारुतस्य च ।  
 पूर्वदक्षिणदिग्भागे विदधीत निकेतनम् ॥  
 गणेशमातृभूतानां याम्ये प्रेतपतेर्गृहम् ।  
 भद्रकाल्याः पितृणां स्याद् वेश्म चैत्यं च नैऋते ॥  
 सागरस्य नदीनां च शिल्पिभर्तुः प्रजापतेः ।  
 निलयं पश्चिमाशायां विदध्याद् वरुणस्य च ॥  
 फणिनां भवनं कार्यमपरोत्तरदिग्गतम् ।  
 शनैश्चरस्य चात्रैव कात्यायन्याश्च मन्दिरम् ॥  
 विशाखस्कन्दसोमानां तथा यक्षाधिपस्य च ।  
 पृथक्पृथग् विधातव्याः प्रासादाः सौम्यदिग्गताः ॥  
 जगद्गुरोर्महेशस्य श्रियो वेह्वश्च मन्दिरम् ।  
 पूर्वोत्तरस्यां ककुभि प्रविधेयं मनोरमम् ॥  
 नदीनाम्बुधीनां च समन्तान्नगरस्य च ।  
 कान्तारेष्वद्रिषु स्थानं सर्वश्रेष्ठमुमामपतेः ॥  
 निवेश्यन्ते स्वदिग्भागेष्वेवं यस्मिन् सुरोत्तमाः ।  
 सम्यवसमृद्धेमासाद्य चिरं नन्दति तत्पुरम् ॥

नगरस्य विदूरेऽपि ककुप्सु निखिलास्वपि ।  
 बाह्यतोऽभिमुखा देवाः शस्यन्ते न पराङ्मुखाः ॥  
 क्रियते यदि भूभागे वंशेन स पराङ्मुखाः ।  
 विधिमेतं तदा तस्मिंस्तज्जः शास्त्रोक्तमाचरेत् ॥  
 तद्वेषवर्णभूषास्रवाहनैरन्वितं सुरम् ।  
 तद्भिक्तौ प्रकटाकारं नगराभिमुखं लिखेत् ॥  
 वैकङ्कतशमीबिल्वैः क्षीरकण्टकिभिर्द्रुमैः ।  
 उदपानाग्न्यगारेषु स्यान्न दोषोऽन्तरास्थितैः ॥  
 अर्चाश्रितेष्वयं प्रोक्तो विधिर्नालेख्यवर्तिषु ।  
 कर्तव्याः सर्वतोवक्त्रास्तस्माश्चित्रगताः सुराः ॥  
 विधानं यद् यथा प्रोक्तं सुधाग्नां पुराद् वहिः ।  
 तत् तथाभ्यन्तरेऽपि स्यात् कार्यं स्वस्वदिगाश्रयम् ॥  
 मध्ये पुरस्य कर्तव्यं गृहमम्भोजजन्मनः ।  
 निवेशनं तथेन्द्रस्य तथैव हलिकृष्णयोः ॥  
 मातृयक्षगणाधीशान् शिवकान् भूतसङ्घकान् ।  
 विनापि वेश्मभिः कुर्यात् पुरे चत्वरमार्गगान् ॥  
 राज्ञा वर्णाश्रमकलापण्यशिल्पोपजीविनः ।  
 स्वदिक्पदस्थाः कर्तव्यास्ते देवाश्चेच्छता श्रियम् ॥  
 प्रासादे सति भक्तीच्छाशक्तियुक्तो यदापरम् ।  
 प्रासादं कारयेत् पूर्वं न तदा पीडयेत् सुधीः ॥  
 प्रतिवेश्म प्रतिग्रामं प्रतिदेवकुलं तथा ।  
 कुर्यात् प्रतिपुरं चापि न प्राङ्मानगुणाधिकम् ॥  
 पूर्वप्रासादतो रुद्रसोमयोर्ब्रह्मणोऽथवा ।  
 प्रासादे विशितेऽन्यस्मिन् भवेत् पीडाग्रजन्मनाम् ॥  
 कृते धाम्न्यधिकेऽन्यस्मिन् बह्वेर्वाचस्पतेरुत ।  
 पुरोधसां भयं विद्याद् ध्रुवं ज्योतिर्विदां तथा ॥

धनाधिपामराधीशयमानां वरुणस्य वा ।  
 खेटकेषु च सर्वेषु सामान्योऽयं विधिः स्मृतः ॥  
 अधिकं विहिते धाम्नि भयं विद्यान्महीपतेः ॥  
 स्कन्दधाम्नोऽधिकेऽन्यस्मिन् विहिते तस्य वेश्मनि ।  
 सेनापतेर्बलानां च पीडा स जायते ध्रुवम् ॥  
 प्रजापतेरम्यधिकं हरेर्वान्यत् कृतं गृहम् ।  
 कर्तुः कारयितुश्च स्याद् वधाय च विनष्टये ॥  
 गणेशयक्षफणिनामधिकोऽन्यः कृतो यदि ।  
 प्रासादः स्यात् तदा नित्यं सेनाङ्गानां महोदयम् ॥  
 स्त्रीनाम्न्यो देवतास्तासां पीड्यन्ते यदि वेश्मभिः ।  
 मुख्यानां पुरनारीणां तदा कुर्वन्त्युपद्रवम् ॥  
 पूर्वामरेषु सर्वेषु पीडितेष्वमरालयैः ।  
 अन्यैस्तल्लिङ्गानां पीडा चैत्यर्वा चैत्यपीडितः ॥  
 हीनाधिकप्रमाणेषु दुर्निविष्टेषु धामसु ।  
 कर्तुः कारयितुः पीडा स्यान्न पूजा तथास्य च ।  
 पुरं चानाश्रितं कुर्याद् वैधभागाश्रितं न च ॥  
 ज्येष्ठमध्यकनिष्ठानि नवषट्त्रिपदान्तरे ।  
 सुरवेश्मानि कुर्वीत दोषायापरथा पुनः ॥  
 कथितोऽयं विधिः स्वैः स्वैस्त्रिदशानां निवेशने ।  
 बहिर्निवेशनात् स्वेच्छं विदध्यादमरालयम् ॥  
 नगरेषु समग्रेषु ग्रामेषु निखिलेषु च ।  
 खेटकेषु च सर्वेषु सामान्योऽयं विधिः स्मृतः ॥

आरामोद्यानानि

एवं संशोध्य परिखात्रितयं परितोऽश्मभिः ।  
 विधेयमिष्टकाभिर्वा सम्यग्बद्धतलं स्थिरम् ॥  
 सिरावारिभिरापूर्णं पूर्णं वागामिनाम्भसा ।  
 विचित्राब्जमनोहारि ससंग्राहाम्बुनिर्गमम् ॥

सर्वपार्श्वेष्वथैतस्य गन्धान्धमधुपाङ्गनाम् ।  
सुमनोविटपारामान् कुर्याद् वासान् समुत्सुकान् ॥  
बाह्यभागं पुनस्तस्य विदध्यात् सर्वतो दिशम् ।  
द्रुममूलैर्लताजालैः कण्टकैरपि संवृतम् ॥

पुराणां प्रकारादिविन्यासः

घण्टामार्गप्रमाणेन घण्टामार्गस्य बाह्यतः ।  
समन्ततो वप्रभुवं स्थापयेत् तद्विधानवित् ॥  
महारथ्याप्रमाणेन तद्भूमेर्बाह्यतस्ततः ।  
व्यासखातान्तरैः सार्धं विधेयं परिखात्रयम् ॥  
खातोद्पादोज्झितं कार्यं स त्र्यंशेनार्थतोऽपि वा ।  
व्यासतः स्यादशेषेणमूलतस्तद्वदेव तत् ॥  
कुर्याद् वप्रं स्वभूभागे परिखोत्खातया मुदा ।  
सोत्सङ्गं गजपृष्ठं वा गोत्रीयपदताडितम् ॥  
खातोद्वृत्तमृदा वप्रनिर्माणाधिकथा ततः ।  
भूप्रदेशान् पुरा निम्नानापूर्वसमतां नेयत् ॥  
एवं संशोध्य परिखात्रितयं परितोऽश्मभिः ।  
विधेयमिष्टकाभिर्वा सम्यग्बद्धतलं स्थिरम् ॥  
सिरावारिभिरापूर्णं पूर्णं वागामिनास्भसा ।  
विचित्राब्जमनोहारि ससंग्राहाम्बुनिर्गमम् ॥  
सर्वपार्श्वेष्वथैतस्य गन्धान्धमधुपाङ्गनाम् ।  
द्रुममूलैर्लताजालैः कण्टकैरपि संवृतम् ॥  
वप्रोर्ध्वभागं मध्यं स्थूलोपलशिलाचितम् ।  
कुर्यात् प्राकारमुद्दामं यथा पक्वेष्टकामयम् ॥  
ज्यायान् करैर्द्वादशभिर्दशभिर्मध्यमः स्थितः ।  
कनीयानष्टभिर्हस्तविस्तारः स्यात् त्रिधेत्यसौ ॥  
उच्छ्रायः सप्तदशमिः करैर्ज्यायन् प्रशस्यते ।  
मध्यमः पञ्चदशभिस्त्रयोदशभिरन्तिमः ॥

उर्ध्वं न सप्तदशकान् त्रयोदशकादधः ॥  
प्राकारोच्छ्रायमिच्छन्ति नापि युग्मकरोन्मितम् ।  
हस्ते हस्ते लद्वन्द्वमायतः सम्यगुच्छ्रयात् ।  
यस्य वा द्वादशकरा मूले भवति विस्तृतिः ॥  
चतु (रसोर्हस्तो) च्छ्रितस्तस्य शिरः स्याद् दशविस्तृतम् ।  
हस्तोच्चं कपिशीर्षं स्याद् द्विहस्ता काण्डवारिणी ॥  
कार्याः कर्णाश्रितैर्द्वारिकर्णान्तस्थश्च संयुताः ।  
प्राकारेऽट्टालकास्तस्मिन् दिक्षु दिक्षु चतुर्दिशम् ॥  
द्विभौमांश्चरिर्कोर्ध्वश्च प्राकारोच्छ्रायविस्तृतीन् ।  
तदर्धं निर्गमान् कुर्यात् ससालाट्टालकानथ ॥  
शतं शतं स्यादद्वस्तानां मिथश्चाऽऽट्टालकान्तरम् ।  
इत्थं पुरमागम्यं स्यात् पच्यश्चरथदन्तिनाम् ॥  
चरिकां संचरद्वारां सुखारोहां सवेदिकाम् ।  
ससोपानां सनिर्यूहां कुर्यात् सकपिशीर्षकाम् ॥  
राजमार्गमहारथ्यासंश्रितानि चतुर्दिशम् ।  
त्रीणि त्रीणि विधेयानि पुरे द्वाराणि तद्द्विवधा ॥  
राजामार्गमहाद्वारचतुष्कं विस्तरान्त्व ।  
अष्टौ सप्त करानोर्व्यां द्विगुणं त्रिकरोच्छ्रितम् (?) ॥  
महारथ्याश्रयं द्वारं तत् षट्पञ्चचतुष्करम् ।  
उच्छ्रयात् सार्धसार्धकैर्हस्तोनं विस्तरेण तत् ॥  
कुर्यात् प्रतोलीः सर्वेषु महाद्वारेष्वथो दृढाः ।  
दृढार्गलाश्चेन्द्रकीलाः कपाटपरिघान्विताः ॥  
राजमार्गसमा शाला स्यात् प्रतोलीविनिर्गमा ।  
तदर्धं कोष्ठकान्तः स्याद् व्यासोऽध्यर्धं तयोः स्मृतः ॥  
चतुरश्रमिति नयस्य प्रतोली वदनायताम् ।  
व्यासतस्त्रयशविन्यस्तमार्गा भूषाद्वयान्विताम् ॥

अन्तर्भित्तौ चतुरर्दरं महाद्वारेण सम्मितम् ।  
 विकल्पकोष्ठकान्तेषु दारुभिस्तद् विभूषयेत् ॥  
 द्वारे चोभयतः शाले द्वे द्वारे च भूषयोः ।  
 ते कार्ये सम्मुखे व्यासाद् द्विकरे द्विगुणोच्छ्रिते ॥  
 (ष?त) द्वारमूषयोः पट्टमध्यं पञ्चकरोच्छ्रितम् ।  
 तद्वत् कार्या द्वितीया भूद्वारशेषोदयोच्छ्रिता ॥  
 बहिर्द्वारविनिर्मुक्तां पूर्ववत् तां प्रकल्पयेत् ।  
 पुरः संरोधनसहंगंवाक्षेग्रतो युताम् ॥  
 तलं तलो महाद्वारस्योर्ध्वे बध्वा तृतीयकम् ।  
 रोधनद्वारयुग्मसंयुक्तं सपरिक्रमम् ॥  
 सन्नयस्तस्तम्भवेद्यन्यदूर्ध्वं तस्योपकल्पयेत् ।  
 व्यालजालशतघ्नस्रशस्त्रयन्त्रादिभिर्युतम् ॥  
 वृद्धिशोभाभिगुप्तयर्थं पुरस्य प्रविकल्पयेत् ।  
 बृहद्द्वाराणि परिस्रितलाभिः प्रतोलिभिः ॥  
 प्रतोल्या दक्षिणाद् भागादुच्छ्रितो वामतो गतः ।  
 यावद् द्वितीयं तत्पार्श्वमेकः कार्यो बहिः स्थितः ॥  
 द्वितीयो वामभागात् तु निर्गत्यास्यैव वेष्टकः ।  
 कार्यः स्यादातदुत्थानात् प्राकारस्तस्य बाह्यतः ॥  
 एतयोरन्तरालं च राजमार्गेण सम्मितम् ।  
 कर्तव्यं स्यादिहैवं तु वक्त्रद्वारमुत्तमम् ॥  
 दृष्ट्वा दृष्टवोपभोगार्हन् सरिन्नीरैर्जलाशयान् ।  
 पक्षद्वाराणि कुर्वीत स्वेच्छया तत्र तत्र च ॥

- समरांगणसूत्रधार

परिशिष्ट (ख)  
 राजाधिराज भोजदेवविरचिता शृङ्गारमञ्जरीकथा  
 (धारानगर्या वर्णनम्)

अस्त्यत्र निखिलभुवनैकललामभूता-द्भुतनिजविभवापहस्तित-  
 त्रिदशनगरीविभूतः प्रतिनिशमुतुङ्गसौधचन्द्रशालासञ्चारिपौररमणीवदनेन्दुसहस्रै-  
 केन्दुबिम्बमुपहसन्तीव दिवमुल्लसद्विमलस्फटिकोपलवेश्मरश्मिसन्तानः  
 स्फुरन्मरकतमणिप्रासादमयूखजालकंश्च निसर्गविरुद्धयोरपि तमश्चन्द्रिकयोः  
 प्रतिविपणीमैत्रीमिव सम्पादयन्ती, विपुलवियद्विलङ्घनश्रमखिन्नवपुषां  
 रविरथतुरङ्गमाणां प्रतिसौधमनिलचटुलैर्ध्वजपटपल्लवव्यजनैः खेदसलिमिव  
 व्यपनयन्ती, जीवितमिव वसन्धुरायाः, सारामिव संसारस्य, सर्वस्वमिव विश्वस्य,  
 विश्वासस्थानमिव सकलसम्पदाम्, आवासभूमिरिव विलासश्रियाम् आभरणमिव  
 भुवः, आश्रय इव च त्रिवर्गस्य, सर्गशालेव निसर्गकमनीयकामिनीजनस्य, प्रधानं  
 निधानमिव रामणीयकस्य, निखिलजनलोचनानाममृतरसधारा धाराभिधाना नगरी ।

यस्यां च पाण्डुःस्फटिकवेश्मनामुन्मुखश्चयो विशराभः सुभद्राभिरामम-  
 र्जुनमजनयद्विशां चक्रवालम् । यस्यां न संवर्ग्यते मरकतमणिकुट्टिमैः, विच्छिद्यते  
 स्फटिकप्रासादभूमिभिः, जर्जरीक्रियते कनकसोधोत्सङ्गैः, निपीयते पौरनारीवदनेन्दु-  
 चन्द्रिकाभिः, आप्याय्यते वातायनोद्गतागुरुधूपधूमजालैः, उपचीयत इवोपवनैः,  
 छिद्यत इव जयकुञ्जर-दशनकिरणविसरैः, निधीयत इवेन्द्रनीलमणिभूमिगृहकेषु  
 प्रतिरजनि तमः ।



यस्यां च सौधोत्सङ्गेष्वरुणमणिकुट्टिमसङ्क्रान्ताः शशधरमरीचयः सौगन्धिक-  
वनभ्रान्तिः प्रतिनिशमुत्पादयन्ति मुग्धवनिताजनस्य । या चोल्लसन्तीभिरमलस्फटिक-  
प्रासादपरम्परा-कान्तिभिरुपहसतीव त्रिभुवनेऽपि पुरातनान्यखिलनगरसंनिवेशस्थानानि  
या च सस्पृहमाललोकयतः प्रासादमयमिव भुवनतलं केवलम्, सौधमय इव नूतनः  
सर्गावतारः, विधेद्वीर्घिकामयमिव महीमण्डलम्, उपवनमयमिव दिशां चक्रवालम्,  
पताकामयमिव गगनाङ्गणं प्रतिभासते जनस्य ।

यस्यां च जातप्ररोहा इव रुक्मनियूहिषु, प्ररूढकाण्डा इव कार्तस्वरकेतुदण्डेषु,  
पल्लविता इव स्फुरदरुणमणिवेश्मशिखरशिखाशयेषु, कुसुमिता इव निर्मितारुण-  
मणिगणासु काञ्चनहंसपालिषु, फलिता इव प्रोल्लसदष्टापदघटितप्रासादकनकाण्ड-  
पिण्डकेषु, दिवापि ज्योत्स्नायन्ते स्फटिकोपलभित्तिभागेषु निपत्योच्छलन्तः,  
स्थलनलिनायन्ते सङ्गत्योद्भवन्तः कुरुविन्दमणिमेदिनीषु, कैरवायन्ते विमलमुक्ता-  
फलविटङ्कवेदिकासु निपत्य व्यावर्तमानाः, नीलोत्पलायन्ते शक्रनीलमणिचन्द्र-  
शालासु संमूर्च्छन्तः, बालातपायन्ते विद्रुमरचितासु क्रीडाभवनभूमिषु, दीप्यन्त इव  
कनकसौधशिखरोत्सङ्गेषु सङ्क्राम्योल्लसन्तः, निर्वान्तीव गारुत्मतरत्नवलभिकासु,  
आच्छाद्यन्त इव कालागुरुधूपधूमपटलेषु, नगरीसंरक्षणार्थमभितः समुत्पादित-  
सुरचापसहस्रा इवान्योन्यव्यतिकरितविचित्रभवनमणिरीचिसञ्चयैः प्रतिदिवसम-  
हिमकरगभस्तयः ।

यस्यां तुङ्गसौधोत्सङ्गसङ्गिनीनामङ्गनानां मणिवलयझात्कारसंवलितं सङ्गीत-  
ध्वनितमाकर्ण्य च स्तिमिततां भजित हरिणे गमनपर्याकुलो भवति प्रतिरजनि  
रजनिकरः । तासामेव नृत्तवशविसंस्थुलोन्नमितभुजलतानां मणिकङ्कणकिरणरज्जु-  
भिर्वन्धखेदमननुभूतमनुभाव्यत इव लाच्छनकुरङ्गः ।

या च तुहिनशैलेनैव प्रालेयधवलेन, दशकन्धरेणेव स्वलितर्क्षराजेन,  
विन्ध्याचलेनेवनिरुद्धतपनमार्गणे, सर्व्वजो विचित्रमणिकान्तिसन्तान-  
वसंवलितनिजतटभोगेन, पुरीरक्षार्थमिव सततमधिज्येन, आखण्डलकार्मुकेणेव  
परिमण्डलतामुपगतेन विततघनकपाटोपशोभिता-भिरनेकजनसहस्रसङ्कुलाभिः  
पुरीवलोककुतूहलादुपगताभिर्द्विग्भिरिवा.....भिश्चतसृभिः प्रतोलिभिः सनाथीकृतेन  
त्रिभुवनेऽप्यसदृशाकारेण प्राकारेण वलयिता ।

या च क्वचिदुत्तुङ्गशीर्षकप्रान्तोल्लसद्वहलपुष्परागकिरणविसरैः सम्पादित-  
दिनच्छायतया सदैवावियुक्तचक्र वाकमिथुनया सदैवोत्फुल्लमलखण्डया, क्वचित्  
प्राकारमरकतमणिभाजालबहलान्धकारजनितरजिनभ्रमतया सदैव विकसितनी-  
लोत्पलवनया, क्वचिदरुणमणिविनिर्मित शालाट्टालकमयूखच्छुरितसलिलत-  
यामज्जत्पुरविलासिनीकुचकलशकुङ्कुमारुणितयेव, क्वचित् सङ्क्रान्तस्फटिक-  
शालवलयप्रतिबिम्बतया नगरीविलोनकुतूहलाकुलितनिर्यच्छेषयेव परिख्या  
परिक्षिप्ता ।

यस्यां च विकचकमलकुमुदकल्हारेन्दीवरपरागपुञ्जपिञ्जरित पर्यांसि  
सजनमनांसी-वातिस्वच्छानि, दुर्जनमनांसीव दुरवगाहानि, उदृण्डपुण्डरी-  
कखण्डोद्दीनमधुकरमधुरझङ्गारहारीणि, क्रीडामज्जतपुरजनविलासिनीकुचल-  
कलशगलितमलयजरसामोदरसुरभीणि, सौगन्धिकगन्धलुब्धमधुकरश्रेणिश्याम-  
लितोपान्तभागानि, स्फटिकमणिकशिलासुस्नानागतपौरनारीजन-प्रतिबिम्बतया  
जलक्रीडार्थमुन्मज्जन्तीभिः पातालकन्यकाभिरिवाधिष्ठितानि, प्रतिरजनिमदनालस-  
चक्रवाककामिनीभिः प्रियतमभ्रान्त्या सस्पृहमालोक्यमाननिजप्रतिबिम्बकानि,  
मकुलितकुमुदकोशकोटरान्तनिनीनमधुकरतया दिवसकरभयात् प्रतनुतां  
गतेनान्धकारेणेव संश्रितानि, भूरुहकमलिनीदलच्छायानिलीनाभिर्मरामालिका-  
भिर्द्दिनकरकरोपर्द्भीताभिर्विकचकुमुदकान्तिभिश्चन्द्रिकाभिरिव निषेव्यमाणो-  
पशल्यकानि, अगाधातिस्वच्छसलिलान्तदृश्यमानसफरग्रासृधनुतया मुहुर्मुहुर्दृत्त-  
विफलफालस्तदप्राप्त्या वञ्जमानैर्मुग्धबककुलैरपसेव्यमानानि, सविषाण्यस्वादूनि,  
प्रवृद्धान्यपि समकरचिह्नानि, सकमलान्यप्यकमलानि, द्विधापि शतपत्राधिष्ठितानि,  
द्विधापि सवनानि, द्विधापि कुवलयमनोहारिणि, द्विधापि विततानि, क्वचिद्विकसितो  
दण्डपुण्डरीकरुण्डतया हसन्तीव, क्वचिदमन्दमारुतान्दोलितोदृण्डरक्तोत्पलतया  
नृत्यन्तीव, क्वचिद्वीचिवलयान्तर्गतविकचेन्दीवरतया सभ्रक्षेपात् कटाक्षाक्षीषून्  
विक्षिपन्तीव, क्वचिदनल्पलहरीसंघट्टजर्जरितसलिलघोन्मृष्टसीकरासारतया  
धूलिमुत्सुजन्तीव, क्वचिदुभयतो वर्तमाननिबिडमारुताभिघट्टिततरङ्गोद्भट-  
ध्वनितेनारटन्तीइत्यमुन्मत्तचेष्टिममिवानुकुर्वन्ति सरांसि ।

यस्यां च क्रीडापुष्करिणीवीरविलासोद्यानप्रभृत्यनेकरमणीयसंनिवेशायां

नन्दनवनमध्यवर्तितिवमलमणिनिर्मितासु पर्यन्तभित्तिषु प्रतिफललितमूर्तितया दिवसकरतापभियेवातिसकुमारान् शरणागतानन्तः प्रवेश्यारक्षदिवोपवनपादपान्, अनेकधारासहस्रसम्पातजन्मना परितः समुत्सर्पता शैत्येनावरतभङ्गभयाद् दूरादेव प्रविशतो जनस्याभ्युत्थानमिव प्रतिदिशं कुर्वाणम्, उपरितनविटङ्कवेदिका-स्वभिसमुल्लसन्तीभिर्मरकतमणिकान्तिभिर्दूरत एव निखिलभुवनसन्तापकारिणां तपनजेसां विनिवारणाय वियति वारिदवृन्दानीव निर्मापयदसितमणिनिर्मित-योरुभयभागयोर्द्वारस्य प्रतिबिम्बितो (?) विपिनपल्लवव्याजात् प्रविशतो जनस्य सन्तापज्वलनमाच्छिद्य बहिरिव स्थापयत्, सव्यापाराभिरचितमणियन्त्रपुत्रिकाभिः पुरातनस्य वैधसस्त्रिभुवनेपि सृष्टिप्रञ्चमिवोपहसत्, आस्थानभवनमिव वरुणस्य, सङ्केतनिकेतनमिव शिशिरसमयस्य, मङ्गलगृहमिव हिमाचलस्थलीदेवतानाम्, अस्तमयप्रवृत्तिस्थानमिव प्रावृषः, उत्पत्तिपत्तनमिव व्यतुत्पत्तेः, सर्वस्वमिव रामणीयकस्य, विलासमणिदप्पर्णणो विदग्धतायाः, बाहेयक (?) मन्दिरं विलासानाम् अतिशिरितया कर्पूरक्षोदैरिव निर्मितम् हिमानीभिरिव विरचितम् हिमांशुशकलैरिव निष्पादितम्, गन्धाम्बुभिर्जनितातिसुरभितया च बकुलकुसुमा-मोदरिवोत्पादितम् कक्कलोलफलक्षोदैरिव निर्मितम्, लवङ्गकुसुमैरिव जनितसंनिवेशम्, एलाफलरसैरिव विहितधारम्, सर्वतः प्रसृतवारिधारासहस्रतया विधातुर्वारिमयीमिव सृष्टिं प्रदर्शयत् अगम्यं दिनकरकरणाम्, अदत्तप्रवेशं सन्तापस्य, अनभिभवनीयं विरहिजनाकल्पकस्य, दुःप्रेक्ष्यं विरहिणीविरहदावदहनस्य, शैत्यस्यापि शिशिरोपचारस्थानम्, सुखानामपि सुखायतनम्, रामणीयकस्यापि रामणीयकम्, सर्वतः समुद्गतानां परस्परप्रहतिविस्फटनविसृतापर्णससां धारासहस्राणां परितः समुल्लसितसीकरासारतया कर्पूरक्षोदमिव दिक्षु विक्षिपत्, चन्द्रमणिघटि-जलयन्त्रपुत्रिकानिष्यन्दहेतोर्ज्योत्स्नामवि विकिरत् मिहिकानिवहमिव, समुद्रमद्धववलयमणिमयूखसंवलितसलिलतया मलयरजसमयीरिव धाराः समुद्गरद्, विस्फुटितकमलभरीग्नोपरितनकमलिनीमृणालभङ्गेभ्यो विनिर्गतानि विसतन्तु सूत्रणीव धाराशतानि विभ्राणम्, स्तम्भस्तम्भशीर्षक पट्टसालभञ्जिकाकानां परस्परसुसंहततया सुसंस्थानतया निविडसन्धिबन्धतया च नानारत्ननिर्मितमप्ये-करत्नोपलघटितमिव भुवो निर्गतमिव कृत्रिममपि चाकृत्रिममिवोपलक्ष्यमाणम्,

निधानं वृत्तः उद्गमस्थलं सलिलधा(रा) लतानाम्, आवासभवनं भुवनश्रियः, प्रमदवनं प्रमोदस्य विकचकाञ्चनकमलकोशकोटरविनिर्गताभिस्तदंशुसंवलितमूर्तित-कारगौरीभिरम्भसो धाराभिः कुङ्कुमरसविसरामिवोत्सृजद् अरुणमणिपट्टप्रान्त-प्रवृत्तमन वरतमसृणधारासन्तानतया मु---परितः प्रालम्बानिव प्रकटयद्, उत्पत्य निपतन्तीनां सलिलधाराणां स्फुटितस्थूलानवरतनिपतज्जलकणतया अपरमिव मु- -- ताकरमुत्पादयत्, मरकतमणिप्रभाश्यामलितगगलनतया यन्त्रपुत्रकप्रहतमुरजोन्मुक्त मन्द्रमधुरध्वानतया अनवरतनिपत्सलिलधाराधकारितदिगन्तरतया च जनितजलदभ्रमान् आबद्धमण्डलान् उपवनशिखण्डिनस्ताण्डवयद्, असितमणिकान्तिजालकैरुल्लस(दिभ)र्व्यतिकारितवपुषः सकालागुरुधूपधूमा इव सलिलधाराः समुत्सृजद्, यन्त्रपुत्रिकाकरतलोद्गतताभिरम्भसो धाराभिस्त्रिभुवन-विजयोद्यतस्य स्मरनरपतेर्ज्यावल्लीसहस्राणीव निर्मापयद्, राकाशशाङ्क-मण्डलमखिलजननयननीलोत्पलानाम्, वारुणास्रसदनं मन्मथस्य, निर्वतिकेत्रमिन्द्रियग्रामस्य, खनिः सुखानाम्, आस्पदमानन्दस्य, मन्दिरं सुदरतायाः, क्वचिद् विकचकृत्रिमाभोजि-नीमध्यमध्यासीनाभिर्धवलमणिमयी-भिर्मुग्धमरालिकाभिः विकासण्डूमादिव विदस्यमानधाराजलम् क्वचिद् विकचकुमुदकाननच्छलेन हसदिव, कचित् क्रीडासारिकोल्लासितभुज-लताभिर्मणियन्त्रपुत्रिकाभिर्नुत्यदिव, क्वचिद् विकचसौगन्धिकर्णिकाभ्यर्णवर्तिभिर-सितमणिनिर्मितैर्गायदिर्भयन्त्रमधुकरमिथुनैर्गायदिव, क्वचिद् दिवापि चन्द्रातप-भ्रमातर्षतरलितमनोभिर्विवृतचञ्चुपुष्पवनचकोरकराचम्यमानस्फिट्क्स्तम्भकान्तिसन्तानम्, क्वचित् पत्रमकरिकानेत्रप्रान्तेभ्यः क्वचिदधोमुखमयूरीमुखेभ्यः, क्वचिन्मणिमययन्त्रपुत्रिकापयो-धरद्वन्देभ्यः, क्वचिन्मज्जनोत्तीर्णस्वर्णपुत्रिकानिश्चोत्य-मानकबरीवा-(लक) लापप्रान्तेभ्यः, क्वचिन्मणिमयविलासिनीनखमुखेभ्यः, क्वचित् प्रहृदितवा---क्वचित् यन्त्रवृक्षकं प्रत्याबद्धफालस्य कपिकुटुम्बकस्य वदनविवरेभ्यः, क्षितितलाद् भित्तिभोगेभ्यो भित्तिनलिनीवामल---उपरितकमलिनीभ्यो मणिपुत्रिकाभ्यः स्तम्भेभ्यः स्तम्भ-शीर्षकैश्च द्वित्रिविसिनीसूत्रतन्तुसंवलनमांसलाः सर्वतो विनि---राविभ्राणम्, अदभ्रैर्विविधमणि-कान्तिजालैरिन्द्रचापसहस्रनिर्माणार्थमपरमिव परितो

विचित्रवंशीवनमुत्पादयत्--तमणिस्तम्भोद्गतैः किरणमञ्जरीजालकैराबद्धजलरा-  
 डम्बरमन्तरान्तरोल्लसितैर्विसारिभिः शोणमणिमयूखदामभिः सम्पादिताचिरप्रभा-  
 विलसितमनवरतनिपतद्द्वारासहस्रोल्ल-सितध्वानतयान्धकारितदित्तटतया च  
 वर्षासमयमिव विडम्बयत्, क्वचिदङ्गणवापि-पुष्करिणीनामन्तरुन्मज्जन्नि-  
 मज्जन्तीभिर्बालशफरिकाभिर्विप्रलभ्यमानकृत्रिमबककुटुम्बकम्, क्वचिद्  
 निमज्जनोन्मज्जनैः दृश्यादृश्यबालयन्त्रकमठम्, क्वचिद् दिदृक्षारसकुतूहला-  
 कुलिताभिरपि मत्स्याङ्गनाभिरनिक्षिपन्तीभिश्चरणकमलमीषत्रसादिव-  
 लोक्यमानोन्मज्जद् यंत्रमकरम्, क्वचिदन्तः स्थितानां भित्तिकमलिनीकुड्मलानां  
 विकासार्थं बालातपच्छेदानिव शोणमणिकिरणजालकान्युद्वहत्,  
 परस्परप्रतिफलितमूर्तितया सम्भूयेव भारसमुद्वहद्विरन्यो-  
 न्यकल्पितावष्टम्भैर्मणिस्तरम्भरध्यासितमध्यभागम् अतिमनोरमतया कौतुकाक्षिप्त-  
 हृदयैरिवानिमेषदृष्टिभिः परितो भारपुत्रकैरप्यवलोक्यमानम्, विचित्रं तौर्यत्रिकमारचय-  
 द्विन्त्रचारैरतिविदामपि(?)चित्तभ्रममुत्पादयद्, विचित्रयन्त्रदर्शनोद्भ्रान्तचेतसो  
 भित्तिघटितविकसितसरोजव्याजादुपहसदिवातिविचक्षणानपि प्रेक्षकान्,  
 सान्द्रमृगमद-पङ्केपरुक्कलाः (?) कर्पूरक्षोदसिकतावतीरनच्छमलयजद्रवसुरभिताम्भः  
 शोणमणिमञ्जरीविसंवलितमरकमतमयूखकमलिनीवनाः परितः  
 परिसरक्रीडानदीर्बिभ्राणं यन्त्रधारागृहकमुन्मदयति मनांसि पौरलोकस्य।

यस्यां च सततातिनीलतया बहलच्छायतया चागणितदिवाकर-  
 करैस्तमोभिरिवाधिष्ठितानि, अनवरतमुद्भिद्यमानाभिनवपल्लवतया सदैव  
 पौरपुरन्धिजनावलोकनव्याप्तिभूता-नुरागैरिव तरुभिरलङ्कृतानि,  
 मधुरमधुकरझङ्कारकोलाहलच्छलेन मकरध्वजविजयराज्यघोषणमवि कुर्वाणानि,  
 कुसुमावचयार्थमितस्ततः सञ्चरन्तीभिः सततसन्निहितवनदेवतानीव  
 पौरमणीभिरुपवनानि।

परिशिष्ट (ग)  
 युक्तिकल्पतरु

अथ सामान्यतो गुणः।  
 तथाहि नीति-शास्त्रम्।

स प्रवेशापसरणं द्वन्द्वमुत्तममुच्यते।  
 अन्यत्र वन्दिशालेव न तादृग् (द्व)वन्धमाश्रयेत् ॥137॥  
 धनुर्द्वन्द्वं महीद्वन्द्वं गिरि-द्वन्द्वन्तथैव च।  
 मनुष्यद्वन्द्व-संसर्गं वरद्वन्द्वञ्च तानि षट् ॥138॥  
 अन्ये तु -  
 न द्वन्द्वं द्वन्द्वमित्याहुर्योद्ध-द्वन्द्वं प्रकीर्तितम्।  
 योद्ध-शून्यं हि यद्युद्धं मृतकाय समं हि तत् ॥139॥  
 अथान्यत्रापि -

यावत् प्रमाणं नगरं हि राज्ञाम्,  
 ततो भवेदुत्तममध्यमान्त्यम्।  
 त्रिंशच्च लक्षाष्टगुणोत्तरेण;  
 त्रिदेशजानां धरणीपतीनाम् ॥140॥

गर्गस्तु -

यदन्यद्विविधं द्वन्द्वं प्रोच्यते धरणीभुजाम् ।

ताभ्यामेवातिरिच्येत मन्त्रयुद्धं विशेषतः ॥141॥

अथ नगरनिर्माणादि-कालः ।

स्थिरराशि-गते भानौ चन्द्रे च स्थिर-भोदये ।

शुद्धे काले दिने चैव नगरं कारयेत् नृपः ॥144॥

अथास्य लक्षणम् ।

भविष्योत्तरे -

दीर्घं वा चतुरस्रं वा नगरं कारयेन्नृपः ।

तद्द्वयं बहुलम्वापि कदाचिदपि कारयेत् ॥145॥

दीर्घः पादैकप्रसरः चतुरस्रः समोचितः ।

त्रिभिः पादैः समं त्र्यस्रं वर्तुलं वलयाकृतिः ॥146॥

दीर्घं स्याद्दीर्घकालाय सुखसम्पत्ति-हेतवे ।

चतुरस्रं चतुर्वर्गफलाय पृथिवी-पतेः ॥147॥

त्र्यस्रं त्रिशक्ति-नाशाय वर्तुलं बहुरोगकृत् ।

राज्ञः स्वहस्तैर्दशभी राजहस्त उदाहृतः ॥148॥

राजहस्तैस्तु दशभी राजदण्ड उदाहृतः ।

राजदण्डैश्च दशभी राजच्छत्रमुदाहृतम् ॥149॥

राजछत्रैस्तु दशभी राजकाण्ड उदाहृतः ।

राजकाण्डैश्च दशभी राजपुरुष उच्यते ॥150॥

राज-प्रधानी (तु) कथिता दशभी राजपुरुषैः ।

राजधानी दशगुणा राजक्षेत्रमुदाहृतम् ॥151॥

सप्तैव परिमाणानि प्रोक्तानि पूरपत्तने ।

भय-श्रीभोगसम्पत्ति-मृत्युकीर्त्ति-सुखार्थिनाम् ॥152॥

राज-क्षेत्रेण नृपतिः पूर-पत्तनमारभेत् ।

लक्ष्मीर्जयः, क्षमा सौख्यं पञ्चत्वं भङ्ग एव च ॥153॥

समृद्धिर्वित्त-नाशश्च मङ्गलञ्च वलक्षयः ।

साम्राज्यभोगसम्पत्तिरिति षोडश-कीर्त्तिताः ॥154॥

यथार्थसंज्ञा नगरी मुनिना तत्त्ववेदिना ।

अथ वसति-लक्षणम् ।

विस्तीर्णमध्यो नगरः सममर्द्धे चतुष्पथः ।

प्रपामण्डलकासारकाननाद्युपशोभितः ॥155॥

ईशान-पूर्व-प्लवनः मध्यस्थान-समुन्नतः ।

रोगकृद्दक्षिण-प्लावी धनदश्चोत्तर-प्लवः ॥156॥

पश्चिम-प्लवनो ग्रामः सुख-सम्पत्ति-नाशनः ।

मध्ये निम्नो दरिद्रत्वं प्रान्ते निम्नः सुखं वहेत् ॥157॥

त्रिपथाद्राजदण्डेषु राजच्छत्रे चतुष्पथे ।

राजकाण्डे मण्डपिका सरसी राज-पुरुषे ॥158॥

राजाधान्यन्तरे हट्टं (ट्ट) राजक्षेत्रे च दुग्धकम् ।

मध्ये साधुमृदुभिषक् दैवज्ञान् वासयेदथ ॥159॥

प्रान्ते म्लेच्छान्त्यज-क्रूरवीरसैनिककर्कशान् ।

गोपुरे सैनिकान् वीरान् मन्त्रिणो भवनान्तिके ॥160॥

मन्त्रिणः प्रतिवेशित्वं कदाचिदपि नाचरेत् ।

तयोर्हि प्रतिवेशित्वे दुर्मन्त्रोऽपि च जायते ॥161॥

नियोगिनां स्थितिं कुर्यान्नगरे चान्तरेऽन्तरा ।

नियोगि-मन्त्रिणोर्दृष्टिः कार्यध्वंसाय कल्पते ॥162॥

मन्त्रिणोऽदूरवसतिः कर्म कुर्यान्न सत्त्वरम् ।

नवकं नवकद्वारं नैकद्वारं समारभेत् ॥163॥

न विषमं नाविषमं न समं नासमन्तथा ।

न मध्ये हस्तिनां वासो न प्रान्ते वाजिनान्तथा ॥164॥

नादूरे पत्ति-वसतिर्न दूरे साधु-मन्त्रिणोः ।

न वर्णिनो नाधिकाङ्गान् न हीनान् न च दुद्धतान् ॥165॥

न देशान्तरगान् नोच्चान् न महाव्याधि-पीड़ितान् ।  
 स्वपुरे रक्षयेद्राजा यदीच्छेदात्मनः श्रियम् ॥166॥  
 न भृत्य-शाला स्वपुरे न वाध्ययन-शालिका ।  
 तत्र शत्रुचरःस्थित्वा सर्व्वं वेत्ति वलावलम् ॥167॥  
 भोजेनापि नगरयुक्तिरन्यथोक्ता ॥168॥  
 तद्यथा, -  
 राज(ज्ञः)-स्वहस्तैः कोट्या च राजक्षेत्रमुदाहृतम् ।  
 एतेन परिमाणेन भूपः पत्तनमारभेत् ॥169॥  
 यस्मिन् लग्ने भवेज्जन्म महीभर्तुर्महीतले ।  
 तदृण्ड-राजक्षेत्रेण राजा पत्तनमारभेत् ॥170॥  
 एतेन मेषादिषु पादो-चतुर्दण्डादिषु मानेषु जातस्य नृपतेः ।  
 चतुर्भौ राजक्षेत्रैः पुरपत्तनमिति भोजाभिप्रायः । शेषं समानम् ॥171॥  
 पराशरसंहितायान्तु मानन्तदेव, किन्तु युक्तिरन्या । तद्यथा, -  
 यस्य ग्रहस्य जायेत दशायां नृपतिर्भुवि ।  
 दशाब्द-संहितै राज-क्षेत्रैर्नगरमारभेत् ॥172॥  
 अथ दोषगुणौ ।  
 परलग्नदशामान-मिते पर-कृतेऽथवा ।  
 नगरे यो वसेद्राजा सोऽचिरान्मृत्युमाप्नुयात् ॥173॥  
 परदारेषु यो दोषस्तथा पर-पुरीषु च ।  
 यदिच्छेच्छाश्वतीं लक्ष्मीन्तदेतत् उभयन्त्यजेत् ॥174॥  
 निज-लग्नं दशामान-मिते निजकृते नरे ।  
 नगरे यो वसेद्राजा लक्ष्मीस्तस्यैव शाश्वती ॥175॥  
 इति भोजराजीये युक्तिकल्पतरौ नगरी युक्तिः ॥  
 अथ वास्तुयुक्तिः ।  
 तत्रस्थान-निर्णयः ।  
 नदीश्मशानशैलानां वनस्य निकटे तथा ।  
 न वास्तुकर्म कुर्वीत न द्वन्द्व-नगरान्तयोः ॥176॥

तत्र दिङ्निर्णयः ।  
 राक्षसानिल-वह्नीनां यमस्य दिशि वेश्मनः ।  
 नारम्भं कारयेद्राजा भीरुगदाह-क्षयप्रदम् ॥177॥  
 तथाहि -  
 भोगः कीर्त्तिर्धनं रोगः स्थिरता च भयङ्करः ।  
 दाह इत्येष कथितो दिशि वास्तु-फलोद्भवः ॥178॥  
 भोजे च, -  
 यल्लग्ने जायते राजा तस्य लग्नस्य यः पतिः ।  
 या दिक् तस्य नृपस्तस्यां वास्त्वारम्भं समाचरेत् ॥179॥  
 एवञ्च कुजादि-पतिके मेषलग्ने  
 जातस्य नृपतेः कुजादि-पतिकायां  
 दक्षिणस्यामपि वास्तुर्न दुष्यति इति ॥180॥  
 परशरस्तु, -  
 यद्दशा-जनितो राजा वास्त्वारम्भस्तु तद्दिशि ।  
 एतेन सूर्यादि-दशा जनितस्य नृपतेः ।  
 पूर्वादि दिक्षु वास्तु-करणम् ।  
 तेन शुक्रदशायां जातस्याग्नेय्यामपि न दुष्यति ॥181॥  
 अथ लक्षणम् -  
 वास्तुं कुर्यान्महीपालः समं सुस्निग्धामृत्तिकम् ।  
 प्रागुदक्-प्लवनं रम्यं रम्य-वृक्षोपशोभितम् ॥182॥  
 लक्ष्मीर्दाहः क्षयो भीतिर्धन-नाशोऽर्थ-शून्यता ।  
 सम्पद्बद्धिरिति प्रोक्तं पूर्वादि-ककुभं फलम् ॥183॥  
 तथाहि प्लवनमन्यत्, -  
 जन्मलग्नेन दिक् पश्चाद् राज्ञां वास्तु-पुरो मतः ।  
 एतेन सूर्याधिपतिः तुलालग्ने जातस्य नृपतेः सूर्याधिपतेः ।  
 पूर्वस्याः पश्चात् पश्चिम-प्लवो हि न दुष्यति ॥184॥  
 इति वास्तुयुक्तिः ।

परिशिष्ट (घ)  
भोजदेव और उज्जयिनी

परमारों की राजधानी उज्जयिनी थी और कुल राजधानी धारा नगरी थी। राजा भोज ने अपनी राजधानी पूरी तरह से धारा नगरी को बना लिया। तब भी उज्जयिनी राजा भोज के राज्य की महत्त्वपूर्ण नगरी थी। उज्जयिनी के धार्मिक, राजनीतिक और पारम्परिक महत्त्व को भोज ने कभी बिसारा नहीं।

राजा भोज के राज्य में उज्जयिनी पश्चिम पथक के अन्तर्गत थी। भोज ने मुंज के समान उज्जयिनी नाम ही दिया है।

श्रीमदुज्जयिनी पश्चिमपथकान्तःपाति....।

सं. 1079 (1023) को देपालपुर ताम्रपत्र शृङ्गारमञ्जरी कथा (पृष्ठ 84) में बताया गया है कि अवन्तिप्रदेश में उज्जयिनी नगरी श्रीसम्पन्न थी।

अस्त्यवन्तिषु श्रीमत्युज्जयिनी नाम नगरी।

वहाँ इस नगरी को राजा विक्रमादित्य की राजधानी बताया गया है (पृष्ठ 32,33,35,42,84)। इस राजा की कुलदेवी आशापुरा का मन्दिर था (पृष्ठ 46)। उज्जयिनी के निकट से बहने वाली शिप्रा नदी का उल्लेख प्राप्त होता है (पृष्ठ 42)। वहाँ अनेक लता वृक्ष थे। वहीं पास में (पृष्ठ 88) शिवतड़ाग में सन्ध्याविधान किया जाता था। यह आजकल उज्जैन में रूद्रसागर कहलाता है।

यह तालाब अब जल से रिक्त कर दिया गया है। महाकाल और हरसिद्धि के मध्यवर्ती इस तालाब का स्कन्दपुराण में भी उल्लेख प्राप्त होता है।

वाकणकर शोध संस्थान उज्जैन के संग्रहालय में खण्डित अभिलेख के दो छापे हैं जो इस प्रकार हैं -

- (क) (1) भोजदेव कुशल  
(2) तुरुष्क विजयपर्व (णि) स्नात्व (II)  
(3) (म)हाकाल समभ्यर्च  
(4) - वाता...

दूसरे खण्डित अभिलेख के छापे में भी प्रायः ऐसा ही पाठ है -

- (1) .....भोजदेव कुशल.....  
(2) .....महमूद विजय पर्व(णि) स्नात्व.....  
(3) .....हाकाल समभ्यर्च.....  
(4) .....वाता.....

एक में तुरुष्क विजय है, दूसरे में महमूद विजय निर्दिष्ट है।

राजा भोज के इन अभिलेखों से ज्ञात होता है कि भोजदेव ने स्नान किया। यह स्नान या तो शिप्रा में किया होगा अथवा पूर्वोक्त शिव तड़ाग में। साथ ही महाकाल की अर्चना का उल्लेख भी है।

राजा भोज विभिन्न धर्मधाराओं का सम्मान करते हुए भी शैव था। उसके ताम्रपत्रों का आरम्भ शिव स्तुति से ही होता है। भोजपुर में भोज का बनवाया हुआ अपूर्ण शिव मन्दिर भी है। उदयपुर प्रशस्ति में विभिन्न शिव मन्दिरों के निर्माण की चर्चा हुई है। केदार, रामेश्वर, सोमनाथ, मुण्डीर और कालानल उनमें प्रमुख हैं। धार की भोजशाला में विद्यमान प्राकृत में रचित शिलांकित खण्डित भोज प्रशस्ति में भी इन्हीं पंचायतनों के निर्माण की चर्चा है -

महयाले मुंड़ीरे केआरे तह य सोम्मनाहम्मि।

रामेसरे अ विहिअं पंचाययणं तए भोज॥240

यहाँ कालानल के स्थान पर महाकाल मन्दिर के निर्माण की बात की गयी है। स्पष्ट ही कालानल महाकाल के पर्याय के रूप में प्रयुक्त हुआ है। राजा भोज ने

महाकाल का पंचायतन मन्दिर बनवाया था। महाकाल के आसपास अन्य देव भी थे। आज भी महाकाल परिसर में कितने ही देवी-देवताओं के मन्दिर हैं।

राजा भोज ने अपनी शृङ्गारमञ्जरी कथा में दो बार महाकाल का स्मरण किया है। एक बार तो उन्हें 'भूताधिनाथ' कहा गया (पृष्ठ 35) और दूसरी बार महाकालनाथ को त्रिभुवनपति कहा गया (पृ. 32)।

महाकाल कैलास जैसे अपने मुख्य आवास को छोड़कर रमणीयता से आकृष्ट होकर उज्जयिनी में आकर बस गये।

उज्जयिनीमवापत्। तस्याश्च किं वर्णयति यत्र त्रिभुवन-  
पतिरपि विलासलोभेन रामणीकहृत हृदयः कैलासवास-  
मुत्सृज्य श्रीमहाकालनाथः प्रतिवसति। (पृष्ठ 32)

अन्यत्र (पृष्ठ 35) पर कहा गया है -

अस्त्यत्र सकलत्रिभुवनललामभूता भूताधिनाथेन  
भगवता श्रीमहाकालाभिधानेनाधिष्ठता  
श्रीमदुज्जयनी नाम नगरी।

यह उज्जयिनी अवन्ति प्रदेश में रही (पृष्ठ 84)।

अस्त्यवन्तिषु श्रीमत्युज्जयनी नाम नगरी।

यह नगरी श्रीमती अर्थात् लक्ष्मी से सम्पन्न रही। इस नगरी का राजा विक्रमादित्य था। इस राजा ने अपनी भुजाओं से त्रिभुवन विजय श्री से चक्रवर्ती पद अर्जित किया।

तस्यां (उज्जयिन्यां) निजभुजार्जितचक्रवर्तिपदः  
पदमद्वितीयास्त्रिभुवनविजयाश्रियः श्रीविक्रमाकां  
नाम नरपतिरासीत्। (पृष्ठ 35)

अन्यत्र भी इसकी पुष्टि करते हुए कहा गया है कि विक्रमादित्य का चरित अद्भुत और प्रख्यात था (पृष्ठ 84)।

तस्यां (उज्जयिन्यां) अद्भुत प्रख्यात चरितो निजभुज विक्रमावापृचक्रवर्तीपदः  
क्षितिपतिर्विक्रमादित्यो नाम।

इस विक्रमादित्य की कुलदेवी आशापुरा (पृष्ठ 46, 72) थी। इसका मन्दिर

था। उसमें देवी के सामने अपना सिर देकर आत्म बलिदान का भी उल्लेख किया गया है (पृ. 72)। इससे स्पष्ट है कि आशापुरा सिद्ध स्थान रहा।

विक्रमादित्य तो राजा भोज का आदर्श ही था। भोज ने उसे सदा बड़े आदर से प्रस्तुत किया है। विक्रमादित्य के सम्बन्ध में भोज ने अपनी शृङ्गारमञ्जरीकथा में विभिन्न चार कथानिकाएँ रची हैं या वह उनमें उपस्थित है। सूरधर्म कथानिका में विक्रमादित्य के शासनकाल की उज्जयिनी की सुप्रसिद्ध गणिका देवदत्ता के चातुर्य की कहानी है जिसमें वह अत्यन्त चतुर सूरधर्मा को भी ढग कर घर से निर्धन कर निकाल देती है।

देवदत्ता कथानिका में देवदत्ता द्वारा राजा विक्रमादित्य को भी अपनी चतुराई से प्रभावित कर उससे प्रचुर पुरस्कार प्राप्त कर लेती है। लावण्य सुन्दरी कथानिका में एक तेली की सुन्दर नारी द्वारा अपनी सुन्दरता और चतुराई से विक्रमादित्य को आकर्षित और प्रभावित कर अपना लक्ष्य पूरा कर लेने की कहानी है। मूलदेव कथानिका में नारी की दुश्चरिता को विक्रमादित्य की रानी चेल्लमहादेवी में ही प्रमाणित कर दिया गया - उसके ही प्रिय धूर्त मूलदेव द्वारा जिसमें विक्रमादित्य अपनी दुश्चरिता रानी को दंडित करता है। इस कथानिका में कहा गया है कि विक्रमादित्य जैसा कोई राजा नहीं, और मूलदेव जैसा कोई धूर्तचूड़ामणि नहीं। परन्तु नारियों ने इन्हें भी छल लिया।

न हि देवस्य (विक्रमस्य) सदृशो नृपतिर्नापि  
मच्छदृशो धूर्तचूड़ामणि। पृ. 88

मूलदेव का मित्र शश था। शूद्रक के पद्मप्राभृतक भाण में मूलदेव और शश ही प्रमुख रूप से प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष रूप से विद्यमान हैं। धूर्ताख्यान में भी इन दोनों की ही कहानियाँ हैं। राजा भोज ने उस शश और मूलदेव की जोड़ी को भी उपमान रूप से व्यक्त किया है (पृष्ठ 17)। यह उल्लेखनीय है कि कसरावद से प्राप्त ईसवी पूर्व प्रथम शती के मृदभाण्ड पर तथा अयोध्या से प्राप्त भाण्ड पर मूलदेव का नाम प्राप्त होता है। अयोध्या से मूलदेव नामांकित प्राचीन सिक्का भी मिला है। इससे स्पष्ट है कि उसकी ख्याति और लोकप्रियता व्यापक थी। सम्भव है विक्रमादित्य ने उसे अनूप जनपद जागीर में दे दिया हो। इसी प्रकार मन्दसौर के पास के अँवलेश्वर के

स्तम्भलेख में शश का उल्लेख प्राप्त होता है। शश नाम की मुद्रा भी प्राप्त हुई है। यह पार्थियन राजा (46 ई.) गोंडोफोर्नस का अधीनस्थ गर्वनर था।<sup>1</sup> वराहमिहिर ने अपनी बृहत्संहिता में पंच महापुरुषों में से एक आदर्श शश को भी माना और उसके लक्षण भी दिये हैं (69/20-23)। दशपुर का दाशेख्य क्षेत्र सम्भवतः शश को जागीर में मिला हो। और इस प्रकार ये विक्रमादित्य की समकालीनता की पुरावस्तुएँ भी पुष्टि कर रहे हैं।

राजा भोज ने जिस प्रकार धारा नगरी का नवनिर्माण किया था उसी प्रकार उन्होंने महाकाल क्षेत्र में नया उज्जैन बसाकर चौरासी महादेव के मन्दिर बनवाये।

विक्रमादित्य का सचिव भट्टमातृगुप्त भी शृङ्गारमञ्जरीकथा की दो कथानिकाओं में उपस्थित है। उसे 'अतिविदग्ध' (पृष्ठ 39) कहा गया है। भट्टमातृगुप्त और विक्रमादित्य की गोष्ठी उल्लेखनीय मानी जाती थी (पृष्ठ 45)। राजतरंगिणी के अनुसार विक्रमादित्य मातृगुप्त की विद्वत्ता और विदग्धता से अभिभूत था तथा उसने मातृगुप्त को काश्मीर का राजा बना दिया था। मातृगुप्त अत्यन्त विदग्ध कवि तथा नाट्यशास्त्र सम्बन्धी ग्रन्थ का रचयिता था। नाटक लक्षण रत्नकोष में सागरनन्दी ने भी उसका उल्लेख किया था -

हर्षविक्रमनराधिपमातृगुप्त.....।

भोज ने देवदत्ता नामक गणिका की कहानी विक्रम सम्बद्ध प्रस्तुत की है। शूद्रक के पद्मप्राथृतक भाग में वह मूलदेव की प्रेमिका रूप में वर्णित है। इसकी ही छोटी बहन देवसेना का भी धूर्त अनुरागी हो गया था। इस प्रकार उज्जयिनी के विक्रमादित्य के युग के पात्रों को राजा भोज ने अपने सर्जनात्मक साहित्य में पुनः उपस्थित कर दिया है।

जिस प्रकार मालवा का विक्रमादित्य समूचे भारत का सर्वाधिक लोकप्रिय राजा हुआ, उसी प्रकार मालवा का राजा भोजदेव भी लोकप्रिय और सर्वप्रसिद्ध राजा हुआ। दोनों ही साहित्य तथा संस्कृति के आराधक, संरक्षक तथा प्रेरक थे। भोजदेव के शिलालेख और ताम्रपत्र सुलभ हैं अतः वह इतिहास प्रसिद्ध है। परन्तु तब भी वह मिथकों का नायक बन गया। उसी प्रकार विक्रमादित्य के सम्बन्ध में

स्वल्प पुरालेखीय और अधिक मिथकीय तथा साहित्यिक प्रमाण प्राप्त होते हैं। राजा भोज हमसे प्रायः एक सहस्राब्दी पूर्व हुआ और परम्परानुसार विक्रमादित्य भोज से भी एक सहस्राब्दी पूर्व हुआ। अर्थात् हमसे जितना पूर्ववर्ती भोजदेव रहा, भोज से उतना ही पूर्ववर्ती विक्रमादित्य था। परन्तु भोज के समय तक जितना विपुल साहित्य सुरक्षित और सुलभ था उतना अब नहीं है, विभिन्न कारणों से। भोज के समय तो मूल पैशाची बृहत्कथा भी सुलभ थी जिससे उसने अपने शृङ्गारप्रकाश में उद्धरण दिये। परन्तु अब तो हमें उसके अनुवादों रूपान्तरों से ही सन्तोष करना पड़ता है। विक्रमादित्य कथाओं का खजाना है बृहत्कथा। इसके अतिरिक्त भी कुन्तलेश्वरदौत्य जैसे न जाने कितने साधन स्रोत राजा भोज को सुलभ थे। उनका भोज ने अपने शास्त्रीय तथा रचनात्मक विभिन्न ग्रन्थों का भोज ने यथोचित उपयोग किया है। लोक प्रचलित अनुभूतियों की भी राजा भोज ने उपेक्षा नहीं की।

राजा भोज के समय तक विक्रमादित्य के नाम से मालवा में तथा अन्यत्र विक्रम संवत् सुप्रचलित हो चुका था। अपने पूर्वज परमार नृपों के समान राजा भोज ने भी शकारि विक्रमसंवत् का ही उपयोग किया है। उसके ताम्रपत्रों तथा ग्रन्थों में विक्रम संवत् तिथि, माह आदि का ही बार बार उपयोग हुआ है। अपनी शृङ्गारमञ्जरी कथा के अन्त में भी शकारि के नाम से प्रचलित संवत् का ही उल्लेख किया गया है। यद्यपि पुस्तक खण्डित हो जाने से संवत् संख्या वहाँ सुलभ नहीं है।

.....(व)त्सराणां शकद्विषः।

कृतेयं भोजराजेन कथा शृङ्गारमञ्जरी॥

ताम्रपत्रों में नाम न देते हुए केवल 'संवत्' कहा गया है। इससे स्पष्ट है कि उस समय विक्रम संवत् इतना लोकप्रचलित और सर्वज्ञात था कि केवल संवत् कह देने मात्र से विक्रम संवत् का बोध हो जाता था। अर्थात् समाज में जितना आज विक्रम संवत् लोकप्रिय है उतना ही राजा भोज के समय भी था।

राजा विक्रमादित्य की शकारि तथा साहसांक उपाधियाँ थीं। पूर्वोक्त उल्लेख में शकारि उपाधि प्रयुक्त है। साहसांक का उल्लेख भी भोज ने अपनी शृङ्गारमञ्जरीकथा (पृष्ठ 40, 42, 47) में उज्जैन के राजा विक्रमादित्य के लिए बार बार किया है। यथा देवदत्ता कथानिका में नायक को कहीं विक्रमादित्य कहा

1. मेरी पुस्तक भारतीय अभिलेख और इतिहास, पृ. 151



गया है और कहीं साहसांक कहकर साहसांक को साहस का घर (साहसस्यैकसदनं) बताया गया। उसे विक्रमैकरसिक तथा कमनीय आकृति का बताया गया है। उसका संकेत कर दिया गया है (पृ. 40, 42)। विक्रमादित्य को भी कहीं विक्रमादित्यदेव तथा कहीं विक्रमार्क भी कहा गया है (पृ. 39, 32 आदि)। अतः स्पष्ट है कि विक्रमादित्य और साहसांक भोज की दृष्टि में अभिन्न हैं। सरस्वतीकण्ठाभरण में भोज ने बताया कि साहसांक के समय संस्कृतभाषी कौन नहीं था ? अर्थात् सभी संस्कृतभाषी थे। राजशेखर ने भी अपनी काव्यमीमांसा में उस अनुभूति की ओर संकेत किया था –

श्रूयते चोज्जयिन्यां साहसांको नाम राजा। तेन च  
संस्कृतभाषात्मकमन्तःपुर एवेति समानं पूर्वेण।

यह रेखांकित करने की आवश्यकता इसलिए हुई कि नाट्यशास्त्र तथा उपलब्ध तदनुसारी रूपकों से स्पष्ट ज्ञात होता है कि राजाओं के अन्तःपुर में प्राकृत का ही उपयोग होता था। परन्तु विक्रमादित्य ने अन्तःपुर में भी संस्कृत बोलना अनिवार्य कर दिया था। यह उल्लेखनीय है कि चन्द्रगुप्त के शिलालेखों, मुद्राओं तथा सिक्कों पर कहीं भी उसका विरुद्ध साहसांक नहीं प्राप्त होता। अमोधवर्ष के संजान ताम्रपत्र और गोविन्द चतुर्थ के सांगली केम्बे ताम्रपत्र में चन्द्रगुप्त को साहसांक शायद इसलिए कहा गया कि उसने भाई को मारकर भाभी को पत्नी बना लेने का साहस या दुष्कृत्य किया था।

विक्रमादित्य और कालिदास सम्बन्धी एक अनुपलब्ध रचना के श्लोक मंखक की साहित्यमीमांसा, राजशेखर की काव्यमीमांसा तथा राजा भोज के सरस्वतीकण्ठाभरण तथा शृङ्गारप्रकाश में उद्धृत हैं। परन्तु तत्सम्बन्धी प्रसंग केवल शृङ्गार प्रकाश में ही दिया गया है। उसमें बताया गया कि कुन्तलेश्वर क्या करता है? विक्रमादित्य के यह पृष्ठने पर कालिदास ने कहा कि आपके सहारे कुन्तलराज निश्चिन्त रासविलास में लीन हैं।

कालिदासः किं कुन्तलेश्वर करोति विक्रमादित्येन पृष्ठः उक्तवान्।

उत्तर में कालिदास जो श्लोक कहता है उसमें ही कुछ परिवर्तन कर विक्रमादित्य भी कह देता है – पिवतु मधु सुगन्धीन्यानानि प्रियाणां  
मयि विनिहितभारः कुन्तलानामधीशः।

कालिदास के पिबति और लयि शब्दों में कुछ परिवर्तन मात्र यहाँ किया गया है। इससे स्पष्ट है कि कुन्तल देश का राजा भी विक्रमादित्य के अधीन था। नौवीं सदी के अभिनन्द ने बताया था कि कालिदास की रचनाओं को विक्रमादित्य ने प्रसिद्ध किया था। शाकुन्तल की एक हस्तलिखित प्रति के अनुसार उसका मंचन विक्रमादित्य की सभा में किया गया था।

राजा भोज बृहत्कथा की ओर संकेत भी करता है –

उपकारसम्बन्धा मदनमञ्जरी विक्रमादित्यस्य कलिगसेनालम्भो....।

शृङ्गारप्रकाश

सोमदेव की विषमशीललम्भक (1/130) के अनुसार मदनमञ्जरी कुबेर के भाई मणिभद्र की पत्नी यक्षिणी थी। इसने सिंहल राजकुमारी मदनलेखा के साथ विक्रमादित्य के विवाह में सहयोग दिया था (3/11)। भोज ने बृहत्कथा का मूल पैशाची उद्धरण (राघवन, भोजाज शृङ्गारप्रकाश, पृ. 850) भी दिया है जो कथासरित्सागर को विषमशीललम्भक (श्लोक 109-114) से मिलता जुलता है। उसमें उज्जैन में स्नान करती अप्सराओं की चर्चा है।

जिस प्रकार राजा भोज ने धारा नगरी नयी बसाकर उसे 84 चौराहों और 84 देवालयों से सम्पन्न कर दिया था। उसी प्रकार उज्जयनी भी पीपलीनाका से महाकाल मन्दिर तक नयी बसायी और 84 महादेव के पौराणिक मन्दिरों से उसे सजा दिया। इस पूरे क्षेत्र में प्रायः परमार कालीन मन्दिरों मूर्तियों के अवशेष ही मिलते हैं।

वाकणकर शोध संस्थान में प्रदर्शित दो अभिलेख खण्डों में तुरुष्क विजय के बाद शिप्रा स्नान कर महाकाल अर्चना की चर्चा है। झाँसी के भोज ताम्रपत्र में भी महाकाल अर्चन का उल्लेख किया गया है।

भोजराज का संवत् 1078 (1029) का ताम्रपत्र और सभी ताम्रपत्र मालवा से प्राप्त हुए हैं। राजा भोज के एक विरुद्ध रणरंगमल्ल के उल्लेख सहित एक खण्डित शिलालेख उज्जैन से प्राप्त हुआ है। वेणु कवि के उज्जयिनी लेख में भी भोज की चर्चा है। महाराजाधिराज परमेश्वर श्रीभोजदेव विरचित को दण्ड (काव्य) धार से खण्डित शिलांकित प्राप्त हुआ है। उस लेख की नकल का कुछ भाग उज्जैन से भी प्राप्त हुआ है। प्राकृत में विरचित इस काव्य की शैली भोज के

अवनिकूर्मशतकम् से मिलती है। राजशेखर सूरि के प्रबन्धकोश (पृ. 59) के अनुसार मालवा के उज्जैन में सरस्वतीकण्ठाभरण प्रासाद के गर्भगृह की पट्टिका पर श्रीभोजदेववर्णन के अनेक काव्य उत्कीर्ण थे।

‘मालवीये पूज्यन्तीं गतैरस्माभिः सरस्वतीकण्ठाभरण प्रासादगर्भ गृह पट्टिकायां श्रीभोजदेववर्णनात्मकाव्य मून्यदृक्षत।’

भोजदेव वर्णनात्मक अनेक शिलाखण्ड धार के ही समान उज्जैन से भी प्राप्त होते हैं। भोज के विरुद्ध, ग्रन्थ तथा भवन के एक ही नाम होते थे। सरस्तीकण्ठाभरण भी ऐसा ही नाम है जो धार के समान उज्जैन में भी था। इसमें ही पाठशाला थी और विशाल पुस्तकालय था जिसमें राजा भोज की विविध विषयक अनेक पुस्तकें भी थीं।

यह समूचा विवरण प्रभावक चरित में प्राप्त होता है। उसमें भोजकृत भोज व्याकरण, शब्दालंकार, शास्त्र, तर्कशास्त्र, चिकित्साशास्त्र, राजसिद्धान्त, रसाशास्य, वास्तुशास्त्र, उदयशास्त्र, अंकशास्त्र, शाकुनकशास्त्र, अध्यात्म, स्वप्न, सामुद्रिक, निमित्तव्याख्यान, प्रश्न चूडामणि, अयः सद्भाव विवृति, अर्थकाण्ड या अर्थशास्त्र, मेघमाला इत्यादि महत्वपूर्ण हैं। वात्स्यायन ने नगर में सरस्वतीभवन बनाने की चर्चा की है। राजा भोज ने धार के समान उज्जैन में भी वह बनवाया था। इस प्रकार अतीत की गौरवशाली परम्परा के अनुरूप भोज के साहित्य और सन्दर्भों में उज्जयिनी कई प्रकार से उपस्थित है।

परिशिष्ट (ड)

राजा भोज और राजकीय परम्पराएँ

भारत के प्राचीनकाल से ही राजकीय मर्यादा, तहजीब, रहन-सहन तथा व्यवस्था की अपनी परम्परा रही है। प्राचीन विभिन्न ग्रन्थ तो ऐसी मर्यादाओं की ओर जहाँ तहाँ संकेत करते ही हैं परन्तु भरत के नाट्यशास्त्र से ईसवी पूर्व तक की ऐसी मर्यादाओं और अनुशासन का पर्याप्त ज्ञान प्राप्त हो जाता है। नाट्य तो पूरे समाज को समेटता है। अतः उसमें राजकीय अनुशासन, रहन-सहन, सम्बोधन, परिचर, अधिकारीगण, वेश भूषा, आभरण, खान-पान आदि सहित अन्य भी अपेक्षित सम्बोधनादि के विस्तार से संकेत पाये जाते हैं। परवर्ती विभिन्न संस्कृत नाटकों में उनका यथोचित पालन होता रहा। समयानुसार उनमें यथावश्यक संशोधन भी होते रहे। कामसूत्र में भी ऐसी व्यवस्थाओं के संकेत सूत्रात्मक रूप में पाये जाते हैं।

मालवा के राजा भोज ने ग्यारहवीं शती के पूर्वार्द्ध में विविध विषयक अनेक ग्रन्थों की रचना की थी। उनमें से कतिपय पुस्तकें राजकीय रहन-सहन और व्यवस्था से सम्बन्धित हैं। वे स्वयं एक समर्थ राजा थे। अतः उनके द्वारा या उनके समय लिखी गयी पुस्तकों की तत्सम्बन्धी प्रामाणिकता में सन्देह नहीं किया जा सकता। उनके ‘समरांगणसूत्रधार’ नामक विशाल ग्रन्थ में राजकीय प्रासादों के विभिन्न रूपाकारों की विस्तार से चर्चा की गयी है। ‘युक्तिकल्पतरु’ में राजा तथा राजकुमारों

के लिए अपेक्षित विभिन्न जानकारियों का विस्तार से वर्णन है। उनके 'चाणक्यमाणिक्य' में राजा से सम्बन्धित विभिन्न पदों पर नियुक्त किये जाने वाले कर्मचारियों तथा पदाधिकारियों की योग्यताओं का निर्देश किया गया है। उनकी 'चारुचर्य' पुस्तक में राजा की वर्षभर की ऋतुओं तथा मौसम के अनुसार दिनचर्या का सूक्ष्म विवरण पाया जाता है। इनके अतिरिक्त पूजा पद्धति, यात्रा या दिग्विजय मुहूर्त, सामान्य आयुर्वेदिक विवरण आदि सहित व्याकरण, कोश, पशु विज्ञान, धातु तथा मंत्र विज्ञान, शिल्प, ज्योतिष, धर्मशास्त्र, दर्शन, काव्य, काव्यशास्त्र, योग, हस्तसामुद्रिक आदि सम्बन्धी कितने ही ग्रन्थों में तत् तत् सम्बन्धी सूचनाएँ एवं निर्देश दिये गये हैं।

भोज के चाणक्यमाणिक्य के अनुसार राजा को राजकाज में लोगों को सम्यक् परीक्षा के पश्चात् ही लगाना चाहिए। वे उनकी कुल, शील, गुण और कर्म से परीक्षा करें। सेनाध्यक्ष, भाण्डाध्यक्ष (भण्डारी), प्रतीहार, लिपिज्ञ, लेखक, दूत, गंजाध्यक्ष (खाद्य एवं कोषाध्यक्ष), सूपकार (रसोइया), भिषग्, आचार्य, पुरोहित, गणक या ज्योतिषी, मन्त्री, अन्तःपुर रक्षक या कंचुकी आदि की विशेषताओं की संक्षेप में चर्चा करने के बाद सावधान किया गया है कि राजा को चाहिए कि ऐसा भृत्य न रखे जो आलीस, मुखर, ठूँठ (स्तम्भ), क्रूर, व्यसनी, शठ, असंतुष्ट और अस्वामीभक्त हो। अधिकारी ऐसा नहीं होना चाहिए जो क्रूर, व्यसनी, लोभी, अप्रगल्भ (वाचाल न हो), भोंडी सूरत का, दुर्मति, पापी हो। दोगला, उद्वेगकारी, भोंडा, भयंकर भी वह नहीं होना चाहिए। भृत्य राजा के बराबर धनी, समर्थ, रहस्यवेत्ता, नीतिविद, व्यवसायी नहीं होना चाहिए। वरना वह आधा राज्य छीन सकता है। भृत्य गम्भीर, कोमल व धीमा बोलने वाला, जितेन्द्रिय, सत्यवादी, योग्य, होनी को या परिणाम जानने वाला, ज्ञात का तत्त्वज्ञ होना चाहिए। ऐसे भृत्य जो आलसी न हों, संतुष्ट हों, अच्छे सोने वाले, खूब जगने वाले, सुख-दुःख में समान हों, धीर हों-दुर्लभ होते हैं। दम्भी, कपटी, हिंसक, उत्साह रहित, अशक्त, डरपोक भृत्य नहीं रखना चाहिए। इस ग्रन्थ के इस पाँचवें अध्याय में यह भी बताया गया है कि भृत्य शुभ या अशुभ जो कुछ भी करता है उससे राजा के अच्छे या बुरे काम कहलाते हैं। राजा को सदा सहायकों की आवश्यकता रहती है। इसलिए गुणहीन को त्यागकर गुणी की ही

नियुक्ति करें। पंडित में गुण होते हैं और मूर्ख में सदा दोष होते हैं।

वंश परम्परा से जिसमें दक्षता हो, पाकशास्त्र का ज्ञाता, मधुर पका सकने वाला, पवित्रता में आसक्ति वाला, स्वामीभक्त रसोइया नियुक्त करना चाहिए। वैद्य ऐसा होना चाहिए जो आयुर्वेद का मर्मज्ञ और अनुभवी हो, दिखने में आकर्षक हो, रोग को तत्काल पहचान लेता हो, शीलसम्पन्न और मेधावी हो। आचार्य विविध ज्ञान-विज्ञान से सम्पन्न, प्रियवादी, जितेन्द्रिय, ठीक तरह से विद्या का उपदेश कर सकता हो या पढ़ा सकता हो तथा पवित्र हो। वाचाल, बुद्धिमान, भक्त अन्य के मन को ताड़ने वाला, जस का तस कह देने वाला दूत होता है। पुरोहित वह होता है जो वेद-वेदांग के तत्त्व का ज्ञाता हो, जप-होम में लगा रहता हो तथा जो सदा आशीर्वाद देता रहता हो। राजा का कालज्ञ होता है- लेखक, पाठक, गणक (ज्योतिषी), ग्रहों के मंत्रों का प्रयोग करने वाला। राजा का मंत्री वह होता है जो दीर्घसूत्री न हो, तीव्र स्मृति वाला, कृतज्ञ, नीतिशास्त्र का वेत्ता, बुद्धिमान्, आने वाली परिस्थितियों को ताड़ने वाला हो। राजा के रनिवास का रक्षक कंचुकी वह होता है जो गंजा, कुबड़ा, मंदबुद्धि, वृद्ध, दुर्बल, निष्क्रिय इन्द्रियों वाला, इच्छा रहित हो। लेखक उसे बनाना चाहिए जो एक जैसे समशीर्षक, गोल गोल और सघन मात्रा अक्षरों पर बाँध सकता हो। ज्योतिषी वह हो जो गणित व लिपि का ज्ञाता हो, श्रुति स्मृति का अनुसर्ता हो, वह ऐसा ब्राह्मण हो जो ग्रहों आदि का ज्ञाता हो, भाग्य व भविष्य का वेत्ता हो जिसे चन्द्र सम्बन्धी ज्ञान भी हो। इसी प्रकार राजा भोज के अनुसार इस ग्रन्थ को राजा और बुद्धिमान् अपने कंठ में धारण कर कंठस्थ कर लें तो उनके दोनों लोक सुधर जाते हैं। इस पुस्तक की तिब्बती प्रति भी प्राप्त होती है।

चाणक्यमाणिक्यमिदं कण्ठे विभ्रन्ति ये बुधाः।

ग्रथितं भोजराजेन तेषां लोकद्वये द्वयम् ॥ 8/99

इसी प्रकार भोजदेव ने अपना 'नीतिनिबन्धन' अथवा 'नीतिभाजन' ग्रन्थ भी राजकुमारों के ज्ञान के लिए रचा था। इसकी एक अपूर्ण हस्तलिखित प्रति की सूचना राजेन्द्रलाल मित्र (क्रमांक 576) ने दी है। उसमें राजा, राष्ट्र, युवराज, मंत्री, लेखाध्यक्ष, पुरोहित, सभासद, दूत, गुप्तचर, प्रतिहार, सेनापति, नर-नारी, अनुचर, रसोइया, कलाकार, ग्वाले, हाथी, घोड़े आदि का विवरण प्राप्त होता है।

ग्रन्थ अपूर्ण है। शेष ग्रन्थ में भी ऐसी ही शेष सामग्री लिखी गयी होगी।

राजा भोज का 'युक्तिकल्पतरु' राजकुमारों के ज्ञान के लिए विविध विषयक ग्रन्थ है। इसमें वे विषय संक्षेप में वर्णित हैं जो उस युग में राजाओं तथा राजकुमारों के लिए अपेक्षित है। इस पुस्तक में प्रायः दो हजार श्लोक हैं। उसमें कहा गया है कि राजा तथा शासक वर्ग अन्य शास्त्र न देखकर इस शास्त्र को ही जान लें तो पर्याप्त है। यह राजवर्ग का इष्टतम ज्ञेय है। अन्य लोगों के लिए भी यह उपयोगी हो सकता है और उन्हें फलदायी भी हो सकता है

राजभिर्मन्व्यतामर्थोऽयः शास्त्रर्थोत्तमो भुवि।

अयमिष्टतमो भूपैर्ज्ञेयो हितफलप्रदः।

अन्येषाञ्च भवेदिष्टः प्रियन्त्वेषान्ददात्यपि ॥ 1/89

इस पुस्तक की नीतियुक्ति में कहा गया है कि गुरु, पुरोहित, अमात्य, मन्त्री, दूत, लेखक (बोला हुआ लिखने वाला या डिक्टेसन लेने वाला), ज्योतिषी, अन्तःपुर (रनिवास) का अध्यक्ष, बलाध्यक्ष (सेनापति) आदि को क्रम से बार-बार परीक्षा करके ही अपने अपने काम में लगाना चाहिए। तदनुसार गुरु ऐसे व्यक्ति को बनाना चाहिए जो सदाचारी, कुशल बुद्धि वाला, समस्त शास्त्रों का अर्थवित्ता, पवित्र, नित्य नैमित्तिक कार्यों का कर्ता, पितृ और देव का पूजक, गुरुभक्त, क्रोध का विजेता, सदा विप्रों का हितकारी, दयालु, शीलसम्पन्न, सत्कुलीन, परम मेधावी, परनारी से विमुख, दृढ़ संकल्प वाला ब्राह्मण, वैदिक व अन्य गुणों से भी वह सम्पन्न होना चाहिए। राजा लोग ऐसे गुणों वाला गुरु बनाएँ और राजपुरोहित में भी ये ही गुण होने चाहिए।

एतैरेव गुणैर्युक्तः पुरोधाः स्यान्महीभुजाम् ॥ नीतियुक्ति, 17

राजा के अमात्य में ये गुण होने चाहिए। वह शान्त, विनीत, कुशल, उच्च कुलीन, शुभ परम्परा और शुभ का अनुसर्ता, शास्त्र के अर्थ के तत्त्व पर चलने वाला होना चाहिए। राजा का मन्त्री बुद्धिमानों में श्रेष्ठ, धार्मिक, शास्त्रज्ञों में श्रेष्ठ, किसी भी बाधा से रहित या किसी की भी (उपरोध) पकड़ में न आने वाला होना चाहिए। राजा भोज ने अमात्य और मन्त्री में भेद किया है। गुणों की दृष्टि से देखा जाए तो यहाँ अमात्य से मन्त्री शासकीय कार्यों में अधिक योग्य बताया गया है। अमरकोश (2/

8/4) में मन्त्री, धीसचिव और अमात्य एकार्थक बताये गये हैं। तात्पर्य यह कि ये सब राजा को महत्त्वपूर्ण सलाह देते थे। रुद्रदामा के धीसचिव और कर्मसचिव थे। धीसचिव मन्त्रणा देता था। कर्मसचिव नीति का कार्यान्वयन करता था। धीसचिव या मन्त्री आज के मन्त्री के समान नीतिनिर्धारक होता था और कर्मसचिव आज के सचिव के समान उस नीति का कार्यान्वयन करता था। भोज के अनुसार मन्त्री सलाह देने वाला और अमात्य आज के सचिव के समान कार्यान्वयन करने वाला था। राजदूत दूसरों के इशारे ताड़ने वाला, दूसरों की वाणी के व्यंग्यार्थ जानता हो, धैर्य-सम्पन्न और प्रत्युत्पन्नमति होना चाहिए। गणक नीतिशास्त्र और अर्थ में कुशल, लिखे-अनलिखे का विशारद, थोड़े में अनेक अर्थ का वक्ता और सभापटु होना चाहिए। गणक ज्योतिष शास्त्र का विशेषज्ञ, सुन्दर शरीर वाला, सभापटु, आनुवांशिक विशुद्ध होना चाहिए। राजा के अन्तःपुर या रनिवास का अध्यक्ष (या कंचुकी) वृद्ध, कुलीन या कुलक्रमागत, सक्षम, पिता-दादा से परम्परागत पवित्र तथा विनम्र होना चाहिए। अश्वध्यक्ष अश्वशिक्षा के नियमों का ज्ञाता, अश्वचिकित्सा में पारंगत, राजभक्त होना चाहिए। राजा भोज की अश्वशास्त्र पर शालिहोत्र पुस्तक प्रकाशित है। इस विषय पर युक्तिकल्पतरु में भी पर्याप्त विवरण है।

इसके अतिरिक्त भी एक पुस्तक थी जो अप्राप्त है। गजाध्यक्ष को गजलक्षण और गजचिकित्सा में पारंगत होना चाहिए। उसे निर्भय और विशुद्ध होना चाहिए। युद्धाध्यक्ष (सेनापति) आयुध विज्ञान में कुशल हो, बहुत बन्धुओं वाला हो, शुद्ध हो, कुलीन हो, विद्वान् हो, धर्मभीरु हो, बल-उत्साह सम्पन्न हो और दुर्ग व्यवस्था में दक्ष हो। इस प्रकार विभिन्न अध्यक्ष अपने अपने क्षेत्र में कुशल होने चाहिए। राजकाज में लोग सावधान रहें, लोभ न हो, राजा के आदेश के अनुसार वे काम करते रहें। काम होने पर राजा भी उन्हें पुरस्कृत कर प्रसन्नता करते रहें। क्योंकि धन की आशा में राजा की सब सेवा करते हैं। - नीतियुक्ति, 18-29

राजा भोज ने युक्तिकल्पतरु में द्रव्य, बल, यान, यात्रा, विग्रह, चर, दूत, सन्धि, आसन, द्वैध, आश्रय, दण्ड, मन्त्र (परामर्श), दुर्ग, नगर, वास्तु, आसन, छत्र, ध्वज, अश्व के साथ ही राजकीय इन उपकरणों का विवरण दिया है - चामर,

जलज, भृंगार, चषक, प्रसाधनी, वितान (चंदोवा या तम्बू)। अलंकार तथा उनके धारण के दिन भी बताये गये हैं। हीरा या वज्र, पद्मराग, गारुड़, विद्रुम (मूंगा), गोमेद, मुक्ता, वैदूर्य, इन्द्रनील, मरकत, पुष्पराग आदि के साथ ही कर्केतन, भीष्म, पुलक, रुधिर, स्फटिक, अयस्कान्त, शंख आदि के भी लक्षण बताये गये हैं।

राजा भोज ने अस्त्रयुक्ति के अन्तर्गत खड्गयुक्ति में जैसा और जितना विवरण दिया है उतना अन्यत्र कहीं नहीं मिलता है और कोई बता दे तो उसका मैं दास हो जाऊँगा। यह भोज की प्रतिज्ञा है।

इतः परन्तु लौहानां लक्षणं यत्र लक्ष्यते।

तस्य दासो भवाम्येव प्रतिज्ञेति मया कृता॥

ढाल, धनुष, बाण सहित अन्य अस्त्रों की चर्चा भी की गयी है।

तब अश्व, गज, वृषभ, महिष, श्वान, अज (बकरा) के लक्षण देने के बाद चार पैरों वाले यान, दो पैर के यान और बिना पैर के यान की चर्चा की गयी है। बिना पैर के यानों में जहाज, नौकादि की विस्तार से चर्चा की गयी है। जहाज वर्णन सम्बन्धी इस प्रसंग का उल्लेख अनेक विद्वानों ने किया है। इसमें छोटी बड़ी विभिन्न प्रकार की नौकाओं की चर्चा की गयी है। आधुनिक विद्वानों के अनुसार राजा भोज का जहाज-निर्माण सम्बन्धी विवरण पूरे भारतीय वाङ्मय में अद्वितीय है।

राजा भोज ने अपने शृङ्गारप्रकाश और सरस्वतीकण्ठाभरण में विभिन्न ऐसे उत्सवों की चर्चा की है जो लोकोत्सव होने के साथ ही राजोत्सव भी होते थे। इनमें से कुछ व्रतोत्सव, कुछ मौसम के, कुछ फसल के पर्वोत्सव होते थे। ऐसे उत्सवों में उल्लेखनीय उत्सव ये हैं- अष्टमी चन्द्रक, कुन्द-चतुर्थी, सुवसन्तक, आन्दोलन चतुर्थी, दोला-विलास शाल्मली, मदनोत्सव, उदकध्वेडिका, अशोकोत्तंसिका, चूतभंजिका, पुष्पावचयनिका, आम्रलतिका, भूतमातृका, कदम्बयुद्ध, नवपत्रिका (फूलपाती), बिसखादिका, शक्रार्चा, कौमुदीमहोत्सव, यक्षरात्रि (दीपोत्सव), अभ्यूषखादिका, नवैक्षुभक्षिका, तोयक्रीड़ा, प्रेक्षा, द्यूत, मधुपान, नवलतिका, नवपत्रिका, इन्द्रोत्सव आदि। (सरस्वतीकण्ठाभरण 5/298-321, शृङ्गारप्रकाश 34/103 से)।

राजा भोज के ज्योतिष और धर्मशास्त्र सम्बन्धी अनेक ग्रन्थी हैं। उसमें से

बहुधा अप्रकाशित हैं। ऐसा ही एक राजमार्तण्ड पूना में है। 1462 श्लोकों की इस पुस्तक में जो विभिन्न विवरण दिये गये हैं वे ऐसे हैं जिन्हें साधारणतया आम जनता और प्रधानतया राजवर्ग अपनाता रहा। विभिन्न संस्कारों यथा बालबन्ध, गर्भाधान, पुंसवन, नामकरण, निष्कासन, ताम्बूलभक्षण, अन्नप्राशन, चूडाकरण, कर्णविध, विद्यारम्भ, उपनयन, विवाह, श्राद्ध, नववधूप्रवेश आदि के इसमें विवरण है। धीरे-धीरे इनमें से कई का अप्रचलन बढ़ता चला गया।

लड़की का 12 वर्ष की आयु से पूर्व विवाह न करने का निर्देश दिया गया है। दाक्षिणात्य, गौड़, यमुनातटोद्भव, हिमालयस्थ और कैलास देश के लोगों के समादर की बात भी वहाँ कही गयी है। नवविवाहित का विपरीत तारा में गृहप्रवेश ठीक नहीं बताया गया। यात्रा तथा नये अलंकार और वस्त्र धारण करने का उचित समय भी बताया गया है। जन्म समय ज्ञात या न हो तो राजा की विजययात्रा के उचित समय ज्ञात करके उसके पालन की अनुशंसा की गयी है। तिथियों के नन्दा, भद्रा, विजया, रिक्ता और पूर्णा भेदों का सब काम में ध्यान रखने की बात की गयी है।

आकार के आधार पर भवनों के सोलह प्रकार और उनके प्रभाव, भवन के परिसर में लगाये जाने वाले पेड़ पौधे, परिसर में गाय का बाँधा जाना जिसके गोमूत्र से क्षेत्र का पवित्र रहना, विभिन्न दिशाओं के द्वार के प्रभाव के साथ ही कुएँ, तालाब, मन्दिर, आश्रम, स्नानागार, चैत्य, कृषि, वृक्षारोपण आदि के समुचित समय की भी वहाँ चर्चा की गयी है। राष्ट्रकृषि पर आधारित रहता है। अतः ग्राम और कृषि पर राज को विशेष ध्यान देना चाहिए। बोना, हाँकना, रोपना, काटना, नवान्न खाने का उचित समय, ज्वर के बाद स्नान का उचित समय, धनुर्वेद या हाथी-घोड़े पर बैठने का सही समय, हाथी के दाँत काटने का समय, औषधियाँ एकत्र करने का समय, सिंह में गुरु (सिंहस्थ) का प्रभाव के साथ ही विभिन्न तिथियों तथा व्रतों के प्रभाव आदि की विस्तार से उसमें चर्चा प्राप्त होती है। यह उल्लेखनीय है कि वर्षा सम्बन्धी एक स्वतन्त्र 'मेघमाला' नामक पुस्तक भी भोज ने लिखी थी जो अब प्राप्त नहीं होती। इसी प्रकार राजा भोज ने विभिन्न विषयों के अन्तर्गत जो विवरण प्रस्तुत किये हैं वे जनसाधारण के साथ ही राजवर्ग के लिए विशेष उपयोगी रहे।

राजा भोजकृत 'चारुचर्या' पुस्तक राजपुत्रों के हित के लिए विशेष कृति है।

चारुचर्या वास्तव में दिनचर्या है। वर्षभर की विभिन्न ऋतुओं के अनुसार प्रातः जगने से रात में सोने तक की विधियों का उसमें विवरण प्राप्त होता है। नीति, धर्म और वैद्यक के अनुसार इसमें विषय विवेचन किया गया है।

हिताय राजपुत्राणां सज्जनानां विशेषतः।

चारुचर्या प्रिया श्रेष्ठा रचिता भोजभूजा ॥

इस पुस्तक के तीन आकार प्राप्त होते हैं। उसमें कहा गया है कि स्वास्थ्य और आयु की रक्षा के लिए ब्राह्म मुहूर्त में उठना चाहिए। दाँत साफ करने के लिए दतुन के प्रकारों का विवरण दिया गया। कुल्ले करने की प्रक्रिया, आँखें धोना, शरीर पर तेल की मालिश, स्नान के लिए ठंडे, गरम जल का औचित्य, शरीर पोंछना, स्नान कब नहीं करना, सन्ध्योपासना आदि के बाद वस्त्र की चर्चा की गयी है। तदनुसार वस्त्र शरीर का प्रमुख आभूषण है। उससे पवित्र होते हैं और सुन्दरता बढ़ती है। उससे वात, गर्मी आदि का निवारण होता है। लज्जा की रक्षा और दरिद्रता नष्ट होती है। बाहरी दोष दूर रहते हैं। सोने की जरी का वस्त्र चिकना होता है और कफ, वात नष्ट करता है। मोती वाला वस्त्र दिक्पालों से रक्षित रहता है। चन्दन, कस्तूरी, गूगल आदि से सुगन्धित वस्त्र पूजा के समय उपयोग में लेना चाहिए। दान के समय, इलाज के समय, शत्रुवध के समय भिन्न-भिन्न वस्त्र धारण करने का संकेत किया गया है (62)। रम्भा, चन्द्र, काम, वसंत, विचित्र शाला, वृक्ष, मृग, पक्षियों वाले वस्त्र विवाहित पर्वकाल में धारण करने चाहिए (63)। शीतकाल में कौशेय (कौसा), काषाय (गेरुआ) ग्रीष्म में और वर्षा में श्वेत वस्त्र धारण करें (64)। कौशेय, चितकबरा और लालवस्त्र वात-कफ दूर करता है। यह शीतकाल में धारण करें। तपस्वियों द्वारा स्वीकृत कौशेय वस्त्र गरम और पवित्र होता है। यह वातशमन करता है। काशाय वस्त्र कमल के पेटे जैसा पित्त दूर करता है। गर्मी में सुकुमार लोग इसे धारण करें (67)। शुक्ल वस्त्र यों तो ठंडा होता है परन्तु शीत व गर्मी दूर करता है। न वह शीत करता है न गर्मी। उसे वर्षा में धारण करें (69)। रंगबिरंगे भिन्न-भिन्न वस्त्र सुन्दर लगते हैं और कफ तथा वात नष्ट करते हैं (72)। इसी प्रकार यह भी कहा गया है कि गहरा लाल, काला, मलिन, जीर्ण, कीटभक्षित, खण्डित, अन्याय से प्राप्त, परायी नारी वाला, शत्रु द्वारा प्रेषित, देवता को जो समर्पित न हो ऐसा वस्त्र

नहीं पहनना चाहिए। मलिन, परवस्त्र, स्त्रीवस्त्र, खण्डित, चूहों द्वारा खाया हुआ तथा जला वस्त्र त्याग देना चाहिए।

मलिनं परवस्त्रं च स्त्रीवस्त्रं च तथैव च।

खण्डं च मूषकैर्विद्धमग्निदग्धं च वर्जयेत् ॥83

फिर यह भी बताया गया कि इन भिन्न-भिन्न वस्त्रों में क्या क्या दोष होते हैं। अपने वैभव के अनुसार शरीर पर भूषण धारण करने चाहिए पवित्रता, सौभाग्य, आयु, लक्ष्मी की वृद्धि के लिए गहने पहनने चाहिए। स्वर्ण से बना किसी भी रत्न से जड़ा आभूषण सदा धारण करने से सब दोष दूर रहते हैं।

भूषणैर्भूषयेदंगं यथाविभवसारतः।

शुचिसौभाग्यवृद्ध्यर्थमायुर्लक्ष्म्यभिवृद्धये ॥

येन केनापि रत्नेन काञ्चनेन विनिर्मितम्।

भूषणं धारयेन्नित्यं सर्वदोषविवर्जितम् ॥ 91-92

आभूषण दिखने में शुभकारी होता है और देवता तथा मित्र प्रसन्न रहते हैं। फिर विभिन्न ग्रहों के रत्नों की चर्चा की गयी है। स्वर्णमाला कान्ति फैलाती है, आयु देती है, वात दोष दूर होता है, देह पर ग्रहों का प्रभाव नहीं होने देती है। कान का आभूषण स्त्रियों को बड़ा मन भाता है। वह मनोहर व दोषहर होता है।

कर्णाभरणमत्यन्तं कामिनीजनरञ्जनम्।

दोषहारि मनोहारि मनोभवनिकेतनम् ॥107

अंगूठी, नूपूर, मेखला, कंकण आदि की चर्चा के बाद पुष्पों का विवरण दिया गया है। विभिन्न पुष्पों को धारण करने के प्रभाव विस्तार से बताया गये। तब गर्मी, बरसात तथा शीतकाल के लेपों के गुण दोष बताये गये हैं। आरम्भ में गन्ध लगाएँ, फिर लेपन करें। लेपन से शरीर में उत्तेजना आती है। कस्तूरी, कुंकुम, श्रीगन्ध, केसर, काला, गूगल, कपूर आदि की विशिष्टताएँ बतायी गयी हैं। तदनन्तर भोजन की चर्चा करते हुए कहा गया है कि देवों, पितरों की अर्चना करने के बाद मंगलकारी दर्शन करना चाहिए। ये मंगल आठ हैं - ब्राह्मण, गौ, अग्नि, स्वर्ण, घी, सूर्य, जल तथा राजा (198)। शृङ्गार की हुई पत्नी वाले भोजनालय में अपनी पाचनशक्ति के अनुसार भोजन करें।

पत्नीविहितशृङ्गारं प्राप्य भोजनमन्दिरम् ।

यथा चाग्निबलं वीक्ष्य भोजनं कारयेद् बुधः ॥201

अजीर्ण भोजन विष के समान होता है। भोजन अकेले नहीं करना चाहिए। दो तीन बन्धुओं के साथ भोजन से वांछित फलप्राप्ति होती है, संतोष होता है (203)। चिकनाई वाला, बिना चिकनाई का, घी में पका, तेल में पका, दूध में पका, दही का अन्न, मठे वाला, सूखा अन्न, अधिक उष्ण, पुराना, भोजन आदि की चर्चा के बाद विरुद्धान्न की बात की गयी है। असमय, अधिक या अल्प खाना-ये तीनों विरुद्धान्न हैं। ये विषान्न हैं। भोज्य पदार्थों की गणना करने के बाद अन्न के दोष बताये गये हैं। अन्न के आठ दोष, छः रस बताने के बाद भोजनकाल बताया गया है। कार्तिक का अंतिम और अगहन का पहला पखवाड़ा ये यमराज की दो दाड़ें हैं। इस समय अल्पभोजी जीवित या स्वस्थ रहता है। दूषित अन्न के शोधन बताते हुए कहा गया है कि अमात्य और राजपुत्रों के घर में चकोर, काले मुँह का मर्कट, शारिका और शुक पालना चाहिए। विषैला भोजन देखकर चकोर आँखें फाड़कर देखता रहता है, बन्दर विष्टा छोड़ने लगता है, शुक-शारिका चिल्लाने लगते हैं। उनकी नजर पड़ने से अन्न निर्विष हो जाता है। शत्रुओं की विद्या-विनाश के लिए भी उनका दर्शन कहा गया है। फिर भोजन-क्रम बताते हुए कहा गया है कि सर्वप्रथम मधुर खाएँ, मध्य में तीखा व कटु या तुरा व नमकीन तथा अन्त में तीखा व तुरा खाना चाहिए। इससे सुखपूर्वक पच जाता है। तब इन स्वादों की अति की विशेषताएँ बतायी गयी हैं। भोजन से पहले पानी पीने से पेट की आग ठंडी होती है और दुबलापन आता है। मध्य में पीने से भूख बढ़ती है। अन्त में पीने से श्रेष्ठ रसायन बन जाता है। दिन में खूब पानी पीना चाहिए। एक साथ अधिक पानी पीने से या कम पानी पीने से अन्न नहीं पचता है। बार बार पानी पीने से पेट की आग बढ़ती है। अति आहार से व्याधि और अनाहार से निर्बलता आती है। इसलिए संतुलित भोजन होना चाहिए। प्यास लगे तो खाना नहीं, भूख लगे तो पीना नहीं। इस प्रकार अनेक विशेषताएँ बताई गयी हैं। तब भोजन के विभिन्न पात्रों की विशेषताएँ बताई गयी हैं। भोजन के बाद ताम्बूल प्रसंग आता है। सुपारी के गुण दोष बताये गये। चूने की विशेषताएँ बताई गयी हैं। ताम्बूल, चूने आदि के विभिन्न प्रकार बताये गये हैं। तब शयन प्रसंग प्रस्तुत किया

जाता है। उसके बाद स्वस्थ जीवन सम्बन्धी कुल नीतिवाक्यों के साथ चारुचर्या पूरी होती है।

इसी प्रकार राजा भोज ने अपनी विभिन्न पुस्तकों में राजकीय परम्पराओं सम्बन्धी जो संकेतात्मक विवरण दिये हैं वे जितनी उस युग के लिए उपयोगी हैं, उतनी ही हरसमय के लिए उपयोगी हैं। मध्ययुग में मुसलमानी राज परम्पराओं के सम्पर्क के कारण राजवर्ग के रहन-सहन और तहजीब की भी कई विशेषताएँ देशी राजाओं ने अपना लीं। फिर अंग्रेजी शासकों की विशेषताएँ भी अपना लीं। परिणामतः स्वतंत्रतापूर्व के रजवाड़ों में इन सबकी समवेत परम्पराएँ पायी जाती रहीं। उनसे पूर्व मुसलमानी प्रभाव भी था। और उनसे भी पूर्व केवल भारतीय जीवन पद्धति पायी जाती थी। यह भारतीय पद्धति तेरहवीं सदी के अन्त तक यथावत् सुरक्षित पायी जाती रही।

राजा भोज सम्बन्धी जो ग्रन्थ पाये जाते हैं उनके अनुसार वह कवियों और कलाकारों का अप्रतिम संरक्षक था। पाँच सौ विद्वानों, कवियों तथा कलाकारों को उसका संरक्षण प्राप्त था। उनमें से धनपाल, हलायुध, चित्तप, अमितगति, उब्बट सहित कितने ही ग्रन्थकार प्रसिद्ध हैं। उसके आश्रित समर्थ मूर्तिकार मनथल द्वारा निर्मित वाग्देवी की प्रतिमा संवत् 1091 (1034 ई.) में बनाई गयी थी। जो आज लन्दन के संग्रहालय में है। फरिश्ता ने (भाग एक, पृष्ठ 14) लिखा है कि राजा भोज साल भर में 40-40 दिन के दो जलसे करता था। कवियों कलाकारों को बिदाई के समय सिरोपाव और 10-10 अशर्फियाँ सबको दी जाती थीं। राजा भोज के अप्रकाशित 'विविधविद्याविचारचतुरा' ग्रन्थ में राजाओं के योग्य विभिन्न यज्ञों तथा नवग्रह यज्ञों का विवरण है।

इस प्रकार राजा भोज के युग की कतिपय राजकीय परम्पराओं का ज्ञान उनकी कुछ सुलभ पुस्तकों से तथा भोज सम्बन्धी परवर्ती अन्य पुस्तकों से होता है। उनकी अन्य अनेक अप्रकाशित पुस्तकों में भी ऐसी विभिन्न बातें सुरक्षित होगी जो उनके प्रकाशन के बाद ही प्रकट हो सकेगी।

## परिशिष्ट (च) लोक स्मृति में राजा भोज

राजा भोज का जितना लेखनी के क्षेत्र में योगदान है वह किसी से अनजाना नहीं है। राजा भोज की ऐतिहासिक उपलब्धियों के प्रमाण अभिलेखों, प्रतिमाओं, भवनों, सार्वजनिक निर्माणों, उनकी समकालीन प्रशस्तियों, पुस्तकों, परवर्ती ग्रन्थों तथा लोकव्यापी कथा-कहानियों से विज्ञात और प्रमाणित है। राजा भोज की सांस्कृतिक अभिरुचियों तथा साहित्यिक अनुराग के प्रमाण भोज प्रबन्ध सहित अनेक ग्रन्थ हैं। संस्कृत, प्राकृत, देशी विभिन्न भाषाओं, बोलियों तथा परदेसी साहित्य भी राजा भोज सम्बन्धी ऐतिहासिक, लौकिक, मिथकीय व्यक्तित्व को कई-कई रूपों में प्रकट और प्रसारित करता रहा। राजा भोज अपने समकाल में ही लोककर्षण का केन्द्र बन गया था। यहाँ तक कि उसके राजकीय शत्रु भी उसके व्यक्तित्व और कृतित्व को आदर्श मानकर उसके अनुकरण का प्रयास करते थे। गुजरात का राजा भीमदेव तो वेश बदलकर राजा भोज को एक नजर देखने की लालसा से धार भी जा पहुँचा था। ऐसे आकर्षक व्यक्तित्व के धनी राजा भोज के व्यक्तित्व को सबने अपनी अपनी तरह से देखने, परखने और प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। राजनीतिज्ञों ने राजनैतिक, शास्त्रज्ञों ने शास्त्रीय, कवियों ने रसिक तथा लोक ने उसे विविध वर्णों प्रकट किया है। भोज सम्बन्धी मिथक प्रचुरमात्रा में मिलते हैं। एक इतिहास

पुरुष के मिथक बन जाने का राजा भोज सर्वोत्तम उदाहरण है।

कौटिल्य के अर्थशास्त्र (1/4/16) के अनुसार चारों वर्णों तथा आश्रमों का समुच्चय लोक है - चतुर्वर्णाश्रमों लोकः। चारों वर्णों तथा चारों आश्रमों में पूरा समाज समाहित हो जाता है। स्पष्ट ही लोक यानी पूरा समाज/समाज और सामाजिक यात्रा अबाध होती है। इसमें पारिवारिक, वैचारिक, व्यवहारिक, व्यावसायिक, धार्मिक, रचनात्मक, कलासम्बन्धी और ज्ञात आकर्षक व्यक्तियों को अपनी अपनी तरह से अभिमंडित करने का प्रवाह होता है। यह अभिमंडन गीतों, लोककथाओं, कहावतों, सम्पूर्ण छोटे-बड़े काव्यों, नाट्यों आदि विविध माध्यमों द्वारा अपनी अपनी भाषाओं, लोक भाषाओं में होता रहता है। जैसे-जैसे समय बीतता है उसमें कुछ छूटता जाता है तो कुछ जुड़ता भी जाता है। यह जोड़ बाकी होते होते उसकी कई परिणतियाँ होती जाती हैं। कई बार स्मृतियों में संचारित अनेक व्यक्तित्व आपस में गड़ड़ मड़ड़ हो जाते हैं। एक की बातें दूसरे के साथ भी जुड़ जाती हैं। किसी व्यक्तित्व के प्रति किसी का आकर्षण भी ऐसा जानबूझकर या अनजाने ही हो जाता है। जैसे पहले शूद्रक कथा बड़ी लोकप्रिय थी। राजा विक्रमादित्य की कथाएँ भी लोकप्रिय थीं। ऐसी ही एक रंजक कथा पर प्राचीन अनुपलब्ध नाटक 'विक्रांतशूद्रक' था। उसकी कथा आजकल मालवी में राजा विक्रमादित्य सम्बन्धी प्राप्त होती है। तो कभी-कभी कई व्यक्तियों को मिलाकर लोकनायक का व्यक्तित्व अभिमंडित होता है। ज्ञात इतिहास में विक्रम संवत् की पहली सहस्राब्दी का आरम्भ लोकनायक राजा भोज से होता है तथा दूसरी सहस्राब्दी का आरम्भ लोकनायक विक्रमादित्य से होता है। तीसरी सहस्राब्दी का आरम्भ सम्पूर्ण भारत के अपूर्व गणतंत्र से होता है। अतः यह असम्भव नहीं है कि लोक-परम्परा अपने लोकप्रिय राजा भोज को भी ऐसे बहुरंगी लोकरंग से अभिमंडित करता रहा हो। इसमें भाषा कहीं आड़े नहीं आती। लोकामानस का उल्लास सब दूर एक जैसा होता है। फिर वह चाहे संस्कृत में कई, प्राकृत में कई, अपभ्रंश में कई, परवर्ती मैथिली, भोजपुरी, अवधी, बृजी, राजस्थानी, मालवी, बुन्देली, गुजराती, मराठी, उड़िया, बंगाली, पंजाबी, तिब्बती, सिंहली या मंगोली किसी भी भाषा में कहे, वह बात लोकरंग से रंजित ही होगी। इस प्रकार मूल वस्तु की व्याप्ति ही नहीं अतिव्याप्ति होती जाती है। इस अतिव्याप्ति में रंजना होती



है, अतिरंजना भी हो सकती है। परन्तु तब भी इस मूल बात को कोई भूल नहीं पाता कि मालवा का राजा भोज था। उसकी राजधानी धारानगरी थी। राजा भोज वीर, दानी, लोक हितकारी, विवेकशील और उदार था। उसकी वीरता की एक कहावत प्रसिद्ध है - काँ राजा भोज ने काँ गंगू तेली। इसे रजवाड़ी मालवी में इस प्रकार भी कहते हैं - कई राजा भोज ने कई गंगू तेली। इस कहावत का मूल वास्तव में इतिहास सम्मत है। उपर्युक्त कहावत में तेली को तेलन भी कहा जाता है। कठे राजा भोज ने कठे गांगी तेलन। कहावत का यह पाठ अपने मूल के अधिक निकट है। क्योंकि राजा भोज का समकालीन गांगेयदेव कलचुरि ज्ञात है। गांगेयदेव को लोक ने गांगी कर दिया। तेलंग को तेलन कर दिया। इस प्रकार गांगेयदेव तेलंग गांगी तेलन हो गयी।

इस गांगेयदेव ने राजा मुंज को अपमानित कर उसका वध कर दिया था। प्रबन्ध चिन्तामणि के अनुसार राजा भोज जब राजा बना तक उसे इस वध की घटना का नाटक दिखाया गया। क्रोधित होकर राजा भोज ने उस पर आक्रमण करके उस पर गौरवशाली विजय प्राप्त की। राजा भोज के वंशज अर्जुनवर्मा (1210 से 1218) के समय उसकी ही प्रशस्ति में रची गयी नाटिका पारिजातमञ्जरी के आरम्भ (1/3) में बताया गया है कि मनोरथ पूर्ण होने पर राजा भोजदेव ने 'गांगेयदेव भंगोत्सव' आयोजित किया था।

माण्डव तथा नालछा के मध्य की एक पहाड़ी के बारे में बताया गया जाता है कि उस पर ही इस तेलंग को फाँसी दी गयी थी। यह तेलंगाना का भी शासक था। अतः उसे तेलंग, तेलन, तेली कहा जाने लगा। ग्वालियर में तेली का मन्दिर भी इसी तेलंग का बताया जाता है। वहाँ भी लोक ने तेलंग शब्द को तेली कर दिया और वही प्रचलन में है।

तेलंग शब्द का लोक ने सरलता से तेलन (तेली की स्त्री) शब्द बनाकर उसके आधार पर मनोरंजक बातें तैयार कर लीं। माण्डव-नालछा के बीच की एक तेलण टेकरी के बारे में लोक में यह बात बतायी जाती है कि राजा भोज के समय की तेलन ने अपना घाघरा झटका तो उससे इतनी धूल उड़ी कि उस धूल के ढेर की यह टेकरी बन गयी। जिस तेलन के घाघरे की धूल से टेकरी बन जाए, उस तेलन के आकार

तथा उसके घाघरे के आकार-प्रकार की कल्पना भी विराट ही होगी। फिर यह भी कि वह घाघरा कभी धोया ही नहीं गया, न कभी झटका गया। फलतः उससे निरन्तर धूल जमा होती रही और इतनी धूल जमा हो गयी कि झटकने से उड़ी धूल के जमाव से टेकरी ही तैयार हो गयी। यह सम्भव है कि तेलंग सेना के प्रसंग में वह टेकरी बनी हो।

इसी प्रकार एक और मनोरंजक बात इस तेलन से जुड़ी हुई धार में बतायी जाती है। धार में लाट मसजिद के सामने एक चौतरे पर विशाल पत्थर पड़े हैं। उनके विषय में लोक प्रचलन है कि ये तेलन के एड़ा-बाट हैं जिनसे तेलन तेल तौलती थी और बेचती थी। इतने बड़े बाटों से तेल तोलना साधारण काम नहीं है। वहीं ओटले से टिके लोहे के स्तम्भ के बड़े बड़े तीन खण्ड पड़े हैं जिनकी सब मिलाकर लम्बाई प्रायः 44 फिट होती है। उन स्तम्भों के बारे में कहा जाता है कि यह तो तेलन की तराजू की डंडी है। तब तराजू की विशालता, उसके बाटों की विशालता तथा उन साधनों के वाली तराजू का आकार, उस तराजू में तोले जाने वाले तेल का परिमाण, उतना तेल जिस बर्तन में रखकर तोला जाता हो उसका आकार प्रकार तथा इतनी बड़ी तराजू से तोलने वाली तेलन का आकार प्रकार तथा बल की कल्पना करें तो आकार विराट, बल अपार और तेल अपरिमित, बर्तन विशाल होगा। ऊपर कहा जा चुका है कि गांगेयदेव तेलंग से गांगली तेलन की समता की जाती है। इससे स्पष्ट है कि गांगेयदेव असाधारण शक्तिसम्पन्न, विशाल राज्य और सेना का स्वामी था। उसे जीतना सरल नहीं था। परन्तु राजा भोज ने उसे भी जीत लिया था और उस गांगेयदेव तेलंग के जीतने के उत्सव के उपलक्ष्य में भोज ने यह लोह-स्तम्भ खड़ा किया था जो बाद में मुस्लिम काल में अपने स्थान से हटाकर अहमदाबाद ले जाने के प्रयास में टूट गया। और ले जाने वाले खंडित हो जाने से उसे वहीं छोड़ गये। वे बाट के पत्थर उस स्तम्भ की जमीन में मजबूती के लिये थे। और उस चौतरे पर उन पत्थरों के बीच वह पूरा 44 फिट ऊँचा लोह स्तम्भ खड़ा किया था। यह वास्तव में गांगेयदेव पर विजय के उपलक्ष्य में खड़ा किया गया था। धार संग्रहालय में सुरक्षित भोज प्रशस्ति के कोदण्ड प्रबन्ध नामक प्राकृत काव्य खंडित रूप में सुरक्षित है। उसमें 576 से अधिक गाथाएँ थीं। उसकी 306टीं गाथा में बताया गया है कि हे

राजा भोज तुम अपनी खड़ग की किरण की रस्सी से बँधे जयकुंजर (विजय-गज) को धारण करते हो, जयकुंजर का स्तम्भ उसका आलान (हाथी बाँधने का खूँटा) है।

असिकिरणरज्जुवद्धं जेणं जयकुंजरं तुमं धरसि।  
जयकुंजरस्य थंभोए..... ॥306॥

इससे स्पष्ट है कि राजा भोज ने जयस्तम्भ खड़ा किया था। शिलालेख खंडित होने से उसका उल्लेख प्राप्त नहीं होता जिसे जीतने पर यह जयस्तम्भ खड़ा किया था। परन्तु 1030 ई. में अल्बरूनी ने धार में इस स्तम्भ को देखा था। परन्तु इस स्तम्भ से जुड़ी पूर्वोक्त लोक परम्परागत बातों से उस ऐतिहासिक विवरण की पुष्टि हो जाती है कि यह जयस्तम्भ गांगेयदेव तेलंग को जीतने के उपलक्ष्य में खड़ा किया था।

अपने स्थान से हटाने के प्रयास में यह स्तम्भ पर्याप्त वजनदार होने और बेलेस नहीं रह पाने से जब गिर पड़ा तो यह टूट गया। उसका बड़ा भाग लालमस्जिद के चोतरे से ढलुआँ टिक गया। तब यह भी प्रचलन हो गया था कि जो इससे नहीं फिसलता है वह अगले जन्म में गधा होता है। अतः वहाँ पहुँचने वाले सब यात्री, विशेषतः बाल गोपाल उससे फिसलने का आनन्द लेते थे। आजकल तो पुरातत्त्व विभाग ने उसे वहाँ से हटाकर पास ही आड़ा रख दिया है। अब अगले जन्म का गधापन तो सब पर्यटकों का कोई रोकने टोकने वाला नहीं बचा।

इस पूरे विवरण से स्पष्ट हो जाना चाहिए कि कठे राजा भोज ने कठे गांगी तेलन कहावत में कितनी व्यापकता है और कितना इतिहास भरा हुआ है। वह केवल लोक की गप्प नहीं है, उसकी पृष्ठभूमि ठोस और सबल है। यह भी कहा जाता है कि 'गांगी तेलन' में क्रमशः दो पर भोज की विजय का संकेत है। गांगेयदेव कलचुरी और तेलंगाना का तैलप।

कहाँ राजा भोज और कहाँ गंगू तेली कहावत परम्परागत है। कवि सुन्दरदास (1596-1689 ई.) ने भी इस कहावत का अपने काव्यों में उपयोग किया था।

(1) कहाँ राजा भोज कहाँ गंगो तेली कहिये। (सुन्दरविलास काव्य)  
अन्य भाषाओं में भी इस कहावत के ये रूप पाये जाते हैं –

- (2) क्याँ राजा भोज ने क्या गांगली घाचन (तेलन)। गुजराती
- (3) कहाँ राजा भोज कहाँ टूटा तेली। बुन्देलखण्ड
- (4) कहाँ राजा भोज और कहाँ गंगा तेली। कोंकण
- (5) कहाँ राजा भोज कहाँ घांगो तेली। नर्मदा कांठा, पंचमहाल।
- (6) कहाँ मोटोर भोज और कहा अघेली भोजवा तेली। उत्तरप्रदेश
- (7) कत राजा भोज कतग ठिसा तेली। बंगाल
- (8) कए राजा भोज कए गंगिया तेली।
- (9) कोठें राजा भोज आणि कोठें गंगा तेलीण।

रासमाला के अनुसार कलचुरी गांगेय ने नेपाल से कर्नाटक तक अपना राज्य विस्तार कर लिया। भोज से भी उसका युद्ध हुआ जिसमें वह पराजित हुआ। अपमानित होकर वह प्रयाग चला गया। जहाँ 1041 ई. में वह मर गया। इस विजय के संदर्भ में भोज ने जयस्तम्भ खड़ा किया और उत्सव मनाया था।

यह कहा जाता है कि भोज के नाम पर कई नगरों के नाम पड़ते गये - भूपाल या भोजपाल (भोपाल), भोजपुर (रायसेन जिला), भोजपुर (पटना के पास जहाँ के नाम पर उस क्षेत्र की समृद्ध लोकभाषा का नाम भी भोजपुरी है) भोपावर (धार जिले में सरदारपुर के पास)। भोजकटक (होशंगाबाद) यह नगर अत्यन्त प्राचीन बताया जाता है।

1857 के स्वतंत्रता संग्राम से पहले (1855-56 ई.) में राजा शिवप्रसाद शिक्षा विभाग में इंस्पेक्टर थे। उन्होंने 'राजा भोज का सपना' कहानी लिखी थी। डेढ़ सौ वर्ष से भी अधिक वर्ष प्राचीन इस कहानी में राजा भोज के विषय में लिखा गया है वह उस राजा की उस समय भी ख्याति का प्रमाण हैं। वहाँ लिखा गया है - "वह कौन सा मनुष्य है जिसने महाप्रतापी महाराजा भोज का नाम न सुना हो। उसकी महिमा और कीर्ति तो सारे जगत में व्याप्त रही है। बड़े-बड़े महिपाल उसका नाम सुनते ही काँप उठते और बड़े-बड़े भूपति उसके पाँव पर अपना सिर नवाते। सेना उसकी समुद्र की तरंगों का नमूना और खजाना उसका सोने चाँदी और रत्नों की खान से भी दूना। उसके दान ने राजा कर्ण को लोगों के जी से भुलाया और उसके न्याय ने विक्रम को भी लजाया।"

ईसवी के 1540 सन् में मलिक मुहम्मद जायसी ने पद्मावत महाकाव्य की रचना की। इसमें उन्होंने विक्रमादित्य, राजा भोज आदि की महिमा की जहाँ तहाँ चर्चा की है। यथा –

(1) भोज भोग जस माना विक्रम साका कीन्ह।

जायसी के समय प्रचलित भोज की विभिन्न प्रेमकथाओं के आलोक्य में कवि ने यह बात कही है।

(2) अपने कथा नायक की प्रशंसा में कहा गया है –

तुम्ह सों कोह न जीता हारे वररुचि भोज।

(3) राजा भोज चौदहों विद्याओं का ज्ञाता था।

वेद भेद जस वररुचि चित चिंता तस चेत।

राजा भोज चतुर्दस था चेतन सों हेत ॥

(4) इन्द्रजाल के सम्बन्ध में भी भोज का उल्लेख किया गया है –

राज बार उस गुनीन चाहिअ जेसि टोना कर खोज।

एहि छंद ठगविद्या डहँका चला सो राजा भोज ॥

(5) पद्मावत में राजा विक्रम तथा भोज का एक साथ उल्लेख हुआ है।

हों सो भोज विक्रम उपराहीं।

(6) भानुमती के प्रेमी भाग्यशाली राजा भोज की भी चर्चा हुई है –

चंदन माँझ कुरंगिनी खोजू। दहँ के पाव को राजा भोजू ॥

(7) राजा भोज का राज्य भी कवि के लिए स्मरणीय था।

कीन्हेसु राजा भोजहि राजू।

इस प्रकार जहाँ पुरातन महाकवि राजा भोज का उपमान रूप में बार बार स्मरण करते हैं। वहीं मालवी में राजा भोज से वृद्धा की बातचीत के दोहे प्राप्त होते हैं –

कसी चाले डोकरी, कीका काड़े खोज।

कई थारो खोवई गयो पूछे राजा भोज ॥

म्हारा से थारे गई जीका काडूँ खोज।

थारा से भी जायगी मत गरबावे भोज ॥

इसमें राजा भोज वृद्धा से पूछ रहे हैं कि ऐसे डगमग चलते हुए क्या खोज कर रही है ? क्या गुम गया है तेरा ? तब वृद्धा उत्तर देती है कि मेरे पास से तेरे पास चली गयी। वही खोज रही हूँ। पर राजा भोज गर्व मत कर तेरे पास से भी चली जाएगी जवानी।

1800 ई. के जोधराज ने विक्रमादित्य तथा राजा भोज की दयाभावना का उल्लेख इन शब्दों में किया है –

कँह पँवार जगदेव सीस आपन कर कट्टयो।

कहाँ भोज विक्रम सुराव जिन परदुख मिट्टयो ॥

पृथ्वीराज रासो के अनुसार राजा भोज ने हनुमान द्वारा विरचित रघुनाथचरित (हनुमन्नाटक) का उद्धार करवाया था। उसने शालांकित इस नाटक का दामोदर पंडित द्वारा संपादन करवाया था। वही नाटक आज सुलभ भी है जो पूरी परम्परा में अनोखा है।

रघुनाथचरित हनुमंतकृत भूप भोज उद्धरिय जिमि।

पृथ्वीराज सुजस कवि चदंकृत चंदनंद उद्धरिय तिमि ॥

स्पष्ट ही लोक में तैरती बातें प्रायः निराधार नहीं होती हैं।

राजा भोज परमार वंश का रत्न था। उनकी कुलराधानी धारानगरी थी। धार और परमारों का अभिन्न सम्बन्ध था। उसके सम्बन्ध में एक पद्य प्रचलित है –

जहाँ परमार तहाँ धार।

जहाँ धार तहाँ परमार।

बिना धार नहीं परमार।

बिना परमार नहीं धार।

लोक प्रचलित कथाओं के भोज सम्बन्धी संग्रह विभिन्न भाषाओं में अनेक होते रहे। कई भोजप्रबन्ध हैं। बल्ला, शुभशीलगणि, रत्न मंडनगणि, सत्यराजगणि, राजशेखरआदि के संस्कृत में भोज प्रबन्ध सर्वप्रसिद्ध हैं। उनमें से बल्ला का भोजप्रबन्ध सर्वप्रसिद्ध हैं। राजवल्लभ का भोजचरित प्रकाशित है। शुभशील गणि के पंचशति प्रबोध प्रबन्ध में भी भोज सम्बन्धी अनेक कहानियाँ हैं। मेरुतुंग की प्रबन्धचिन्तामणि में भोज सम्बन्धी विभिन्न कहानियाँ प्राप्त होती हैं। उनमें से

बहुधा को ऐतिहासिक माना जाता है। यह पुस्तक मालवा के धार जिले के वर्धमानपुर (वर्तमान बदनावर) में चौदहवीं शताब्दी में लिखी गयी थी। ये कहानियाँ संक्षिप्त होने पर भी रोचक, तथ्यात्मक और भोज सम्बन्धी विभिन्न लोकदृश्य हैं।

विभिन्न भोज प्रबन्धों में भोज के व्यक्तित्व और कृतित्व के विभिन्न पक्ष प्रकट होते हैं। बल्ला के सुप्रसिद्ध भोज प्रबन्ध में कविमण्डल के साथ भोज को प्रस्तुत करते हुए उसके काव्यप्रेम और सहृदयता को रेखांकित किया गया है। प्रबन्ध चिन्तामणि में भोज के जीवन के विभिन्न पक्ष प्रस्तुत हुए हैं जिनमें शत्रुओं के साथ उसके व्यवहार को भी बताया गया है। राजवल्लभ के भोजचरित में भोज की वीरता, विवाह, परकाया प्रवेश आदि के साथ ही पारिवारिक परिवेश भी प्रस्तुत किया गया है। जैन साहित्य में मानतुंग, भोज तथा कालिदास सम्बन्धी कथाएँ भी हैं। कालिदास और पाशपाशर्चाभयदन सम्बन्धी कथा विस्तार से उसकी टीका में प्राप्त होती है।<sup>2</sup>

जैन कवि मालदेवरचित 'भोजचरित्राहा' के अनुसार सिंहासन बत्तीसी की कथा राजाभोज के कारण ही प्रकाश में आयी।

सिंहासन बत्तीसी की कथा सरस अवदात।

राजा भोज न होते तउको तमु जानत वात ॥

देवभद्रसूरि के श्रेयांसचरित में धनेश्वरसूरि का राजा की सभा में वाद विवाद का उल्लेख इस प्रकार किया गया है।

तपणु धनेसर सूरि जातो जैणं निरीह पहुणा वि।

भोज न रिदं सभाए गहिमा वाचंमि जयलच्छी ॥

मुंज प्रबन्ध, भोज गांगेय प्रबन्ध, भोज सुभद्राप्रबन्ध, भोजवृत्त आदि की रचनाएँ भी परवर्ती काल में होती रहीं। भोज सम्बन्धी कितने ही प्रबन्ध लिखे गये। सर्वप्रसिद्ध भोजप्रबन्ध तो बल्लाल का है। परन्तु वत्सराज, पद्मगुप्त, रत्नमन्दिर, शुभशीलगणिके भोजप्रबन्ध भी ज्ञात हैं। एवं अज्ञातकर्ता का भोजप्रबन्ध भी है। राजवल्लभ (सं० 1524) का भोजप्रबन्ध बताया जाता है जो भोजचरित होना चाहिए जो प्रकाशित है। शुभाशीलगणिके पंचशतीप्रबन्ध में भी भोज सम्बन्धी अनेक कथाएँ प्राप्त होती हैं।

राजस्थानी पद्यों में अनेक भोजचरित रचे गये। 17वीं सदी के मालदेवचरित भोज चौपाई बीकानेर भण्डार में है। इसमें तीन खण्ड और 1600 से अधिक पद्य हैं। 1671 संवत् में रचे गये सारंगकवि के भोजचरितरास में 458 पद्य हैं। हेमागंद ने 1654 में भोजचरितरास बनाया था। कुशलधीर ने 2059 पद की भोजरसा चौपाई बनाई जो बीकानेर में प्राप्त है। नरपति नाल्ह ने 1272 संवत् में 'बीसलदेवरासो' बनाया जिसमें भोज की बेटी के बीसलदेव के साथ विवाह की चर्चा है। मुल्हकवि रचित 'भोज राजा परकात्या प्रवेशिली' पंदरहवीं विद्या कथा भी प्राप्त होती है। राजस्थानी 3/1 में वृद्धा और माघ संवाद में राजा भोज विद्यमान है। राजस्थानी, गुजराती, बुन्देली, मराठी, मालवी सहित भारतीय विभिन्न भाषाओं और बोलियों में राजा भोज की कहानियाँ प्राप्त होती हैं। विविध विषयक परवर्ति ग्रन्थों में राजा भोज को राजा भोज, धारेश्वर या भूपाल नाम से बार बार उद्धृत किया गया है। भूपाल राजा भोज का वाचक है। यह सम्भव है कि इस भूपाल के नाम पर ही आज के भोपाल नगर का नाम पड़ा हो।

राजा भोज परमार वंश के सर्वाधिक चमकदार नक्षत्र थे। उनके विषय में राजस्थानी में कई उक्तियाँ प्रचलित हैं। यह -

पिरथी बड़ा पँमार पिरथी परमारा तणी।

एक उजीणी धार बीजो आबू बेसणो ॥

ज्याँ पमार त्याँ धार हे, धारा जठे पमार।

बिन पमार धारा नहीं, धारा बिना परमार ॥

राजा भोज काव्य के परम रसिक थे। विजयनगर प्रशस्ति में कृष्णराम की स्तुति में कहा गया कि वह काव्य, नाटक, अलंकार का मर्मज्ञ दूसरा भोज था। 13वीं सदी के परमार भोज द्वितीय को प्रथम भोज के समान हम्मीरमहाकाव्य में बताया गया है - भोजो भोज इवापरः। मराठी में भी ऐसी ही बात कही गयी है -

'भोजासम कविताप्रिय'।

राजा भोज को परवर्ती धर्मशास्त्र ग्रन्थकार केवल भूपाल नाम से भी उद्धृत करते रहे। कृत्यरत्नाकर में भोज के 'भूपालकृत्यसमुच्चय' ग्रन्थ को उद्धृत भी किया गया है। स्पष्ट ही राजा भोज को भूपाल भी कहते रहे। यह सम्भव है कि इस भूपाल

नाम के कारण वर्तमान भोपाल नगर का नाम पड़ा हो। एक अन्य अभिमत यह भी है कि राजा भोज के एक मंत्री का नाम भुजपाल था और इस भुजपाल नाम से भोपाल का नाम हो गया। यह अभिमत डॉ. हरिराम दिवेकर का है जो उन्होंने डॉ. वि.श्री. वाकणकर को एक पत्र में लिखा था। उन्होंने यह भी बताया कि पटना के पास का भोजपुर मालवा के परमार राजा भोज के नाम पर पड़ा, यह कौशिकपद्धति के लेखक केशव ने कहा जो राजा भोज के समय उस भोजपुर में ही रहता था और वहीं यह ग्रन्थ रचा। तदनुसार मालव देश में उत्पन्न श्री भोजदेव धर्म के संरक्षण के लिए राजगृह आये। वे विजेताओं में सबसे प्रमुख थे। संसार में उन जैसा संसार में न तो है, न कोई था और न कोई होगा। उन्होंने अथर्ववेद के अनुसार अनेक महाशान्ति करवायी और प्रचुर दक्षिणा भी दी।

पृथ्वियां श्रीभोजदेवो धर्म संरक्षणाय च।  
 देशमालवकोत्पन्नः श्रीराजगृहमेत्य च ॥  
 भोजदेवो जयद्वेष्यमानसर्वेषां च प्रमूर्धनि।  
 न तत्तुल्यो जगत्यास्ति न भूतो न भविष्यति ॥  
 × × ×  
 अथर्ववेदे विहिता महाशांतिरनेकशः।  
 कारापिता तेन यथा चोक्षा विहितदक्षिणा ॥  
 × × ×  
 श्रीपद्भोजपुरे विद्वानासीत्सोमेश्वरो द्विजः।  
 तत्पुत्रकेशवेनैषा कृता कौशिकपद्धतिः ॥

(वेदविद्या, नागपुर विश्वविद्यालय प्रकाशन, पृष्ठ 104-105 तथा डॉ. हरिरामचन्द्र दिवेकर का डॉ. वि.श्री. वाकणकर को 9/8/1965 का पत्र)।

राजा भोज के पूर्वजों को मालवा का राज्य प्राप्त होने की घटना प्रबन्ध चिन्तामणि में वर्णित है। तदनुसार कान्यकुब्ज के कल्याणकटक में मूलराज के पूर्वज शासन करते थे। तब भूमड़ या भूमदेव शासक बना। उस प्रसिद्ध राजा ने उज्जयिनी के स्वामी महाकालेश्वर के लिए पूरा मालवा दान कर दिया और उसके पालक संरक्षक के रूप में परमार परिवार को नियुक्त किया था। अन्हिलवाड़े के

कल्याण में एक मूलराज 941 ई.में हुआ था। यह चालुक्य था। अन्हिलवाड़े के चापोत्कट या चावड़ा राजवंश में 867 ई. में एक भूमड़ राजा हुआ था। प्रबन्ध चिन्तामणि में वह रोचक प्रसंग इस प्रकार है -

अथ प्रत्यूषे तान् यायिकान् सचिवैर्निगृह्यमाणान् निवार्य मालवमण्डले महाकालदेवप्रासादे गत्वा स्वयं देव मारा-धमंस्तस्यौ। देवादेशादभुजद्वये लग्ने सति तं मालवदेशं सान्तःपुरं तस्मै देवाय दत्त्वा तद्रक्षाधिकृतान् परमारराजपुत्रान् नियोज्य स्वयमेव तापसीं दीक्षामंगीचक्रे।

अर्थात् सचिवों के द्वारा मोर में प्रहरियों को पकड़ने से रोकेते हुए मालवमण्डल में महाकालदेव के प्रासाद में जाकर स्वयं देव की आराधना करने लगा। देव के आदेश से दोनों भुजाएँ खोल कर अन्तःपुर (रनिवास) सहित वह मालवदेश उन देव (महाकाल) को देकर उनकी रक्षा की जिम्मेदारी में परमार राजपुत्रों को नियुक्त करके स्वयं ने तपस्वी की दीक्षा स्वीकार कर ली।

इस कथा के अनुसार स्पष्ट ही परमार कभी महाकाल के मालवा मण्डल के रक्षाधिकारी थे जो बाद में अवसर पाकर स्वामी बन गये। राज्य पर पूर्ण स्वामित्व राजा मुंज ने प्राप्त किया और उसे चरम गौरव प्रदान किया। महाराजा भोजदेव ने। यह गौरव सर्वांगीण था, राजकीय भी और सांस्कृतिक भी। न मुंज ने और न सिन्धुराज ने वैसा संगठित साम्राज्य अपने पीछे छोड़ा था, जैसा प्रतिहार, नागभट्ट द्वितीय ने, मिहिरभोज के लिए छोड़ा था। राजा भोज ने अपनी प्रतिभा, शक्ति और सुव्यवस्थित योजना से एक विशाल साम्राज्य स्थापित किया था। वर्तमान ज्ञात सन्दर्भों के अनुसार उत्तर में कन्नोज, पटना, भोजपुर से दक्षिण में तंगुभद्रा नदी तक तथा पश्चिम में द्वारिका से पूर्व में मगध तथा गौड़ (बंगाल) तक राजा भोज का साम्राज्य व्याप्त था। राजा भोज ने देश से तुरुष्कों को भी पराजित कर बाहर का रास्ता दिखा दिया था और इस लक्ष्य में अन्य राजाओं को सहयोग भी दिया था। पूर्वजों से प्राप्त राज्य का विस्तार कर राजा भोज ने उसे साम्राज्य के स्तर तक पहुँचा दिया। परन्तु उनका अपना गृहराज्य मालवा था। मालवा के धार केन्द्र से राजा भोज की अपनी शक्ति का डंका सारे देश में बजने लगा था और समकालीन सभी राजशक्तियाँ सावधान हो गयी थीं। वे या तो भोज की अधीनता स्वीकारने लगी थीं या भोज से मित्रता के

लिए लालायित थीं। भोज की राज सभा सैकड़ों अधीनस्थ नृपों और पाँच सौ विद्वानों तथा कवियों की भीड़ से सदा भरी रहती थी।

राजा भोज के बहुधा ग्रन्थ संस्कृत में हैं, कुछ प्राकृत में हैं। अपभ्रंश के उद्धरण उनके ग्रन्थों में प्राप्त होते हैं। परवर्ती ग्रन्थों में भोज की अपभ्रंशोत्तर भाषा की उक्तियाँ भी प्राप्त होती हैं। ऐसी कतिपय उक्तियों का संकलन मेरी 'हिन्दी - प्रकृति और प्रवृत्ति' पुस्तक में पाया जा सकता है। राजा भोज का भारत में अपने युग में अमिट प्रभाव था। उनके रचना संसार की व्यापकता इतनी विस्तृत और प्रभावशाली थी कि वह प्रभामण्डल देश और उनके युग की सीमाओं को लाँध कर आज तक अपनी चकाचौंध से सबको आकर्षित कर रहा है। राजा भोज सम्बन्धी कहानियाँ न केवल भारतीय जनमानस में गहराई तक पैठी हुई हैं अपितु पश्चिम तथा मध्य एशिया के साथ ही मंगोलिया, चीन, तिब्बत, नेपाल, श्रीलंका आदि तक में उनकी कहानियाँ पायी जाती हैं। मंगोली भाषा का ऐसा ही 'आराजि बुजि' ग्रन्थ प्रकाशित है। ऐसे अन्य ग्रन्थों की सम्भावना भी हो सकती है जो प्रकाशन की प्रतीक्षा में हैं।

राजा भोज का अपनी समकालीन बोली के ये उदाहरण दिये जाते हैं<sup>2</sup> -

घसह घसावह किं मारिसिरे कान।

टहरी टहरी जोह छहँ किं नासिसिरे।

मानुसदाँ दस दस हवह देवेहिं निम्मिदीआइं।

मज्झकं तेह एकहि दसा नव चोरे हरी आहं॥

भोज पृच्छा धनपालकृत समस्यापूर्ति -

एकह मंदिरि ऊपनां एकह सुन्दरि वास।

हार पयोधरसिउँ रमइ उ झंखह पयवास॥

जं जाणीहरे ते कीजह कागा। तलि मूँडी निइऊं पागा॥

काक ने कहा -

जेतइँ बोलउँ तेहुँ हँसा। मज्झहिं व जासिंह निश्च हँसा॥

राजा भोज से दो शताब्दी बाद 1215 ई. (1272 संवत्) में नरपति नाल्ह ने बीसलदेव (विग्रहराज साँभरनृप) तथा राजा भोज की पुत्री राजमती सम्बन्धी एक

काव्य रचा था - बीसलदेव रासो। उसमें कहा गया है।

अतिरंग स्वामी सँ मिली राति। बेटी राजा भोज की।

राजा भोज परमार या पँवार जाति का था। एक प्राचीन खाँड़े पर लिखा गया था -

सिप्रा नदी उज्जेनी धार। राजा विक्रम जात पँवार॥

राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों की ग्रन्थ सूची के चतुर्थ भाग के पृष्ठ 91 पर लिखा है।

(1) सं. 731 राजा भोज उँजणी बसाई।

(2) 1077 सं. राजा भोज रे बेटे वीरनारायण सेवाणो बसायो॥

पहले का संवत् यदि सही है तो यह भोज कोई प्राचीन है। यदि यह संवत् गलत है और लेखक का तात्पर्य इसी मालवाधीश भोज से है तो यह बात सच प्रतीत होती है कि इस परमार राजा भोज ने उज्जैन को फिर से वर्तमान स्थान पर महाकाल क्षेत्र में बसाया।

संवत् 1077 (1020) में राजा भोज के पुत्र वीरनारायण ने सेवाणा बसाया। यह भोज के पुत्रों में एक और नाम समकालीन जुड़ जाता है। यह सन् संवत् मालवाधीश भोज का ही है और वीरनारायण उसका पुत्र था जो सेवाणा बसाकर वहाँ राज्य कर रहा था। राजा भोज के इस पुत्र का उल्लेख यहीं से प्राप्त होता है। इसी प्रकार अन्य कथा ग्रन्थों से राजा भोज के पुत्रों के नाम ज्ञात होते हैं। वत्सराज (वच्छराज) नामक पुत्र की पुष्टि तो शिलालेख से भी हो जाती है। इनके अतिरिक्त भी दो और पुत्र थे भोज के। राजवल्लभ के भोजचरित में वत्सराज और देवराज का उल्लेख है। कुँअर महमूद अली की वंशावली में फूलकुमार नामक भोज पुत्र बताया गया जिसका पुत्र जयसिंह था जो भोज का उत्तराधिकारी बना। इस प्रकार वत्सराज, देवराज, फूलकुमार, वीरनारायण - ये चार पुत्र थे राजा भोज के। इन सबका ज्ञान लोक कथाओं से, लोक परम्पराओं से होता है। परन्तु उनमें से वत्सराज नाम की पुष्टि 1010 के ताम्रपत्र से हो जाती है। जब कथावर्णित एक नाम वास्तविक है तो अन्य भी वास्तविक होने चाहिए। जब ये नाम प्राप्त होते हैं तो जब तक इनका कोई खण्डनात्मक ठोस प्रमाण नहीं प्रकाश में आए तब तक इन नाम

1-2. पब्लिकेशन स्कीम, 57 मिश्र राजाजी का रास्ता, जयपुर

वालों को हमें भोजपुत्र मानते रहना चाहिए।

उदैभानजी ने संवत् 1765 (1708 ई.) में 14 पद्यों का 'भोजजी को रासो' काव्य रचा था जिसमें कवि ने राजा भोज के वैभव और यश का वर्णन किया है। यथा –

सूर शिरोमणि सूर सुत सूर टरैं नहिं आन ।

जहाँ तहाँ सवन सुन जिये तहाँ भूपति भोज बखान ॥3

अगरचन्द नाहटा और भँवरलाल नाहटा ने ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह पुस्तक सं. 1994 में प्रकाशित की थी उसमें भोज सम्बन्धी कई उल्लेख पाये जाते हैं।

(क) भुगल भेरि नफेरि नाद बाजह सरणाह ।

एक भणह ए वस्तुपाल, ए भोज सवाह ॥98

(ख) मंत्रि लखू नह भीमजी भाभा भोजा जोह ॥80

(ग) राममल्ल श्रीरंग छुटा भोजा परु ए ॥32

(घ) घोधू चाहमल्ल नेतसी मेघउ पारस साह ।

नेमिदास धणराज सहससिंध गंगादास भोज अगाह ॥3 ॥

गुजरात का वस्तुपाल स्वयं को विद्वता तथा गुण में भोजतुल्य मानकर तन्तुल्य ही लघुभोजराज, सरस्वतीकण्ठाभरण आदि उपाधियाँ धारण करता रहा था यद्यपि वह मालवा और परमारों के शत्रुराज्य का मन्त्री था। परन्तु वह राजा भोज का भक्त था। यह सब भोज के सद्गुणों का ही आकर्षण था। राजशेखर सूरी अपने प्रबन्धकोश में कहता कि श्रीभोज के मुख कमल के वियोग से निराधार मन को भारती सरस्वती श्रीवस्तुपाल के मुखचन्द में बहला रही है।

श्रीभोजवदनाम्भोजवियोगविधुरं मनः ।

श्रीवस्तुपालवक्सेन्दौ विनोदयति भारती ॥ 296वाँ श्लोक

यह उल्लेखनीय है कि यह वही मंत्री वस्तुपाल है जिसने तेजपाल के साथ मिलकर देलवाड़ा के अद्वितीय कलासम्पन्न मन्दिर बनवाये थे जो आज भी जगत् का ध्यान आकर्षित कर रहे हैं। राजा भोज के विषय में ऐसी अगणित उक्तियाँ सदियों से कहीं जाती रही हैं। उनका अब तक विधिवत् संकलन नहीं किया गया

और न इस लेख का यह लक्ष्य है।

'बाँकीदास री ख्यात' में पँवार वंश विवरण दिया गया है। वह 'पँवार वंश दर्पण' में प्रकाशित है। उसमें राजा भोज सम्बन्धी एक लघु कथा संग्रहित है जो मनोरंजक के साथ ही शिक्षाप्रद भी है। (पृष्ठ 28) 'एक रीँछ किंवाड़ लगा कर गुफा में बैठास था। राजा भोज ने जाकर कहा – किंवाड़ खोलो। तब रीँछ ने कहा – कौन है ? राजा ने कहा – मैं राजा हूँ। तब रीँछ ने कहा – राजा तो इन्द्र है। तब भोज ने कहा – किंवाड़ खोलो, मैं दाता हूँ। तब रीँछ ने कहा – दाता तो करण हुआ। भोज ने कहा – किंवाड़ खोलो मैं क्षत्रिय हूँ। तब रीँछ ने कहा – क्षत्रिय तो अर्जुन हुआ। तब भोज ने कहा – खोलो किंवाड़। रीँछ ने कहा कौन हैं ? भोज ने कहा – मनुष्य हूँ। तब रीँछ ने कहा – मनुष्य तो धारापति भोज है। भोज हो तो हाथ लगाये बिना, बिना खोले किंवाड़ खुल जाएगा। और ऐसा ही हुआ।' यह कथा बताती है कि उपाधि प्राप्त तो एक से बढ़कर एक हुए हैं भूतकाल में। व्यक्ति की वास्तविक पहचान उसके मनुष्य होने में है।

एक बार राजा भोज विचरण कर रहे थे। उन्होंने ब्राह्मण को चमड़े का कमण्डल लेकर जाते देखा तो कारण पूछा – चमड़े का पात्र लेकर क्यों जा रहे हो ? ब्राह्मण ने कहा – इस समय लोहे और ताँबे का अभाव होने से उन धातुओं के पात्र नहीं बन रहे हैं। इसलिए चर्मपात्र लेकर जा रहा हूँ। तब राजा ने पूछा – विप्रवर लोहे और ताँबे का अभाव क्यों हो गया ? ब्राह्मण ने कहा – राजा भोज के राज्य में शत्रुओं को जंजीरों से बाँधने के कारण लोहा नहीं मिलता और दानपत्र इतने दे दिये गये कि ताँबे का अभाव हो गया है। राजा भोज ने प्रसन्न होकर उसे पुरस्कार दिया।

विक्रमादित्य के समान राजा भोज ही ऐसे राजा हुए जिनके विषय में न जाने कितनी कहानियाँ प्रचलित हैं। राजा भोज का परम मित्र था कालिदास। एक बार किसी बात पर रूठकर कालिदास कहीं चला गया। भोज उसके बिना रह नहीं पाते थे। अतः उन्होंने खोज करने के लिए घोषणा करवा दी कि जो कोई अपना स्वयं का रचा नया श्लोक लाकर सुनाएगा उसे लाख मुद्राएँ दी जाएँगी। कई लोग अपने अपने नये नये काव्य लेकर पहुँचे पर असफल रहे। पुरस्कार प्राप्त नहीं कर सके। क्योंकि भोज की सभा में तीन विद्वान थे। एक को एक बार सुनने पर पूरा का पूरा

वैसा ही याद हो जाता था। दूसरे को दो बार सुनने पर और तीसरे को तीन बार सुनने पर याद हो जाता था। जब कोई कवि आकर सुनाता तो एकश्रुत उस काव्य को पुराना बताते हुए पूरा का पूरा सुना देता है। वह सुनकर दूसरा विश्रुत सुना देता था। तीन बार सुनकर विश्रुत वैसा ही सुना देता था। जब तीन लोग उसे सुना दे तो नया काव्य होने पर भी कवि लल्लित होकर चला जाता था और उसे पुरस्कार नहीं मिल पाता था। सब कविगण निराश थे।

कालिदास को यह सब ज्ञात हो गया। उसने एक श्लोक लिखकर एक वृहत् ब्राह्मण को देकर राजा भोज की सभा में भेजा। उसने वह श्लोक पढ़ा। उस श्लोक का तात्पर्य यह था - हे राजन् हे भोजराज, आपका कल्याण हो। सारा संसार जानता है कि आपके पिता बड़े धार्मिक थे। उन्होंने मुझसे 99 करोड़ रत्न कर्ज में लिये थे। यह बात आपकी सभा के सब पंडित जानते हैं। अतः आप अपने पिता का वह कर्ज चुका दें। यदि आपकी सभा के पंडित मना करें तो आप इस श्लोक का रचनाकार मुझे मानकर एक लाख रुपये प्रदान करें। यह सुनकर वे तीनों विद्वान् चुप रह गये और एक दूसरे की ओर देखने लगे। समस्या यह थी कि वे यदि इस श्लोक को पुराना बतावें तो राजा पर कर्ज सिद्ध होता है और 99 करोड़ का वह कर्ज अदा करना पड़ता है। और नया सिद्ध होता है तो घोषणानुसार एक लाख का पुरस्कार देना पड़ता है। वे पंडित उदास होकर चुप रहे। राजा प्रसन्न हो रहा था। राजा समझ गये थे कि ऐसी चतुराई का श्लोक कालिदास ही लिख सकता है। राजा भोज ने उस विप्र को एक लाख रुपये दिलवाये। फिर उससे पूछा - सच बताओ, किसने लिखा था यह श्लोक ? ब्राह्मण ने सच सच बतला दिया। बोला कालिदास, कालिदास की रचना है स्वामी। राजा ने ब्राह्मण से कालिदास का पता पूछा और उसे ससम्मान वापस राजसभा में स्वयं लेकर आये।

एक बार राजा भोज के राज्य में भयंकर अकाल पड़ा। पशु मरने लगे। भूमि सेठ साहूकारों के पास गिरवी पड़ी थी। लगान चुकाने के लिए किसानों के पास कुछ भी नहीं था। उधर राजकोष खाली हो रहा था। राजा भोज ने पटेल-पटवारियों को निर्देश दिया कि किसी तरह लगान वसूल किया जाए। पर उनके सब हथकंडे व्यर्थ गये। वे खाली हाथ लौटे। उन्होंने आकर कहा - महाराज लोगों का शरीर ठठरी हो

गया। उनके पास उस ठठरी के सिवाय और कुछ नहीं बचा। जिन लोगों के लिए 'महुवा मेवा बेर कलेवा, गुलगुल बड़ी मिठाई' थी वे अब महुआ ओर बेर की पंक्तियाँ खा रहे हैं। राजा ने आदेश दिया - 'लोगों की सम्पत्ति कुर्क कर ली जाए।' कर्मचारियों ने कहा - महाराज लोगों के पास स्थान के सिवा घर में कुछ भी नहीं बचा। बर्तन तक नहीं है। चूहे तब कण कण के लिए तरस रहे हैं। गाँव की सबसे अमीर बुढ़िया की सम्पत्ति जप्त की गयी तो वहाँ से तीन चिलम तमाखू, पान रखने की डिब्बी टिन की, चार सूत की माला मिली। इसमें कितना लगान मिलता स्वामी। राजा ने कहा - तो उनके चूहे खोद लाओ। अधिकारी चकित थे। ऐसा तो कभी नहीं किया। जमीन जायदाद जप्त की, माल-पशु जप्त किये, लोगों की पिटाई की। परन्तु चूहे ? पर क्या किया जाए। राजाज्ञा का पालन तो करना ही है। वे घर घर जाकर चूहे खोद खोद कर बैलगाड़ियों में भर भर कर लाये और राजकोष में जमा करने गये तो कोषाध्यक्ष ने मना कर दिया। राजकोष खाली हो रहा था। राजा भोज ने राजसभा की। पटवारी-पटेल, अधिकारी हाजिर हुए। राजा ने पूछा घर-घर से चूहे तक लाने की आज्ञा दी गयी थी।

“हुजूर, हुकूम की पूरी तामिल हुई है।”

“फिर खजाने में जमा क्यों नहीं किये गये ?”

“कोषाध्यक्ष ने मना कर दिया स्वामी।”

“मैं खजाने में मिट्टी कैसे जमा कर सकता स्वामी।”

कोषाध्यक्ष ने हाथ जोड़कर कहा।

“मिट्टी” राजा भोज ने आश्चर्य से पूछा।

अब तक मन्त्री सारी स्थिति समझ चुका था। वह बोला - महाराज आपका राजवंश पीढ़ियों से राजा हैं। आपने महल में चूहे सोने के ही देखे हैं।

“तो चूहे फिर होते काहे के हैं ?” राजा ने उत्सुकता से पूछा।

“मिट्टी के।” मन्त्री ने बताया - प्रजा के चूहे मिट्टी के ही होते हैं।

स्वामी ! घर घर मिट्टी के चूहे होते हैं।

राजा चुप रह गया।

एक अन्य कथा के अनुसार एक बार राजा भोज ने अपने अन्तःपुर पहुँचने पर



पाया कि रानी अपनी सखी से बात कर रही है। वह भी पास में जाकर खड़ा हो गया। रानी की सखी लजा कर वहाँ से हट गयी। रानी के मुँह से अचानक 'मूर्ख' शब्द निकल गया। वह धीरे से बुदुदायी थी। परन्तु राजा ने सुन लिया और वह चुपचाप लौटकर राजसभा में जा बैठा। राजा को समझ नहीं आ रहा था कि रानी ने ऐसा क्यों कहा? धीरे धीरे राजसभा में पंडित लोग आने लगे। प्रत्येक पंडित के आने पर राजा 'मूर्ख' उच्चारण करने लगा। सब चकित थे। पर चुपचाप बैठते गये। मर्म कोई भी समझ नहीं पा रहा था। कालिदास के सभा में प्रवेश करने पर भी राजा ने 'मूर्ख' शब्द कहा तो तत्काल उसने कहा - हे राजन् न तो मैं मार्ग में खाता हुआ चलता हूँ, न हँसता हुआ बोलता हूँ, न गई बात का सोच करता हूँ, किये काम का घमण्ड भी नहीं करता, न बातचीत करते दो लोगों के बीच जाकर खड़ा होता हूँ, फिर बताइये मैं मूर्ख कैसे हुआ ?

इतना सुनते ही राजा समझ गया कि एकांत में बात करती रानी और उसकी सखी के पास जाकर मेरे खड़े हो जाने के कारण ही रानी ने मुझे मूर्ख कहा।

राजा भोज से संबंधित अगणित कहानियाँ न केवल प्रकाशित हैं, अप्रकाशित लिखित हैं अपितु अलिखित रूप में जनता के कंठों में विचर रही हैं। ऐसी ही एक भील आदिवासी समाज में अलिखित कहानी यहाँ पहली बार प्रस्तुत की जा रही है जो अपने गठन में कथासरित्सागर की कथा जैसी है।

#### राजाभोज<sup>1</sup>

प्राचीनकाल में राजा भोज नामक राजा भोज नगरी में राज करता था। राजा भोज चौबीस वर्ष तक धर्म करता है, धर्म न तो बढ़ता है न ही घटता है। राजा भोज अपने बेटे वीरसिंह को राज्य सौंपना चाहता था। मगर उसका ध्यान राज्य में नहीं लगता। राजा भोज का लड़का वीरसिंह सुतार के लड़के, लुहार के लड़के, तथा कुम्हार के लड़के के साथ शिकार पर जाता था इसलिए राजा भोज चिन्तित रहता था। राजा भोज वीरसिंह को समझाता है, फिर भी वह नहीं मानता है। राजा भोज वीरसिंह को घर से निकाल देता है। वीरसिंह भी राजा भोज के साथ झगड़ा कर लेता है और वनवास के लिए जंगल में चला जाता है। राजा भोज रानी के साथ झगड़ा कर

लेता है। फिर भी राजा भोज अपने मत पर अटल रहता था। उधर सुतार, लुहार और कुम्हार भी अपने लड़कों को घर से बाहर निकाल देते हैं।

राजा का लड़का वीरसिंह को जाते देखकर लकड़सिंग कहता है, क्यों वीरसिंह कहाँ जा रहे हो? वीरसिंह कहता है मेरे पिताजी ने मुझे घर से निकाल दिया इसके लिए मैं वनवास के लिए जा रहा हूँ। लकड़सिंग भी अपनी कहानी बता देता है। इन दोनों को जंगल में जाते देखकर लखनसिंह एवं गड़सिंग पूछने लगते हैं, तो वह अपनी सभी बात बता देता है, फिर तीनों जंगल में चले जाते हैं। ये चारों जंगल में बहुत दूर पहुँच जाते हैं। ये चारों सात रास्ते के मोड़ पर एक वटवृक्ष के नीचे बैठ जाते हैं। तथा बातचीत करने लगते हैं। राजा का लड़का वीरसिंह कहने लगता है। मुझे कम ताकतवर नहीं मानना मैं तो शेर का सिर काटता हूँ। कुम्हार का लड़का कहता है मैं भी बारह वर्ष में मनुष्य के पैर के निशान पहचान करने में निपुण हूँ। मैं बता सकता हूँ कि मनुष्य किस तरफ गया है। फिर लुहार का लड़का लखनसिंह कहने लगता है कि मैं चौबीस वर्ष के मुर्दा व्यक्ति को जिन्दा कर सकता हूँ। सुतार का लड़का कहने लगता है मैं भी बहुत ताकतवर हूँ। नौ मंजिला महल बनाकर उसमें सोने, चाँदी का जाल लगाकर आकाश में उड़ाकर वापस धरती पर उतारता हूँ।

ये चारों सात रास्तों के मोड़ पर एक वटवृक्ष के नीचे बैठे हैं। वहाँ पर चूहा हल चलाता है, और गिलहरी भैंस लेकर आती है। एवं कागड़ी (कौआ काणी, चुड़ी चाणी) आदि जंगल में सभी प्रकार के जानवर देखने को मिलते हैं। फिर जंगल में शेर की दहाड़ने की आवाज सुनायी देती है। तीनों राजा के लड़के वीरसिंह को कहते हैं शेर की आवाज आ रही है। तुम जाकर शेर का सिर काटकर ले आना। वीरसिंह कन्धे पर कुल्हाड़ी रखकर शेर का सिर काटने जाता है। बहुत समय हो जाने पर भी वीरसिंह के नहीं आने पर तीनों विचार करने लगते हैं अगर हम घर जायेंगे तो राजा भोज हमें मार देगा। इसलिए तीनों भी जंगल में चले जाते हैं। थोड़ी देर बाद वीरसिंह वहाँ पर शेर का सिर काटकर कान पकड़कर ले आता है और तीनों को वहाँ पर खोजता है तथा इंतजार करने लगता है तथा तीनों के वहाँ नहीं आने पर शेर का वटवृक्ष पर टाँग कर दूसरा रास्ता पकड़कर जंगल की ओर चला जाता है। जाते-जाते जंगल में एक राक्षस के घर चल जाता है। राक्षस के घर पर उसकी लड़की होती है

1. बारेली लोकथा सहित्य (टंकित शोध प्रबंध), आनंदसिंह पटेल

और राक्षस आदमी को ढूँढ़ने के लिए जंगल में गया हुआ था। राक्षस की लड़की बहुत सुन्दर थी। एक राजकुमारी की तरह थी। वीरसिंह उसे पसन्द कर लेता है। उसका नाम भानुमती था।

भानुमति वीरसिंह को कहती है, यहाँ से चला जा नहीं तो मेरे पिताजी तुम्हें खा जायेंगे। तभी वीरसिंह भानुमति को कहता है तुम बहुत सुन्दर हो। राजा की राजकुमारी लगती हो। तभी राक्षस आदमी की लाशें लेकर आ जाता है। भानुमति थप्पड़ ठोककर वीरसिंह को कंकड़ बनाकर बालों में रख लेती है। राक्षस बड़ी कड़ायी में लाश डालकर पकाकर खा जाता है और खटियाँ पर सो जाता है। तथा सुबह उठकर भानुमति को कहता है, बेटी अपने घर में मनुष्य की गन्ध का रही है। भानुमति कहती है नहीं पिताजी अपने घर में कोई भी मनुष्य नहीं है। फिर राक्षस दो चार दिन के लिए मनुष्य को ढूँढ़ने के लिए जाता है। फिर भानुमति थप्पड़ ठोककर वीरसिंह को मनुष्य बना लेती है। दोनों एक दूसरे से प्रेम करने लगते हैं और साथ में जीवन यापन करने लगते हैं। चार दिन बाद राक्षस घर आता है। उसको आते देखकर भानुमति थप्पड़ ठोककर वीरसिंह को कंकड़ बनाकर बालों में रख लेती है। राक्षस मुर्दा फेककर पानी पीकर बैठ जाता है। फिर राक्षस मुर्दे को पकाकर खा जाता है।

ऐसा करते-करते सात आठ महिने हो जाते हैं। एक दिन भानुमति रात को राक्षस से पूछती है, पिताजी आप कितने दिन में आएँगे तब राक्षस कहता है - दो चार दिन में आऊँगा। तब वीरसिंह विचार कर भानुमति को कहता है तेरे पिताजी को पूँछना कि उसकी जान कहाँ है। फिर एक दिन भानुमति राक्षस से पूछती है, पिताजी तुम रोज-रोज चले जाते हो किसी दिन रास्ते में तुम्हारी मृत्यु हो गयी तो मुझे कैसे पता चलेगा? इसलिए मुझे बता दो कि तुम्हारी जान कहाँ है। तब राक्षस कहता है, मुझे कोई मार नहीं सकता। बेटी तुम मेरी चिन्ता मत करो। फिर भी मैं तुम्हें बताता हूँ। दो रास्ते के चौराहे पर एक पारु पीपल है, उस पीपल के सबसे ऊपर की डाली पर एक हिरमल पोपट है, उस पोपट के शरीर में मेरी जान है। हिरमल पोपट के एक पंख कटेगा तो मेरा एक हाथ टूट जाएगा। पोपट के पाँव काटेंगे तो मेरा एक पाँव टूट जाएगा। पोपट के सिर काटेंगे तो मेरा सिर कट जाएगा। बेटी तू पोपट को देखते रहना। पोपट मर गया तो मैं मर जाऊँगा। यह कहकर राक्षस रात को सौ जाता है। फिर

सुबह उठकर दो तीन दिन के लिए चला जाता है।

भानुमति बालों में से कंकड़ निकालकर थप्पड़ ठोककर वीरसिंह को मनुष्य बना देती है। फिर वीरसिंह को भानुमति पूरी घटना बता देती है। फिर वीरसिंह पीपल के पेड़ पर पोपट को देखने के लिए चला जाता है। पीपल के पास जाकर हिरमल पोपट दिखाई देता है। फिर वीरसिंह वापस आकर भानुमति से कहता है हम कब तक इस तरह जीवन यापन करेंगे। वीरसिंह कहता है, भानुमति तेरे पिताजी को मार देते हैं। भानुमति भी राजी हो जाती है, फिर एक दिन वीरसिंह पीपल के पेड़ पर चढ़कर बैठ जाता है। राक्षस को आता देखकर वीरसिंह पोपट को पकड़ लेता है, पोपट को पकड़ते ही राक्षस हिलने लगता है। राक्षस के सिर पर से मुर्दा मनुष्य गिर जाता है। फिर धीरे-धीरे आने लगता है। राक्षस कहता है मेरी जान को कौन हाथ लगा रहा है? वीरसिंह पोपट का एक पंख तोड़ता है तो राक्षस का एक हाथ भी टूट जाता है, फिर पोपट का दूसरा पंख तोड़ता है तो राक्षस का दूसरा हाथ भी टूट जाता है फिर पोपट का एक पैर तोड़ता है तो राक्षस का एक पैर भी टूट जाता है। पोपट का दूसरा पैर तोड़ने पर राक्षस का दूसरा पैर भी टूट जाता है।

दोनों पैर टूट जाने के कारण राक्षस जमीन पर लुड़कने लगता है। फिर वीरसिंह पोपट का सिर तोड़ देता है तो राक्षस का सिर भी टूट जाता है। सिर टूट जाने के कारण राक्षस की मृत्यु हो जाती है। वीरसिंह राक्षस की लाश लेकर घर आ जाता है। तथा भानुमति को कहता है इसे रीति-रिवाज के अनुसार जला देना चाहिए। राक्षस की लाश को वह जला देते हैं। दोनों नहाने के लिए नदी पर जाते हैं। भानुमति कहती है वीरसिंह तुम नदी के नीचे नहाना। मैं नदी के ऊपर नहाऊँगी। वीर नहीं मानता है। वह कहता है तुम नीचे नहाना, मैं ऊपर नाहूँगा। भानुमति नदी के ऊपर नहाने लगती है और वीरसिंह नीचे नहाता है। नहाते वक्त भानुमति का एक सोने का बाल टूटकर नदी में बह जाता है, वह बाल वीरसिंह के हाथ में आ जाता है, वीरसिंह उस बाल को दूब घास तोड़कर उसमें लपेटकर नदी में बहा देता है। दूसरे राज्य में राजा का लड़का कर्मसिंह जब नदी पर नहाता है तो उसके हाथों में वह सोने का बाल आ जाता है। वह घर आकर बीमार पड़ जाता है। राजा जब बीमारी का कारण पूछता है तो वह कहता है मुझे सोने की बाल वाली से शादी करनी है, राजा आसपास के सभी

गाँवों में ऐलान करवाता है। जिसकी लड़की सोने के बाल वाली होगी उसी से कर्मवीर कुँवर की शादी होगी। सभी गाँव में तलाश करवाने पर भी सोने की बाल वाली लड़की नहीं मिलती है।

एक दिन एक विधवा औरत राजा के पास आकर कहती है। राजाजी मैं सोने की बाल वाली लड़की को ढूँढ़कर लाऊँगा। इसके लिए मैं चार हजार रुपये लूँगी। राजा राजी हो जाता है, दूसरे दिन विधवा औरत कर्मवीर के पास आकर कहती है। यह सोने की बाल वाली पुड़ी तुम्हें कहाँ मिली। कर्मसिंह उसे कहता है कल मैं नदी पर नहाने गया तो वह पुड़ी मेरे हाथ में आयी। दूसरे दिन विधवा औरत आटा-दाल बाँधकर सोने की बाल वाली लड़की को ढूँढ़ने के लिए नदी की राह पकड़कर निकल पड़ती है। चलते-चलते ही नदी के किनारे रोटी बनाकर खा लेती है और वहीं पर सो जाती है। फिर वह सुबह होते ही चल पड़ती है। वह आठ दिन में उस स्थान पर पहुँच जाती है जहाँ पर राक्षस को जलाया गया था। विधवा औरत समझ जाती है, इसके आसपास ही कोई गाँव है। फिर वह उस गाँव में पहुँच जाती है जहाँ वीरसिंह और भानुमति रहते हैं। वह विधवा औरत वीरसिंह के घर आकर झूठ झूठ के रोने लगती है। मेरा भाई मर गया किसी ने मुझे खबर भी नहीं किया। वीरसिंह और भानुमति समझते हैं कि हो सकता है पिताजी की कोई दूर की बहन होगी। फिर वह वीरसिंह के घर में रहने लगी।

एक दिन वह भानुमति से कहती है ला बेटी मैं तुम्हारे बालों में जुँए मारू। विधवा औरत भानुमति के सोने के बाल देख लेती है। वह भानुमति के बालों से जुँए मारने लग जाती है। पुड़ी में सोने के बाल निकालकर मिला लेती है। एक दिन विधवा औरत भानुमति को पानी भरने के लिए भेज देती है। वह रोटी बनाने लगती है। विधवा औरत रोटी में जहर मिलाकर वीरसिंह को खिला देती है। रोटी खाते ही वीरसिंह के शरीर में जहर फैलने लगता है। तथा उल्टी करने लगता है। भानुमति के आते ही वीरसिंह की मृत्यु हो जाती है फिर भानुमति रोने लगती है। विधवा औरत भानुमति से कहती है रीति-रिवाज के अनुसार इसे जला देना चाहिए। भानुमति कहती है इसे नहीं जलायेंगे। इसे झोली बनाकर उसमें डाल देंगे। फिर विधवा औरत कहती है, बेटी तू यहाँ रहकर क्या करेगी, चल मेरे साथ। भानुमति घर पर ताला लगा

कर विधवा औरत के साथ चली जाती है।

दूसरे राज्य में एक सप्ताह में पहुँच कर विधवा औरत राजा के राजमहल में ले जाती है। वहाँ जाकर राजा को कहा राजाजी मैं सोने के बाल वाली लड़की को ढूँढ़कर ले आयी। राजा विधवा औरत को ईनाम के चार हजार रुपये दे देता है। भानुमति राजा को कहती है, मुझे नौ मंजिला भवन बनाकर उसमें सोने के जाल लगाने होंगे तभी मैं तुम्हारे लड़के से शादी करूँ अन्यथा नहीं करूँगी। राजा भी राजी हो जाता है। इसी बीच विधवा औरत कहती है। राजाजी मैं नौ मंजिला महल बनाने वाले सुतार को ढूँढ़कर लाऊँगी। इसके लिए मैं पाँच हजार लूँगी। राजा राजी हो जाता है।

वीरसिंह के दोस्त, लकड़सिंह, लखणसिंह एवं गड़सिंग तीनों के वनवास के चौबीस वर्ष पूर्ण होने वाले होते हैं। तीनों सात रास्ते के मोड़ पर वटवृक्ष के नीचे आकर बैठ जाते हैं। फिर तीनों बातचीत करने लगते हैं। घर जायेंगे तो राजा हमें मार डालेगा। तभी तीनों ऊपर सिर उठाकर देखते हैं, शेर का सिर टंगा हुआ होता है। तीनों विचार करते हैं हम तो यह समझे थे कि शेर वीरसिंह को खा गया। लेकिन अब हमें वीरसिंह को ढूँढ़ना होगा। लकड़सिंग, गड़सिंग को कहता है क्यों तुमने कहा था ना कि चौबीस वर्ष के मनुष्य के पैर के निशान ढूँढ़ लेते हो। तो आज चलो वीरसिंह के पैर के निशान देखकर उसे ढूँढ़ने के लिए निकल पड़ते हैं। आगे गड़सिंग उसके पीछे लखणसिंह उसके पीछे लकड़सिंग जाते हैं। ढूँढ़ते-ढूँढ़ते वह राक्षस के घर के पास पहुँच जाते हैं। तीनों विचार करते हैं हो सकता है वह इसी घर में होगा। वह दरवाजा खोलकर अन्दर जाकर देखते हैं। झोली में वीरसिंह की लाश देखकर तीनों रोने लगते हैं। तीनों वीरसिंह को जिन्दा करने का उपाय करते हैं। लखणसिंह मुर्दों को जिन्दा करने में निपुण था। लखणसिंह जंगल में जाकर आँबावा काँववा नामक वृक्ष की एक छड़ी लाता है तथा उसका पानी वीरसिंह की लाश पर छींट देता है और दो छड़ी सिर पर तथा दो छड़ी पैर पर मारते हैं तो वीरसिंह राम-राम कहकर जिन्दा हो जाता है।

वीरसिंह अपने साथियों के गले मिलकर फूट-फूटकर रोने लगता है। वीरसिंह कहता है मैं तो शेर का सिर काटकर लाया था। तुम कहाँ चले गये। तीन दोस्त कहते हैं हम तो समझे थे कि तुम्हें शेर खा गया होगा। इसलिए हम जंगल में चले गये थे।

वीरसिंह अपनी सारी घटना बता देता है। चारों भानुमति की खोज में निकल पड़ते हैं। चारों नदी की राह पकड़कर चलते जाते हैं। सबसे आगे गढ़सिंग उसके पीछे तीनों दोस्त जाते हैं। चलते-चलते वे दूसरे राज्य में पहुँच जाते हैं। फिर वहाँ पर डेरा डालकर रहने लगते हैं।

फिर एक दिन विधवा औरत को भी पता चल जाता कि सुतार का लड़का लकड़सिंग यहाँ पर आया हुआ है। फिर वहाँ पर वह विधवा औरत आ जाती है। वहाँ पर विधवा औरत के आने के कारण पूछते हैं तो वह कहती है बेटा सुतार को खोज रही हूँ और वह कहती है, राजा का लड़का कर्मसिंह वह सोने के बाल वाली लड़की से शादी करना चाहती है, इसलिए मैं सोने के बाल वाली लड़की को ढूँढ़कर लायी हूँ। इसलिए वह चाहती है कि नौ मंजिला महल बनाकर उसमें सोने की जाल लगाना चाहता है, इसलिए मैं सुतार को ढूँढ़ रही हूँ। तभी लकड़सिंग कहता है - सुतार आपके सामने है। विधवा औरत प्रसन्न हो जाती है। सुतार कहता है मैं नौ मंजिला महल बनाकर तथा सोने के जाल लगाकर उसे नौ बार उड़ाने में निपुण हूँ। तभी लकड़सिंग कहता है इस काम के लिए मैं नौ हजार रुपये लूँगा। फिर औरत राजा के पास आकर कहती है राजाजी मैंने नौ मंजिला महल बनाने वाले सुतार को ढूँढ़ लिया है। इस काम के लिए सुतार नौ हजार रुपये माँग रहा है। राजाजी प्रसन्न होकर विधवा औरत को इनाम दे देता है। नौ हजार रुपये सुतार को देने के लिए दे देता है। तथा चारों को मालूम हो जाता है कि भानुमति राजा के पास है। सुतार नौ मंजिला महल बनाना प्रारम्भ कर देता है। कई महिनों के पश्चात् सुतार नौ मंजिला महल बना देता है और सोने का जाल भी लगा देता है।

एक दिन विधवा औरत नौ मंजिला महल देखने के लिए आती है। तब लकड़सिंग कहता है नौ मंजिला महल में सबसे ऊपर सोने की बाल वाली लड़की बेटेगी। इसके साथ ही तुम्हें एक सुतार की लड़की, एक लुहार की लड़की एवं कुम्हार की लड़की को लाना होगा। विधवा औरत दूसरे दिन सभी को ले आती है। सबसे ऊपर के महल में सोने की बाल वाली लड़की को बैठा देते हैं। वहाँ पर वीरसिंह को देखकर भानुमति प्रसन्न हो जाती है, और कहती है तुम कैसे जिन्दा हो गये। तभी वीरसिंह कहता है मेरे दोस्त ने जिन्दा किया। तथा तुम्हारी खोज में

निकल पड़े। दूसरी मंजिल में सुतार की लड़की एवं सुतार का लड़का लकड़सिंग बैठते हैं। तीसरी मंजिल में लुहार की लड़की एवं लुहार का लड़का लखणसिंह बैठते हैं तथा चौथे मंजिल में कुम्हार की लड़की एवं कुम्हार का लड़का गढ़सिंग बैठते हैं। सबसे नीचे के मंजिल में विधवा औरत को बैठने को कहते हैं और लकड़सिंग विधवा औरत को कहता है राजाजी को कह देना कि कल कर्मसिंह की बारात लेकर आये। दूसरे दिन राजा बेंड बाजे के साथ कर्मवीर की बारात लेकर आता है। राजा के सैनिक नाचते हैं कूदते हैं। नौ मंजिला महल के पास आकर नाचने लगते हैं। सुतार राजा को कहता है यह महल उड़ाकर बताता हूँ। सुतार नौ मंजिला महल उड़ाकर एक किलोमीटर तक ले जाता है फिर वापस लाता है। ऐसा करते-करते सात बार हो जाते हैं। फिर राजा कर्मसिंह बहुत प्रसन्न हो जाते हैं। फिर सुतार आठवीं बार उड़ाता फिर वापस ले आता है। सुतार राजा और कर्मसिंह को पूछता है कैसा उड़ रहा है। राजा कहता है, अच्छा उड़ रहा है फिर वहाँ से सुतार नवीं बार नौ मंजिला महल को उड़ाता है वे अपने राज्य की ओर प्रस्थान कर लेते हैं।

विधवा औरत नीचे वाले महल में बैठी रहती है। उसे पता नहीं था कि इस महल में राजा भोज का लड़का वीरसिंह भी है। लकड़सिंग और वीरसिंह नीचे के महल में आ जाते हैं। वीरसिंह को देखकर विधवा औरत घबरा जाती है। वीरसिंह उसे कहता है तुमने मुझे जहर वाली रोटी खिलाकर मार डाला और तुम मेरी पत्नी को लेकर यहाँ आ गयी। वीरसिंह उसे लात मारकर नीचे गिरा देता है और नौ मंजिला महल उड़ाकर अपने राज्य में ले आते हैं। राजा भोज के महल के पास आकर नीचे उतारते हैं सभी गाँव वाले इकट्ठा हो जाते हैं, वहाँ पर राजा भोज आ जाता है। राजा भोज कहता है क्यों वनवास के चौबीस वर्ष हो गये और शादी करके और महल बनाकर आ गये। वीरसिंह तीनों मित्रों को नौ मंजिला महल दे देता है और तीनों की शादी करवा देता है। तथा सुतार का लड़का सुतारी काम, लुहार का लड़का लुहारी का काम एवं कुम्हार का कुम्हारी का काम करने लगते हैं। तीनों खाते-पीते एवं मौज करते हैं।

राजा भोज का लड़का वीरसिंह भी राजपाट सम्भाल लेता है फिर राजा भोज एवं रानी के बीच झगड़ा हो जाता है। रानी राजा की गलती निकालती है और कहती

है, तुम्हारे कारण मेरा लड़का चौबीस वर्ष तक वनवास गया। राजा भोज कहता है कि मैं भी वनवास जाऊँगा। वह घोड़े पर सवार होकर वनवास के लिए निकल पड़ता है। वह चलते-चले घने जंगल में जा पहुँचता है। राजा भोज को डर लगने लगता है। राजा भोज शेर की आवाज सुनकर काँपने लगता है। दूसरी ओर से महादेव और पार्वती का स्वर्ग लोक से पृथ्वी पर आगमन होता है। महादेव और पार्वती पृथ्वी पर जीवों की अवस्था देखने के लिए रात के बारह बजे आते हैं। रात को घने जंगल में जंगली जानवर की आवाज सुनकर पार्वती डरने लगती है। महादेव ने जंगल में बारह फीट ऊँचा मचान बनाया। मचान पर सिर्फ दो लोग की जगह थी। महादेव और पार्वती मचान पर बैठकर बातचीत कर रहे थे। तभी वहाँ पर राजा भोज आ जाता है और महादेव को कहता है मुझे भी बहुत डर लग रहा है। महादेव कहते हैं, तुम भी ऊपर आ जाओ। महादेव पार्वती को कहते हैं— पार्वती तुम जरा सरक जाओ। मैं भी जरा सरक जाऊँगा तो राजा भोज को बैठा लेंगे। पार्वती कहती है तुम्हारी जगह पर बैठा लो, मैं नहीं सरकूँगी। अगर मैं सरक गयी तो मैं गिरकर मर जाऊँगी। महादेव कहते हैं पार्वती तू नहीं मानती तो मैं अपनी जगह पर बैठा लेता हूँ। दोनों मुश्किल से बैठ जाते हैं। पार्वती महादेव को कहती है, चलो अपना-अपना खाना खाएँगे।

महादेव के पास एक लोटा पानी, एक रोटी तथा थोड़ी दाल होती है। पार्वती के पास एक लोटा पानी, एक रोटी एवं थोड़ी दाल होती है। महादेव पार्वती को कहता है, पार्वती तुम थोड़ा पानी, रोटी और दाल राजा को देना एवं मैं भी दूँगा। पर पार्वती नहीं मानती और कहती है मैं अकेली एक लोटा पानी एक रोटी खाऊँगी। किसी को नहीं दूँगी। महादेव राजा भोज को आधी रोटी, दाल एवं आधा पानी देता है। तीनों खा पी लेते हैं।

महादेव पार्वती को कहता है, पार्वती तुमने न तो राजा को बैठने के लिए जगह दी और न ही रोटी दी अकेली खायी। अब जरा सरक जाओ राजा भोज को भी सुला लेंगे। पार्वती स्पष्ट मना कर देती है, और कहती है, तुम अपनी जगह पर सुला लो। राजा भोज और महादेव दोनों चिपक पर सो जाते हैं। सूर्योदय के पूर्व महादेव एवं पार्वती मचान के नीचे उतरकर सो जाते हैं। सुबह होने पर राजा भोज जाग जाता है और नीचे उतरकर महादेव एवं पार्वती को देखता है। वह (राजा भोज) समझता है

कि महादेव और पार्वती के मचान से गिरने से दोनों की मृत्यु हो गयी। ये कैसे हो गया। इसका पाप तो मुझे लगेगा। अब क्या करना इनके साथ मैं नहीं आता तो ऐसा नहीं होता। राजा भोज कहता है। महादेव कैसे मर गये उन्होंने तो मेरे साथ भला किया था। वह नहीं मरना था। उन्होंने तो मुझे मचान पर सुलाया। पानी पिलाया, रोटी खिलायी। इससे तो पार्वती को ही मर जाना था। वह घोड़े पर बैठकर विचार करता है। ये सभी घटना रानी के कारण हुई। घर जाकर रानी को मार दूँगा और जंगल से लकड़ी तोड़कर ले जाता है तथा घोड़े को तेज दौड़ाता है और मारता भी है।

स्वर्ग लोक से ईश्वर का विचार है, राजा भोज तो बहुत गलत कार्य कर रहा है। उनको सुधारने के लिए पृथ्वी पर जाना होगा। इसलिए ईश्वर महाराज का वेश बनाकर पृथ्वी पर आता है। राजा भोज के आगे आकर प्रकट हो जाता है। महाराज हरि ओम कहकर राजा भोज को पूँछता है कहा जा रहे हो वत्स। बहुत गुस्से में हो। राजा भोज कहता है मुझे मत रोको। मैं बहुत गुस्से में हूँ। नहीं तो मैं तुझे भी मार दूँगा। महाराज कहता है— मुझको मत मारो। मुझसे बात पूँछो क्या तकलीफ है तुम्हें। आओ मैं तुम्हारा भविष्य देखता हूँ। राजा भोज कहता है - भविष्य फल अच्छी तरह से देखना नहीं तो मैं तुम्हें मार दूँगा। फिर दोनों पंचाग लेकर बीच रास्ते में ही बैठ जाते हैं। महाराज कहता है मेरी बात सच होगी तो हाँ कहना नहीं तो ना।

महाराज कहता है, तुम्हारा रानी के साथ झगड़ा हुआ रानी तुम्हें पागल कहती है और तुमने वीरसिंह के साथ झगड़ा करके 24 वर्ष वनवास के लिए निकाल दिया था और साथ में सुतार का लड़का, लुहार का लड़का एवं कुम्हार का लड़का भी वनवास गये थे। चलते-चलते चारों सात रास्ते के चौराहें पर एक वटवृक्ष के नीचे बैठ गये। चारों बातचीत करने लगे। तभी शेर की दहाड़ सुनकर तुम्हारा लड़का वीरसिंह शेर की गर्दन काटने के लिए कन्धे पर कुल्हाड़ी रखकर वहाँ से चला जाता है। बहुत देर हो जाने पर वीरसिंह के नहीं आने पर तीनों दोस्त समझे की वीरसिंह को शेर खा गया होगा। इसलिए वीरसिंह नहीं आया। तीनों दोस्त वहाँ से चले जाते हैं। उनके जाने के बाद वीरसिंह वहाँ पर शेर का सिर लेकर ऊपर टांग देता है एवं उनकी खोज में निकल जाता है। उनको ढूँढ़ते-ढूँढ़ते वह एक राक्षस के घर चला जाता है। राक्षस के घर पर उसकी लड़की भानुमति होती है। वीरसिंह उसे पसन्द कर लेता है।

राक्षस जब घर आता है तो वह कंकड़ बनाकर बालों में छिपा लेती है। दोनों के बीच मुधर सम्बन्ध बढ़ जाता है। बहुत समय बाद वीरसिंह राक्षस को मार देता है और राक्षस को नदी में जला देते हैं। फिर दोनों नदी पर स्नान करने के लिए जाते हैं। भानुमति नदी के ऊपर नहाती है एवं वीरसिंह नीचे नहाता है। भानुमति का एक सोने का बाल (सफेद) टूटकर नदी में बह जाता है। दूसरे राज्य में राजा का लड़का कर्मसिंह जब नदी पर नाहने जाता है तो उसके हाथों में वह सोने का बाल आ जाता है। वह घर आकर बीमार पड़ जाता है। राजा जब बीमारी का कारण पूछता है तो वह कहता है मैं सोने के बाल वाली लड़की से शादी करूंगा। एक दिन एक विधवा औरत राजा के पास आकर कहती है। राजा जी मैं सोने की बाल वाली लड़की को ढूँढ़कर लाऊंगी। इसके लिए मैं चार हजार रुपये लूंगी। राजाजी भी राजी हो जाता है। एक दिन विधवा औरत सोने के बाल वाली लड़की ढूँढ़ते वीरसिंह के घर आ जाती है। वह वीरसिंह को जहर वाली रोटी खिलाकर देती है। वीरसिंह को भानुमति झोली में डाल देती है फिर विधवा औरत भानुमति को दूसरे राज्य में लेकर चली जाती है।

बहुत समय बाद तीनों दोस्त उस स्थान पर आ जाते हैं जहाँ से वह भटक गये थे। तीनों वटवृक्ष के नीचे आ जाते हैं फिर तीनों वीरसिंह की खोज में निकल पड़ते हैं। खोजते खोजते वह राक्षस के घर आ जाते हैं। दरवाजा खोलकर देखते हैं तो वहाँ वीरसिंह की लाश झोली में पड़ी है। फिर तीनों वीरसिंह को जिन्दा करने का उपाय करते हैं। लुहार का लड़का वीरसिंह को जिन्दा कर देता है फिर चारों भानुमति की खोज में निकल पड़ते हैं। चारों भी दूसरे राज्य में पहुँच जाते हैं और भानुमति की खोज कर लेते हैं। दूसरे राज्य के राजा को भानुमति कहती है नौ मंजिला महल बनाकर देंगे। तभी मैं कर्मसिंह से शादी करूंगी नहीं तो नहीं तथा उसमें सोने की जाली लगानी होगी। फिर विधवा औरत नौ मंजिला महल बनाने वाले सुतार को ढूँढ़ लेती है। लकड़सिंग नौ मंजिला महल बनाना स्वीकार कर लेता है और कहता है इसके लिए मैं नौ हजार रुपये लूंगा। राजाजी नौ हजार रुपये दे देता है।

बहुत समय बाद नौ मंजिला महल बनकर तैयार हो जाता है। फिर लकड़सिंग नौ मंजिला महल में सोने की जाली लगा देता है फिर विधवा औरत को कहता है, नौ मंजिला महल में भानुमति, एक सुतार की लड़की, एक लुहार की लड़की एवं

कुम्हारी लड़की को लाने के लिए कहता है। दूसरे दिन विधवा औरत सभी को ले आती है। सबसे ऊपर की मंजिल में भानुमति नीचे सुतार की लड़की उसके नीचे के महल में लुहार की लड़की उसके नीचे कुम्हार की लड़की एवं सबसे नीचे विधवा औरत बैठगी। सुतार (लकड़सिंग) विधवा औरत को कहता है कल राजाजी को कह देना की कर्मसिंह की बारात लेकर आये। दूसरे दिन राजा अपने पुत्र कुंवर कर्मसिंह की बारात लेकर आ जाते हैं। फिर सुतार नौ मंजिला महल को आठ बार उड़ाकर बताता है। फिर नवीं बार उड़ता है तो अपने राज्य की ओर ले आता है। विधवा औरत को वीरसिंह लात मारकर नीचे गिरा देता है। नौ मंजिला महल उड़ाकर अपने राज्य में आते हैं और तुम रानी के साथ झगड़ा करके वनवास के लिए निकल गये और तुम्हें महादेव और पार्वती मिले। तुम्हें महादेव ने मचान पर बिठाया और अपने हिस्से की आधी रोटी, दाल एवं पानी दिया तथा सोने के लिए जगह दी। वह मरे नहीं जिन्दा है। मैं यहाँ पर बैठता हूँ। तुम देखकर आओ। वह पास के राज्य में है।

राजा भोज पास के राज्य में जाकर देखता है। महादेव पास आकर कहता है। मैंने तुम्हें, आधी रोटी, दाल, पानी और सोने के लिए जगह दी तो मैं दशरथ का कुंवर के रूप में बन गया और राजधानी मिल गयी और पार्वती को भंगी का घर मिला। पार्वती राजा भोज को देखकर दौड़कर आती है और पाँव पड़ने लगी। राजा भोज ने कहा तुमने मुझे न तो रोटी, दाल, पानी दिया और न ही सोने के लिए जगह दी। इसलिए तुम्हें भंगी का घर मिला। पार्वती कहती है, मैं तुम्हें आधी रोटी, दाल और पानी दूंगी तुम मुझे महादेव की कुंवरांनी बना दो। राजा भोज कहता है ये सब तो भगवान ने बनाया है।

राजा भोज वहाँ से महाराज (भगवान) के पास आ जाता है। महाराज पूँछता है क्यों? महादेव कैसे हों? राजा भोज कहता है जिन्दा है और कहता है धर्म करने से उसे दशरथ की राजधानी मिल गयी और पार्वती को धर्म न करने से उसे भंगी का घर मिला वह रोज रोज गली में साफ सफाई कर रही है। महाराज (भगवान) कहता है। यहाँ से सीधे घर जाओ किसी से गुस्सा मत करना तथा धर्म करते जाना। रुपये तो आते-जाते रहते हैं। नेकी करोगे तो नेकी का फल तुम्हें अवश्य ही मिलेगा। आज से अपना किस्सा खत्म। राजा भोज वहाँ से सीधे घर आ जाता है और सबको साथ

लेकर चलता है। राजा भोज अपने परिवार के साथ सुख-शान्ति से रहने लगता है।

समाज में परम्परागत भोज सम्बन्धी छोटी-छोटी कहानी नुमा बातें न जाने कब से तैरती हुई आज तक आ गयी हैं। ये छोटी होने पर भी सबल आधार की ओर सोद्देश्य होने से पीढ़ियों से मार्गदर्शन कर रही हैं। ऐसी ही कहानियाँ यहाँ प्रस्तुत हैं -

मृत्यु के समय राजा भोज ने सर्वदर्शी मन्त्रियों को बुलाकर उनका यथायोग्य सम्मान करके बोला - मैंने पुण्य थोड़ा सा किया और पाप बहुत किया। इसलिए मेरे मरने के बाद मेरे एक हाथ में काजल चुपड़ दें और दूसरे हाथ में थोड़ा चन्दन चुपड़ दें। मंत्री ने कहा- ऐसा क्यों कह रहे हैं ? भोज ने कहा- लोग मुझे ऐसा मानकर पुण्य करेंगे। तब भोज के मरने पर ऐसा ही करके दाग के लिए ले जाते समय लोगों ने कहा - राजा के हाथ ऐसे क्यों कर दिये ? तब मन्त्रियों ने राजा की कही हुई बात बता दी। तब बहुत से लोगों का पुण्य की ओर लगाव हो गया।

राजा भोज की मृत्यु संबंधी एक और बात बताई गयी। भोज ने मरते समय अपने सेवक को कहा कि मैंने पुण्य नहीं किया। इसलिए मेरा हाथ काला करके तलवार के सामने रख देना। जब लोग पूछें तो कहना कि ऐसा करने के लिए राजा ने कहा था। तब उन सेवकों ने जनता को धर्म का बोध कराने के लिए भोज का काला हाथ बताया। भोज की इस मृत्यु चेष्टा को सुनकर लोग दानी हो गये।

भोज की सौ रानियों में से एक विशेष प्रिय रानी थी। परन्तु वह गोविन्द ब्राह्मण पर लट्टू थी। एक बार राजा ने रात में रात्रिचर्या में घूमते हुए अपनी उस पत्नी को अन्य पुरुष के साथ सोयी हुई देखा। तब पहचान के लिए पंडित ब्राह्मण की चोटी धीरे से काट ली। क्यों कि वह अवध्य होता है। नींद से जागने पर पंडित ने अपनी कटी चोटी देखकर सोचा राजा मेरी हर बात जान गया है। पहचान के लिए उसने ऐसा किया है। तब उसने उसी समय उठकर सब पंडितों की चोटियाँ काट दीं। प्रातः काल राजसभा में सब पंडित कटी चोटी के पहुँचे। राजा ने सबकी चोटी कटी हुई देखकर ठीक तय नहीं कर पाया। तब कुतूहल करते हुए राजा ने सब पंडितों को निमंत्रण दिया। सब जीमने को बैठे। राजा ने रानी से कहा- पाँच-पाँच लड्डू परोस। लड्डू परोसते हुए उसने अपने प्रिय पंडित की थाली में दस लड्डू रख दिये। तब वह विद्वान् बोला- पाँच-पाँच दिये जा रहे हैं। यहाँ दस क्यों ? तू जानती नहीं राजा भोज

स्त्री के चरित पर विश्वास नहीं करता। तब राजा ने पत्नी को त्याग दिया और अवध्य होने से पंडित को घसीट कर अपने देश से बाहर कर दिया।

लक्ष्मी की चंचलता देखकर राजा भोज बहुत दान करने लगा तो रोहित मंत्री ने सोचा कि राजा थोड़े ही दिनों में राज कोश खाली कर देगा। अतः राजा को किसी तरकीब से रोकना चाहिए। चित्रशाला के जरिये पर उसने चुपचाप लिखा- आपदा के लिए धन की रक्षा करें। प्रभात में मंत्री के लिखे के पास राजा ने लिख दिया- भाग्यशाली को आपदा कैसी ? मंत्री ने तब वहाँ लिख दिया- कभी भाग्य विपरीत हो जाए ? राजा ने उसे हटाकर लिखा दिया- संचित धन भी नष्ट हो जाता है। तब मंत्री ने राजा से क्षमा माँगी। उसने कहा- तुम भाग्यशाली हो राजन् कि तुम्हारा मन दान करने में पूरी तरह से लगा हुआ है। तब राजा ने प्रसन्न होकर पर्याप्त दान दिया।

एक बार राजा भोज की सभा के पास वटवृक्ष की शाखा पर बैठकर तोते ने कहा- नष्ट, नष्ट, नष्ट, नष्ट। राजा ने इस शब्द का अर्थ सब पंडितों को पूछा। परन्तु किसी को समझ में नहीं आया। तब विद्वत्कुटुंब ने अर्थ बताया। सर्वप्रथम ब्राह्मण ने कहा- कुभोजन से दिन नष्ट हो गया। पत्नी ने कहा- कुशील (शील रहित) भार्या नष्ट हो जाती है। पुत्र ने कहा- कुपुत्र से कुल नष्ट हो जाता है। पुत्र की पत्नी ने कहा - जो नहीं दिया जाता वह सब नष्ट हो जाता है। राजा ने उस विद्वत्कुटुम्ब को एक लाख रुपये दिये।

एक बार राजमार्ग पर रौर नामक व्यक्ति को अनाज के कण बीनते देखकर राजा भोज ने उससे कहा- जो अपना पेट भी नहीं भर पाते उनका जनमना ही बेकार है। इस पर वह रौर बोला- अच्छे समर्थ होकर भी परोपकार नहीं करते उनका होना न होना बराबर है। तब राजा भोज ने कहा- हे माता ऐसा पुत्र मत जन जो दूसरों के भरोसे जीता है। तब रौर ने कहा- ऐ माता ऐसा राजा अपने पेट में मत रख जो राजा उदार न हो। तब राजा ने उसे पर्याप्त पुरस्कार दिया।

एक बार राजा भोज ने एक घर में कुटुम्ब को कहल करते देखकर पूछा- इस तरह क्यों झगड़ रहे हो ? तब उसने कहा- माता मुझसे संतुष्ट नहीं है, न बहू से संतुष्ट है। वह बहू भी न माता से न मुझसे खुश है। मैं भी उन दोनों से खुश नहीं हूँ। हे राजन् बताओं, यह किसका दोष है ? तब राजा ने कहल का स्वरूप पूछा। उसने बताया -

भीम ब्राह्मण, भीमा उनकी पत्नी। उन दोनों का मैं कमल नामक पुत्र। मेरी पत्नी पद्मा। परन्तु घर में दरिद्रता है। धनाभाव में सदा झगड़ा होता है। इसलिए हम परस्पर संतुष्ट नहीं हैं। तब राजा ने श्लोक में सब बात कहने पर लाख रुपये उसे दिये।

राजा भोज ने एक बार द्वार पर दुखियारी नार को देखकर कहा— तेरी यह हालत क्यों है ? लक्ष्मी नहीं है तेरे पास ? उसने एक दोहा कहा जिसका तात्पर्य था कि परमात्मा ने लोगों की दस दस दशाएँ बनाईं। पर भाग्य ने मेरी एक ही दशा रखी। नौ दशाएँ चोर चुरा गये। तब राजा भोज ने एक ही बिजोरे फल में लाख रुपये मूल्य के दो रत्न रखकर उसे दिला दिये। उस स्त्री ने सोचा - इसे बेचकर अन्न जल ले आती हूँ। उसने वह बिजोरा बनिये को दे दिया। बनिये ने सार्थवाह को दे दिया। सार्थवाह ने वह फल राजा को भेंट कर दिया। राजा ने कहा - समुद्र जल पर पहाड़ी नदी उछलती कल्लोल करती फिर सागर में जा मिली। राजा ने उस स्त्री को बुलवाकर पूछा / उसने कहा - मेरे स्वामी मेरी एक ही दशा है यह सत्य है क्योंकि बिजारे में तूने रत्न नहीं देखे। तब राजा ने कृपा कर प्रचुर धन दिया।

एक बार राजा भोज ने एक चोर कवि को पर्याप्त दान दिया। चोर ने चोरी करनी छोड़ दी। राजा को दान का गर्व हो गया तो मन्त्री ने राजा विक्रमादित्य की दान की बही बताई। उसमें लिखा था कि कवि ने राजा की प्रशंसा की तो उसे सुनकर विक्रमादित्य ने पंडितों में मूर्धन्य माघ कवि को आठ करोड़ स्वर्ण मुद्राएँ प्रसन्न होकर दिलवा दीं। यह देखकर राजा भोज का गर्व गल गया।

एक बार राजा भोज ने नया नगर बसाने के लिए श्रेष्ठ भूमि जानने के लिए डोंडी पिटवाई। एक धारा वेश्या डोंडी सुनकर यान पर बैठकर लंका गयी। लंका की स्थिति देखकर फिर आकर बोली यदि मेरा नाम दिया जाय तो वीर भूमि बताती हूँ। राजा ने जब मान लिया तो उसने भूमि बतायी। वहाँ वेश्या के नाम से नवीन धारा नगरी राजा ने बसाई।

एक बार राजा भोज की सभा में एक आदमी आया। उससे पूछा कि तूने क्या आश्चर्य देखा ? उसने कहा— कान्तिपुरी में एक बड़े सेठ ने बहुत बड़ा तालाब बनवाया। पानी से भरा। जल से एक मस्तक निकलता है और बोलता है और एक से डूब जाता है। तब राजा ने पंडितों से पूछा। पर वे अर्थ नहीं समझे। तब दूर भ्रमण

करता एक पंडित मरुभूमि में गया। वहाँ एक ग्राम में वृद्ध आदमी मिला। उसे यह बात बतायी। उसने कहा— यह कुत्ता लो। तुझे लाख दाम दिलाऊँगा। तब वह लगातार स्नान करने वाले उस ब्राह्मण ने कन्धे पर उस कुत्ते को उठाया और उस नगर में आया। तब राजा ने इस पंडित से पूछा तो वृद्ध बोला - एक लोभ से डूबता है। राजा ने कहा— कैसे ? उस वृद्ध ने कहा - धन के लाभ में यह ब्राह्मण कुत्ते को भी कन्धे पर उठा कर लाया। तो मस्तक गया। वृद्ध ने उस ब्राह्मण को राजा से एक लाख दिला दिये।

एक बार राजा भोज ने राजा भीम के पत्तन (पाटन) नगर में अपना मंत्री पहुँचाया। उसने राजा भीम के सामने कहा - राजा भोज को चार वस्तुएँ दिखाई देती हैं। (1) एक वस्तु यहाँ है, वहाँ नहीं है। (2) एक वस्तु यहाँ भी नहीं है और वहाँ भी नहीं है। (3) एक वस्तु यहाँ भी है, वहाँ भी है। (4) एक वस्तु यहाँ नहीं है और वहाँ परलोक में भी नहीं है।

तब राजा भोज ने मन्त्रियों के सामने कहा कि भोज ने चार वस्तुएँ मंगवाई हैं वे भेजो परन्तु उनमें से कोई भी समझ नहीं पाया। तब एक वीरम नामक व्यक्ति ने कहा— मैं चारों वस्तुएँ ले आऊँगा। आदेश दीजिए। तब राजा ने प्रसन्न होकर कहा— जाओ। तब वह चारों वस्तुएँ छिपाकर लेकर वरिष्ठों को साथ लेकर अवन्ति पहुँचा और अपने आगमन का समाचार राजा भोज के पास पहुँचाया। तब राजा सार्थ में आया। आसन पर बैठकर राजा ने पूछा— चारों वस्तुएँ ले आये ? मन्त्री ने कहा— ले आये। राजा ने कहा - प्रथम वस्तु दिखाओ। तब उसने वेश्या दिखा दी। राजा ने कहा - ऐसी वस्तु तो यहाँ व परलोक में भी है। मन्त्री ने कहा— इसके उपयोग से यह लोक तो है परन्तु परलोक नहीं है। दूसरी वस्तु के बारे में पूछने पर साधु बता दिये। और बताया कि इनकी सेवा से यह लोक नहीं स्वर्गप्राप्ति होने से परलोकक है। तीसरी वस्तु में श्रेष्ठ श्रद्धावान् देवों को पूजते हुए बताये। ये यहाँ भी सुखी हैं और परलोक में भी सुखी रहेंगे। चौथी वस्तु के बारे में पूछने पर आपस में लड़ते हुए जुआरी बता दिये। उनका यह लोक है, न परलोक है। राजा भोज ने चकित होकर कहा - यह कहा जाता है कि पत्तन (पाटन) में सब पाया जाता है वह सत्य है। तब राजा ने कपड़ों और गहनों से उस मन्त्री का सम्मान किया।



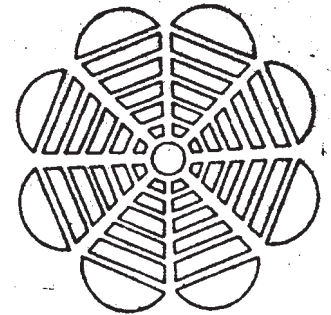
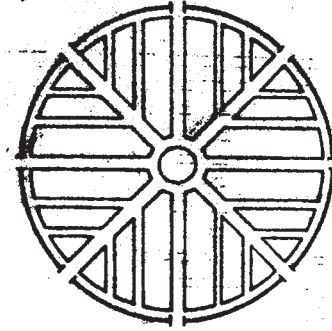
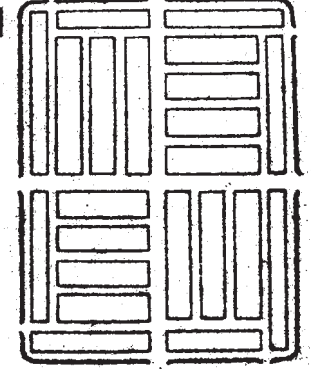
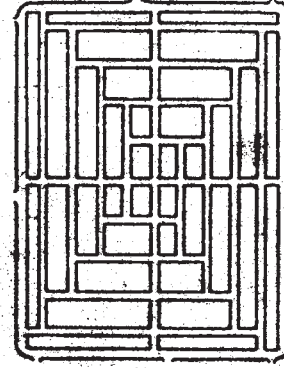
एक बार नारी के पैरों में झंकार करते नुपूर और हृदय पर हार देखकर राजा भोज धनपाल पंडित से पूछा – वह पैरों में झींक रहा है। तब धनपाल ने उस समस्या की पूर्ति करते हुए कहा – सोनार ने अपनी दुकान में हार और नुपूर दोनों बनाये। हार को तो नारी ने अपने हृदय से लगाया और नुपूर को उसने अपने धूल भरे पैरों में पहना। अतः अपना नीच स्थान देखकर नुपूर रो रोकर झंकार कर रहा है।

राजा भोज शैव होते हुए भी समकालीन प्रचलित विभिन्न आस्थाओं का आदर करते थे। उनके अनुसार बौद्धों की बातें सुननी चाहिए, जैनों का आचरण करना चाहिए, व्यवहार वैदिक के अनुसार हो और ध्यान शिव का हो। उनके अनुसार अन्यो के देवों की निन्दा या उनसे द्वेष से परहेज करना चाहिए। उनके अनुसार अन्यो के देवों की निन्दा या उनसे द्वेष से परहेज करना चाहिए। समस्त देवों की कृपा से परम सम्पदा प्राप्त करें। जैन दया, कौल रस, वेद व्यवहार और निरंजन मुक्ति दिलाता है।<sup>1</sup> यही राजधर्म का लोक धर्म है।

श्रोतव्यः सौगतो धर्मः कर्तव्यः पुनरार्हतः।  
 वैदिको व्यवहर्तव्यो ध्यानव्यः परमः शिवः ॥  
 दयार्थी जैनमास्थेयाद् रसाथम् कौलदशनर्मी।  
 वेदांश्च व्यवहारार्थी मुक्त्यर्थी च निरंजनम्।  
 अन्येषामपि देवानां निन्दां द्वेषं च वर्जयेत्।  
 सर्वदिवपानादेन सलभेत् सम्पदं पराम् ॥

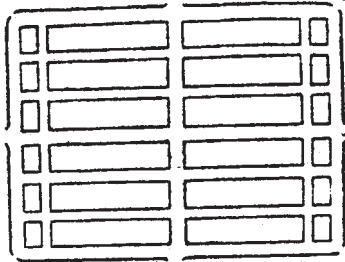
–( डॉ. भगवतीलाल राजपुरोहित

परिशिष्ट (छ)  
 नगर स्थापत्य (मानचित्र)

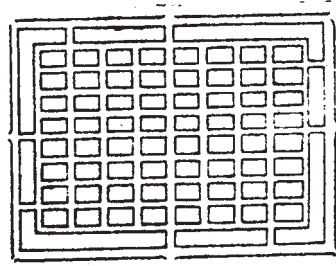


1. प्रबन्धचिन्तामणि, प्रभावकचरित, 18/139, चारुचर्या (बृहद् 419) के श्लोक।

TOWN PLANS



Düzçuka



Sarıtepeköy

